प्राकृतिक चिकित्सा क्या व कैसे
महाबीरप्रसाद पोद्दार
सत्साहित्य प्रकाशन

सुमति क्षेत्रमाडे
मेघ
मल्हार
सस्ता
साहित्य
मण्डल
प्रकाशन
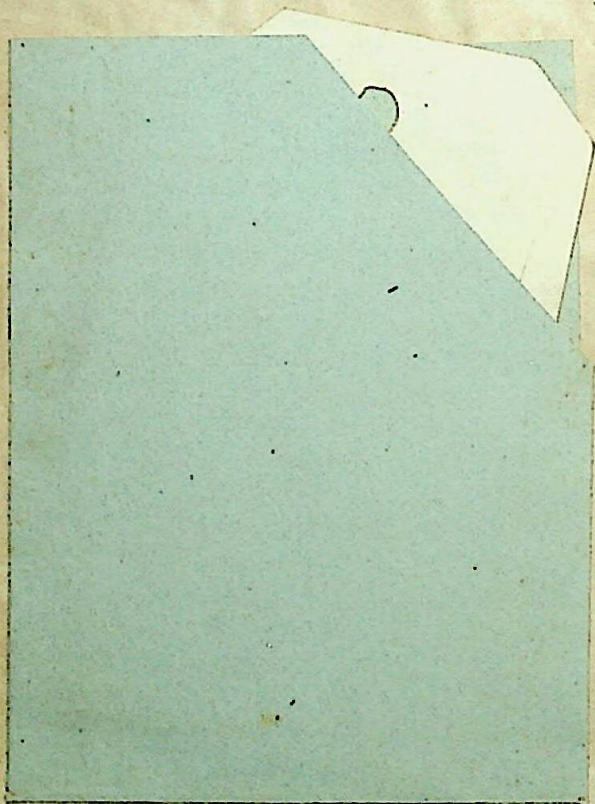
मेघ मल्हार

मराठी के हृदयग्राही उपन्यास का
हिन्दी रूपान्तर
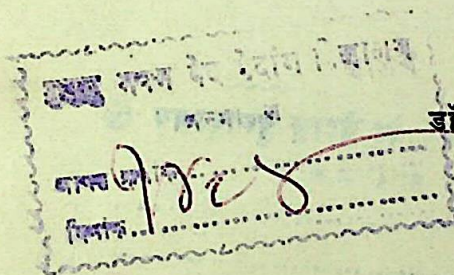
लेखिका
डॉ० सुमति क्षेत्रमाडे

अनुवादिका
मनुहरि पाठक

१९७६

सस्ता साहित्य मण्डल प्रकाशन

२

२२२०

प्रकाशकीय

१९६३ के साल की वात है। सवेरे अखवार पढ़ते समय प्रस्तुत पुस्तक की लेखिका डा० सुमति क्षेत्रमाडे का ध्यान निम्न समाचार की ओर गया :

"दीपक-राग गाने के बाद तानसेन के शरीर में जो असह्य जलन हुई, उसे मेघ मल्हार गाकर शांत करनेवाली ताना-रिरी की समाधियां गुजरात के वड़नगर गांव में पाई गई हैं। अहमदाबाद के पुराविद् डा० हरिदास गौदानी इस संवंध में और भी अनुसंधान कर रहे हैं।"

लेखिका ने मेघ मल्हार के बारे में दंत-कथा पहले भी सुनी थी। उन्होंने तानसेन चलचित्र भी देखा था। उसमें ताना का स्वरूप कुछ दूसरा ही था। समाचारपत्र में प्रकाशित नई खोज से उनके अंदर की कथाकार जागृत हो गई। उन्हें गुजराती भाषा का अच्छा ज्ञान था। डा० गौदानी से उन्होंने पत्र-व्यवहार किया। डा० गौदानी ने उन्हें गुजरात आने का निमंत्रण दिया। साथ में वड़नगर-महिला-मंडल की सचिव इन्दुवेन वोरा के ताना-रिरी पर लिखे लेख की कतरन भी भेजी। उस लेख में ताना-रिरी की मेघ मल्हार साधना, तानसेन के सामने ताना-रिरी द्वारा मेघ मल्हार के चमत्कारपूर्ण गायन, अकवर बादशाह के सरदारों द्वारा ताना-रिरी के अपहरण का षड्यंत्र तथा सतीत्व-रक्षा के लिए ताना-रिरी के आत्म-बलिदान की कथा थी।

लेखिका और इंदुवेन वोरा में पत्र-व्यवहार हुआ। उन्होंने ताना-रिरी की संपूर्ण जीवन-कथा लिखने का दृढ़ निश्चय कर तानसेन के जन्मस्थान बेहट तथा ग्वालियर से तानसेन के जीवन के बारे में सामग्री संकलित की।

फिर वह अहमदाबाद गईं और डा० गौदानी को साथ लेकर वड़नगर पहुंचीं। वहां उन्होंने हाटकेश का मंदिर, शर्मिष्ठा तालाब और

ताना-रिरी की समाधियां देखीं। पुराने लोगों से मिलकर सारी उपलब्ध सामग्री एकत्र की।

तानसेन की जीवनी पर काफी सामग्री मिलती है। ताना-रिरी के बारे में प्राप्त जीवन-कथा से उसके सूत्र जोड़कर, गुजरात के तत्कालीन इतिहास से सामग्री लेकर तथा उस समय के वातावरण के बारे में गुजरात का कथा-साहित्य पढ़कर, लेखिका ने प्रस्तुत 'मेघ मल्हार' की कथा-वस्तु का आधार तैयार किया। उपन्यास लिखना प्रारंभ किया। अनेक व्यवधानों के पश्चात् तीन वर्ष की अवधि में यह उपन्यास पूरा हुआ।

इस कलाकृति में लेखिका ने गुजरात की शस्य-श्यामला भूमि में संगीत के वातावरण में पोषित कन्याओं तथा उनके उच्चकोटि के निखरे संगीत के रूप का, अनुपम संगीत साधना, दिव्य गायन और रोमांचक आत्म-बलिदान का बड़ा ही रोचक एवं हृदयग्राही वर्णन किया है। गुजरात में संगीत के महान गुरु गायनाचार्य परम वैष्णवभक्त नरसी मेहता भी हुए हैं। मेघ मल्हार की दिव्य गायिका ताना-रिरी के वे नाना थे और उन्हें अपने नाना से संगीत विरासत में प्राप्त हुआ था।

भारतीय ललनाएं संगीत की साधना सदैव स्वांतः सुखाय करती रहीं। उनकी कला का प्रदर्शन एक पति और दूसरे परमेश्वर के समक्ष ही होता था, सार्वजनिक वह कभी नहीं हुआ। अगर अकबर की तरह किसी मुगल बादशाह अथवा शासक ने उसे और उसके संगीत को अपने अधिकार में करना चाहा तो ताना-रिरी की तरह आत्म-बलिदान कर भारतीय नारी ने अपने नारीत्व, कुल-मर्यादा, स्वाभिमान और कला-संस्कृति की रक्षा की है। यह उपन्यास भारतीय परंपरा की इसी उज्ज्वल और गौरवशाली गाथा का कलात्मक प्रस्तुतीकरण है।

इस उपन्यास में संगीत-सम्राट तानसेन के महान चरित्र पर भी नये ढंग से प्रकाश डाला गया है। आशा है, 'मंडल' के पाठकों को यह औपन्यासिक कृति पसंद आयगी।

—मंत्री

मेघ-मल्हार

एक

"भक्तिबा, कितनी खुशी की बात है कि तुम्हारे पुण्य-प्रताप से हम सबको तीर्थ-यात्रा का यह शुभ अवसर मिल रहा है।" गंगाबेन ने कहा।

"मेरे कारण से!"

"हां, बा, सोमनाथ ने तुम्हारी मनौती स्वीकार की है। इसी उपलक्ष्य में यह तीर्थ-यात्रा हो रही है न?"

"मेरी मनौती? किसने कहा तुमसे? शंकर भगवान तो मेरी बहू मायागौरी की मनौती से प्रसन्न हुए हैं। मां के सच्चे हृदय की पुकार ही भगवान के कानों में जल्दी पहुंचती है, बेन![1]"

भक्तिबा ने सामने स्त्री-समुदाय में बैठी गंगाबा की बात का उत्तर देते हुए वात्सल्य-भाव से अपनी पुत्र-वधू मायागौरी की ओर निगाह डाली।

मायागौरी का ध्यान यह देखने में लगा था कि वहां आये मेहमानों को क्या चाहिए और सास की क्या जरूरतें हैं। दालान में एक बड़े चांदी के झूले पर सफेद गद्दी बिछी थी। झूला चांदी की जंजीरों से लटका था। दो गाव-तकिये सहारे के लिए रखे थे। झूले पर भक्तिबा एक पांव नीचे लटकाये हुए बैठी थीं। वे सत्तर से ऊपर की गौरांग, तेजस्वी और भारी-भरकम महिला थीं। हवेली में मातृ-पद पर आसीन भक्तिबा सम्पूर्ण नागरवाड़ी की बा थीं। सारा गांव उन्हें भक्ति-भाव से 'बा'[2] कहकर सम्बोधित करता था। नागरवाड़ी की बहू-बेटियां रोज सवेरे हवेली में आतीं और देवघर में पूजा करके बा के हाथ से भगवान का प्रसाद और आशीर्वाद लेकर जातीं। भक्तिबा कट्टर शिव-भक्त थीं।

---

१. बहन २. गुजरात में 'बा' 'मां' को कहते हैं।

चारों पहर हवेली में शिव-पुराण की कथा होती रहती। नागरवाड़ी और गांव में बहुत-से श्रद्धालु स्त्री-पुरुष पुराण सुनने आते। कथावाचन के बाद भजन-कीर्तन होता।

बड़नगर के मंडलेश्वर नीलकंठराय के पौत्र मृत्युंजय का पंद्रह दिन पहले ही यज्ञोपवीत संस्कार हुआ था। भक्तिवा के इकलौते बेटे नीलकंठराय के बड़े लड़के लोकेश के यहां इस पुत्र-रत्न की प्राप्ति बड़ी मनौतियों के बाद हुई थी। मृत्युंजय सात वर्ष का हुआ तभी परदादी और दादा ने उसके यज्ञोपवीत-संस्कार की जल्दी मचा दी। मंडलेश्वर की हवेली में अनेक वर्षों बाद व्रतोत्सव का यह सुअवसर आया था।

नीलकंठराय ने स्वयं घर-घर जाकर मृत्युंजय के यज्ञोपवीत का निमंत्रण दिया था। मायागौरी ने अपनी सास और पति के उत्साह में बड़ी नम्रता और उमंग से भाग लिया था। पांच दिन तक उत्सव की धूम मची रही। गांव में किसी के घर चूल्हा नहीं जला। हवेली के सामने विशाल मंडप बनाया गया। पांच पकवानों और कई-एक व्यंजनों से युक्त भोजन तथा परोसने में किये गए आग्रह ने सभी को संतुष्ट कर दिया। पातरा, कचौरी, अमीरी खमण, सरसिया, खाजा, मोहनथाल आदि विविध व्यंजनों की सुगंधि से सारा वातावरण महक उठा था।

सात वर्ष का राजसी बालक मृत्युंजय अपने दादा के साथ, भोजन कर रही पंक्तियों के बीच घूमता रहा। जरीदार पीतांबर, गले में सोने का भारी जनेऊ, कमर में रत्नजड़ित कमर-पट्टा तथा उसमें दादा से विशेष रूप में मिली सोने की मूंठ वाली बरछी धारण किये इस वीर ब्राह्मण बटुक की ओर से देखनेवालों की निगाह हटती नहीं थी।

मृत्युंजय के यज्ञोपवीत-उत्सव को संपन्न हुए इतने दिन बीत जाने पर भी हवेली के आंगन का विशाल मंडप अभी सजा खड़ा था। नीलकंठराय की पत्नी मायागौरी ने मनौती मानी थी कि बड़े बेटे की बहू तन्मणी के लड़का होने पर काशी विश्वेश्वर की यात्रा का प्रस्थान नागरवंशवेल के यज्ञोपवीत-मंडप से ही करूंगी।

मायागौरी की वयोवृद्ध सास भक्तिबा ने सोमनाथ की मनौती मानी थी : "पोते के जनेऊ का तोरण मैं स्वयं आकर तेरे द्वार पर अर्पण करूंगी।"

नीलकंठराय ने मृत्युंजय के यज्ञोपवीत के समय स्वर्ण का एक तोरण विशेष रूप से तैयार कराकर मुख्य द्वार पर बंधवा रखा था। सोमनाथ और काशी विश्वेश्वर ने सास-बहू की मनौतियों को स्वीकार कर लिया था। इसीलिए नीलकंठराय ने व्रतोत्सव के साथ ही तीर्थ-यात्रा का मुहूर्त्त भी निकलवा लिया।

यज्ञोपवीत समारोह के धूम-धाम से संपन्न हो जाने पर अब गांव में यात्रा से संबंधित चहल-पहल प्रारंभ हुई। उस जमाने में यात्रा करना आसान नहीं था। सोमनाथ और काशी की यात्रा तो सामान्य लोगों के लिए बहुत ही कठिन और साहस का काम था। तीर्थ-यात्रा के लिए गांव से किसी का जाना एक बहुत बड़ा पर्व बन जाता था। अकेला आदमी तो सहसा इस तरह की यात्रा कर भी नहीं पाता था। सुरक्षा नहीं रहती थी। इसलिए गांव में अगर कोई यात्रा के लिए आगे आता तो गांव के और भी लोग साथ हो जाते थे। यात्रियों में वृद्ध स्त्री-पुरुष ही अधिक रहते थे। जाने की योजनाएं सालों पहले बनती थीं। तीन-चार महीने जमकर तैयारियां होती थीं। यात्रा में जाने वाली मंडलियों को यात्रा पूरी करके वापस आने में कम-से-कम छः-आठ महीने और कभी-कभी तो साल-भर लग जाता था।

× × ×

मंडलेश्वर की हवेली में यात्रा की तैयारियां प्रारंभ हुईं। यात्रा की सफलता के लिए दो दिन से हाटकेश्वर के मंदिर में लघु रुद्र आदि धर्म-कृत्य चल रहे थे। 'जय हाटकेश्वर', 'जय सोमनाथ', 'जय काशी विश्वेश्वर', 'ओम् नमः शिवाय' का निनाद सारे वातावरण में गूंज रहा था।

भक्तिबा, उनकी ननद काशीबा और पुत्र-वधू मायागौरी आदि हवेली की स्त्रियां तीर्थ-यात्रा के लिए जाने वाली थीं। इसलिए सब लोग तैयारी

में लगे थे। स्वाभाविक ही पुराण-पाठ और भजन-कीर्तन में महिलाओं की भीड़ अधिक थी। नागरवाड़ी और गांव की स्त्रियां हवेली में इकट्ठी हो गई थीं। कभी न आनेवाली स्त्रियां भी आज विशेष रूप से आयी थीं।

कथा-विसर्जन के बाद तीर्थ-यात्रा की चर्चा चल रही थी। किसने कितनी कहां-कहां की यात्राएं कीं, क्या-क्या अनुभव हुए आदि संस्मरणों का आदान-प्रदान होने लगा। वयोवृद्धा भक्तिवा इसके पहले भी दो बार तीर्थ-यात्रा कर चुकी थीं। सो उनका अनुभव भी काफी था।

मायागौरी खड़ी-खड़ी सुन रही थी। बीच-बीच में चांदी की जंजीर को पकड़कर झूले को हिला देती। भक्तिवा भी अपने एक पैर के ठेक से झोटा ले लेतीं। भक्तिवा ने जब मायागौरी के पुण्य-प्रताप की बात कही तो उसने नम्रता से नीची निगाह करके कहा, "बा ने इस संसार में से ध्यान हटा लिया, इसलिए सारा पुण्य-प्रताप का बोझा बहू के सिर पर रख रही हैं। लेकिन मैं कहे देती हूं कि इतना बड़ा बोझ मुझसे नहीं उठाया जायगा।"

"हमने जो सुना है, भक्तिवा, वह सच है क्या?" गंगावा ने पूछा।

"क्या सुना है?" भक्तिवा ने जानते हुए भी मुस्कराकर कहा।

"यही काशीवास की बात!"

"वैसे तो धर्मशास्त्रों के अनुसार होना ही चाहिए, लेकिन देखो, सोचा हुआ कहां तक पार पड़ता है!"

"हो सका तो मैं भी आपके साथ ही रहूंगी। उतना ही पुण्य मुझे भी मिलेगा।"

"हम भी साथ रहेंगे, बा," दो-तीन स्त्रियों ने एकसाथ कहा।

भक्तिवा मुस्करा उठीं, "वाह-वा! तब तो बहुत ही अच्छा होगा। तुम लोगों का साथ रहेगा और तुम रहोगी तो मैं भी वापस आजाऊंगी। मेरी बहू को अब जरूर ही भरोसा हो जायगा।"

मायागौरी ने मुस्कराकर सास की ओर देखा और धीरे से सिर का

आंचल और ज्यादा नीचा करते हुए अंदर चली गई और भीतर से भजनावली की पोथी लाकर सास के सामने रख दी।

तभी जयकुंवरबेन बोल पड़ीं, "भक्तिबा, आज आप अपने पोतों की बहुओं से ही भजन सुनवाइये। हमने बहुत दिनों से उनका भजन नहीं सुना है।"

रसीलाबेन ने कहा, "पिछली नवरात्रि में हर्षदाबेन के यहां जब गरबा था, तब दोनों बहनों ने क्या ही सुंदर गरबा गाया था। अब भी वे सुर कानों में गूंज रहे हैं। आज हम आपकी बहुओं के मुंह से ही भजन सुनेंगे।"

भक्तिबा ने कहा, "हां, आज सोमवार भी है। हाटकेश्वर में लघु-रुद्र हुआ है। मेरी सारंगी और वीणा ही भजन गायेंगी। मायागौरी, जरा अपनी बहुओं को बुलाओ तो।"

बड़े पोते की बहू ताना याने तन्मणी थी। दादी-सास बड़े प्यार से उसे सारंगी कहती थीं। ताना का गला बड़ा सुरीला था। ऐसी मधुरता शायद ही किसी के गले में हो। जब वह गाने लगती तो सुननेवाले मुग्ध हो जाते। दूसरी बहू रिरी थी, जिसे सब वीणा कहते थे।

कुछ ही देर में बड़ी बहू ताना आयी। कुसुम्मी रंग की रेशमी साड़ी का आंचल सिर से ठोड़ी तक था। धीरे-धीरे महिलाओं की भीड़ में से रास्ता बनाती हुई वह दादीसास के पास पहुंची। नीचे झुककर भक्तिबा के दोनों पैरों में हाथ लगाकर ताना ने उन्हें प्रणाम किया और झूले की जंजीर पकड़कर खड़ी हो गई। उसके चेहरे पर पतली रेशमी साड़ी का घूंघट पड़ा हुआ था, फिर भी उसकी सीधी लम्बी नाक और सुंदर ठोड़ी, गोल चेहरा, बड़ी-बड़ी आंखें, ललाट पर झूमतीं काली-काली लटें और उनको बार-बार घूंघट की ओट में छिपाने का कोमल, लंबी सुंदर और अंगुलियों का असफल-सा प्रयास, यह सब साफ दिखाई दे रहा था। घूंघट में से उसके अनुपम सौंदर्य की झलक दिखाई दे रही थी। लंबे केशों की वेणी पीठ पर से नीचे ठेठ घुटने तक नागिन की तरह लहरा रही थी।

कोमल पैरों का गौरवर्ण देखते ही बनता था।

वहां एकत्र स्त्रियों ने उसे पहले अधिक नहीं देखा था। वे उसी की ओर देखती रहीं, मानो छितराये हुए श्वेत बादलों की आड़ में छिपे शरत्-पूर्णिमा के चांद की ओर देख रही हों।

हवेली की महिलाएं, विशेषकर वहुएं, बाहर कम ही निकलती थीं। नागरवाड़ी में ब्याह-शादी, जनेऊ, गरवा आदि के मौके पर या हाटकेश्वर मंदिर में कोई उत्सव आदि होता तभी हवेली की बहुएं बाहर आती थीं। उनके बाहर जाने के लिए पालकी दरवाजे पर लगती। मंडलेश्वर के घर की पर्देवाली पालकी सड़क से गुजरती तो सामने दो घुड़सवार चोवदार और पालकी के बराबर दो दाइयां रहती थीं। मंडलेश्वर के घर की स्त्रियों का दर्शन दुर्लभ था। नागरवाड़ी के वड़े घरों की स्त्रियों का हवेली में आना-जाना लगा रहता। घर में आस-पास किसी बड़े-बूढ़े के होने से या वे न भी हुए तो ससुर के घर में आनेवाली महिलाओं की मान-मर्यादा उनकी प्रतिष्ठा के अनुकूल रखनी पड़ती। स्वाभाविक ही बेटों और पोतों की वहुओं के चेहरे पर हमेशा घूंघट पड़ा रहता। बहुओं के विनम्र व्यवहार का एक रूप था यह! जैसा जिसका रिश्ता होता, उसी के अनुसार यह मर्यादा कम या ज्यादा होती। छोटी ननद और देवर के सामने घूंघट कुछ कम हो जाता। जेठ-जिठानी के सामने नाक तक आ जाता और ससुर के सामने तो वह खिचकर ठोड़ी तक पहुंच जाता। वहू का पूर्ण मुखचंद्र आवरणविहीन उसके अंतर्गृह यानी शयनागर में पति के सामने ही होता। जैसे ही वह शयनगृह में प्रवेश करती, सिर पर से आंचल खिसक कर कंधे पर लटक जाता। संकोच के आवरण से मुक्त हो कर मुखचंद्र अनुराग के रंग में खिल उठता। अंतर्गृह में एक निराली ही छटा छा जाती। ससुराल का या उस परिवार का कोई भी व्यक्ति यदि मायके में आ जाता तो नागरकन्या अपनी मर्यादा को भूलती नहीं थी। परदा-घूंघट मायके में भी होता था।

इस घूंघट की आड़ में छिपे सौंदर्य को परखने का अंदाज सबको

होता, क्योंकि सभी घरों में यही परिपाटी थी।

भक्तिबा ने ताना से कहा, "बेटा, आज तुम भजन गाओ। तुम्हारी देवरानी कहां है ? उसको बुला लाओ। आज तुम दोनों बहनों के मुंह से भजन सुनने की सबकी इच्छा है।"

ताना की देवरानी दरवाजे की आड़ में ही खड़ी थी। वह भी सिर के आंचल को ठोड़ी तक खींच सामने आ गई। मेंहदी रंग की साड़ी पहने रिरी को देखकर कोई भी कह सकता था कि वह ताना की बहन है। उसका रंग-रूप, कोमलता, सब ताना की ही तरह थी।

भक्तिबा ने स्नेह से कहा, "लो, मेरी वीणा भी आ गई।"

रिरी ने नीचे झुककर दादीसास के पैर छुए और कहा, "बा, रूखी-बेन को भी साथ देने के लिए बुलाना चाहिए था।"

"हां-हां," भक्तिबा ने कहा, "कौन ? डायी, जरा नायकवाड़ी में से रूखी को बुला ला।"

एक दासी नायकवाड़ी से रूखी को बुलाने भागी। दूसरी ने तंबूरा और तबला लाकर रख दिया। ताना और रिरी भक्तिबा की बाईं ओर नीचे बिछी बिछावन पर बैठ गईं। सास के सामने बैठने से मर्यादा का भंग होता और गाते समय घूंघट के हट जाने पर शालीनता में कमी आ जाती, इसलिए गाते समय ये दोनों बहनें हमेशा सास के पीछे बैठती थीं।

थोड़ी देर में रूखी भी आ गयी। अधेड़ रूखी संगीत की अच्छी जान, कार और वादक थी। नायकवाड़ी में ही इसका मायका और ससुराल भी थी। दोनों ही परिवार संगीतज्ञों के थे। उसका ससुर दशरथ नायक अच्छा गानेवाला था और इडर राजा के पास दरबारी गायक था। ताना, रिरी को बचपन में संगीत के पाठ इन्हींने पढ़ाये थे। उनकी संगीत-कला की नींव दशरथ नायक ने ही मजबूती से डाली थी। रूखीबेन के पति रामनाथ कुशल नट थे। हाटकेश्वर मंदिर के सामनेवाले भव्य आंगन में समारोहों पर जो भी पौराणिक नाटक खेले जाते, उन सबका अथ से इति तक का श्रेय रामनाथ को था। नाटक के प्रमुख अभिनेता की भूमिका

की जिम्मेदारी उसी की रहती।

ससुराल और मायके में संगीत के स्वर हमेशा कान पर रहने के कारण रूखीबेन को संगीत का अच्छा ज्ञान हो गया था। तबला-वादन में वह प्रवीण थी। नागरवाड़ी के घरों में, बाहरी बैठक के परे, किसी पर-पुरुष का प्रवेश नहीं होता था। चौक लांघने के बादवाले सभी कोष्ठों में स्त्रियों का राज्य रहता था। नागरकन्या को विविध कलाओं का ज्ञान होना ही चाहिए, इस आम रीति के अनुसार नागरवाड़ी की बहू-बेटियों को संगीत-कला का अभ्यास कराया जाता था। वहां नित्य भजन-कीर्तन होते। गरबे गाये जाते। ऐसे मौकों पर संगत करनेवाले साथी की जरूरत पड़ने पर रूखीबेन-जैसी जानकार स्त्रियों का साथ आवश्यक होता।

नागरवाड़ी में नवरात्रि के गरबे घरों में बीच के बड़े चौक में होते। यदि चौक छोटा होता तो घर के आंगन में होते। उस समय पुरुषों का आना-जाना बंद रहता। गरबा गाने और नाचनेवाली स्त्रियों को संकोच न हो, इस दृष्टि से सामने न आकर आस-पास के घरों की खिड़की या झरोखे में से गरबा देखने-सुनने की पुरुषों को प्रच्छन्न छूट रहती।

रूखीबेन आयी। उसके हाथ में तांबे का एक घड़ा था। भक्तिबा को झुककर प्रणाम करके उसने कहा, "जय हाटकेश !"

"जय हाटकेश !" भक्तिबा बोलीं। रूखी के हाथ में घड़ा देखा तो उन्होंने पूछा, "क्यों आज घड़ा लेकर नाचने का इरादा है क्या ?"

"भजन का रंग जमा तो नाचूंगी भी, और तानाबेन और रिरीबेन जब गाने लगेंगी तो रंग जरूर जमेगा।" कहते हुए रूखी ताना-रिरी के पास ही बैठ गयी। उसने तबला अपने सामने कर लिया और ठाक्-ठिक् शुरू कर दिया। रिरी ने तानपूरा हाथ में लिया। ताना सीधी बैठी। घूंघट थोड़ा-सा ठीक किया। उसके गले में से हल्के-से स्वर की गूंज सुनाई दी। धीरे-धीरे स्वर ऊंचे होने लगे—और ध्रुपद का आलाप वातावरण को झंकृत करने लगा।

सरस्वती आदिरूप नादब्रह्म, बीना बजावत।

मनावत पूर्न गुनी, मन इच्छाफल पावत ॥
मनिकौ मंदिर, सोने कौ कलसा
जगमग ज्योति लागी, धाता पग ध्यावत
इडा देवी वाकबानी सारदा,
'तानसेन' कौ दीजै सुर-ताल-रंग सुद्ध मुद्रागावत ॥

ताना का मधुर स्वर अब खुलकर वातावरण में मुखर हो उठा। बीच-बीच में रिरी का मीठा स्वर भी साथ देने लगा।

दोनों के गले के स्वर की समलयता अद्भुत थी। एक के रुकने पर दूसरी कब प्रारंभ करती, यह पहचानना भी मुश्किल हो गया, मानो दो तानपूरे षड़ज में मिलाकर एक साथ बज रहे हों!

सारा स्त्री-समुदाय मंत्र-मुग्ध होकर दोनों की ओर देख रहा था। सबके कान दोनों बहनों के स्वर्गिक गान की स्वर-लहरी से गूंज उठे थे और सबकी निगाहें उनके मुख की सुंदरता से मानो जकड़ गई थीं।

गीत पूरा हुआ। स्त्रियों ने उल्लास से विभोर होकर कहा, "वा, आपकी बहुएं तो सचमुच सारंगी-वीणा ही हैं।"

रूखीबेन ने हाथ से तबले को थोड़ा दूर करते हुए कहा, "गुणिलाबेन, यह तो शुरुआत ही है।"

"सच!"

"हां-हां, जरा तबला ठीक करके मैं स्वर मिलाती हूं, ठीक उसी तरह तानाबेन अपनी स्वर-लहरी की सारंगी को ताल में लायेगी। असली गीत तो अब होंगे!"

"वाह-वा! गीत सुनकर हमारे कान आज तृप्त हो जायंगे।"

ताना ने अपनी लंबी-लंबी पलकों को निमिष-भर के लिए ऊपर उठा कर सामने बैठे स्त्री-समुदाय की ओर देखा और मुस्करा दी; फिर धीरे से सिर का आंचल पुनः थोड़ा आगे खींचकर दादीसास की ओर देखते हुए बोली, "अब तो रमिलाबेन और हर्षलाबेन भी भजन गायेंगी, बा?"

"ना बाबा, ना, तुम्हारी आवाज के सामने हमारी आवाज तो फटे

बांस-सी निकलेगी।"

भक्तिवा ने किंचित् हंसकर कहा, "बहू, अब तुम्हीं दोनों गाओ।"

ताना ने रूखीबेन की ओर देखा, स्वीकारोक्ति में उसकी गर्दन हिली। तबला एक ओर करके उसने तांबे का घड़ा सामने खींचा। दोनों हाथों की उंगलियों में तरह-तरह का अंगूठियों को पहना और घड़ा उलटा रख-कर उंगलियों में पहनी अंगूठियों से उसपर आघात करना प्रारंभ किया। घड़े से तबले-जैसे, किन्तु अत्यंत कोमल स्वर निकलने लगे।

रिरी ने तानपूरे के तार मिलाये। ताना ने शुरू किया :

डिम डिम डमरू बाझे ऽ ऽ ऽ

ताना का स्वर चढ़ रहा था। रिरी उसके स्वर में स्वर पूर रही थी। रूखीबेन का तबला चौताल में घूम रहा था :

महादेव देवन पति ईश्वर नीलकंठ।
पुनपंचानन पारवतीपति दुख हरन।।
वामदेव, महादेव, जटाजूट, गंगशिखर।
डिम डिम डिम डमरू बाजे, पुनि रीझत सुखकरन।।
वृषवाहन जटाजूट गंगशिखर बहुरूप।
डुम डुम डुम डमरू बाजे तिरिशूलधरन।।
'तानसेन' शिवशंकर दया कीजिए।
भोलानाथ जगतपति पोषनभरन।।

आलाप ले लेकर ताना गा रही थी। बीच-बीच में रिरी स्वर को झेल रही थी :

वृषवाहन जटाजूट गंगशिखर।

रूखीबेन की बेटी चंदा वहीं बैठी थी। उसने तबला अपने पास खिसका लिया और वह तबले पर डमरू के बोल निकालने लगी।

रूखी के हाथ का घड़ा घूम रहा था। देखते-देखते उसने घड़ा उठाया और झटके से वह उठी और घड़ा घुमाने लगी। ताना-रिरी की स्वर-लहरी तार-सप्तक में भवरें की तरह घूमने लगी। सारा वातावरण

संगीत के नाद से निखर उठा, मानो देखते-देखते हिमालय के हिमाच्छादित शिखर दिखाई देने लगे हों। उस हिम-शिखर पर त्रिशूलधारी, भस्म-चर्चित, व्याघ्रांबर-वेष्ठित, नागमाला-भूषित, शिवशंकर और उनके बाएं जगत्माता पार्वती बैठी हों।

साक्षात् शिव-पार्वती का दिव्य दर्शन। संपूण स्त्री-समूह ने अपने नेत्र बंद कर लिये। यह सत्य था या स्वप्न? ॐ नमः शिवाय... ॐ नमः शिवाय...ॐ नमः शिवाय...!

गीत समाप्त हुआ। तबला बंद हुआ। घड़ा मूक हो गया। खोया स्त्री-समुदाय जागृत हुआ। दिव्य स्वप्न लुप्त हो गया। कैलास पर्वत से मानो एकदम नीचे आ गये हों!

"धन्य-धन्य भक्तिबा, धन्य हो मंडलेश्वर घराना, अहोभाग्य, जो ऐसी पतोहू तुम्हें मिली!" एक स्त्री ने कहा।

ऐसी सुलक्षणी पुत्रियों को जन्म देने वाली शर्मिष्ठा की कोख धन्य है!" दूसरी बोली।

तीसरी ने कहा, "नरसी मेहता के घराने का दिव्य संगीत इन दोनों लड़कियों के कंठ में उतरा है। धन्य-धन्य!"

"ओ-हो, संगीत का कितना अभ्यास किया है! दरबारी गायक भी इनके सामने हार मान जायंगे।" चौथी ने मुस्कराकर कहा।

भक्तिबा गर्व से बोलीं, "क्यों नहीं! इनके दादा और पिता संगीत-शास्त्र के पंडित हैं! लड़कियों को यह ज्ञान जन्म के साथ घुट्टी में मिला है।"

रूखीबेन ने कहा, "मेरे ससुरजी तानाबेन की बहुत तारीफ करते हैं।"

"हां, वे राजा के दरबार में थे। उसके पहले वे कुछ साल बांधवगढ़ के रामचन्द्र राजा के दरबार में भी थे। वे जब यहां होते तब तानाबेन, रिरीबेन और मैं, हम तीनों को गाना सिखलाते। तानाबेन ने अभी जो गीत गाया है, वह मेरे ससुरजी ने ही सिखाया है।"

"गीत बहुत ही सुन्दर है।"

संगीत की अच्छी जानकारी रखनेवाली रसीलाबेन ने कहा, "यह चीज टोडी राग की है क्या ?"

"हां, मियां की टोडी में है। तानसेन की रचना है। बहुत ही बढ़िया है।"

"मेरे ससुरजी जब बांधवगढ़ में थे तब तानसेन भी वहीं पर दरबारी संगीतज्ञ थे। सारी दुनिया में संगीत में उनकी बराबरी करनेवाला कोई नहीं है, ऐसा मेरे ससुरजी कहते रहते थे। दूसरे का बनाया गीत तो वे कभी गाते ही नहीं थे। अपना ही गीत बनाते और गाते। इसके अलावा दरबार में एक बार गायी हुई चीज को वे कभी नहीं दोहराते थे। हरबार नई चीज क्यों सुनाते हैं, ऐसा पूछने पर वे कहते, मंदिर में भगवान को एक बार चढ़ाया हुआ फूल क्या दूसरी बार चढ़ाया जा सकता है ?"

"मेरे ससुरजी कहा करते थे कि तानसेन बड़ी जल्दी गीत लिख डालते हैं। एक बार बांधवगढ़ के दरबार में बैजू और बक्सू, दो मशहूर गवैये आये। वे दोनों गीत भी बनाते थे। राजा रामचन्द्र ने दरबार में ही नये गीतों की रचना करके उन्हें वहीं गाने की होड़ पैदा कर दी। उस समय तानसेन ने इतनी सफाई से गीत बनाकर गाया कि सब लोग दांतों तले उंगली दबाकर रह गये और उनकी धाक सब पर जम गई।"

ताना ने कहा, "दशरथ काका जब यहां आते हैं तब तानसेन के रचे बहुत से गीत लाते हैं। वे तानसेन की बड़ी प्रशंसा करते हैं। वे बता रहे थे कि एक बार सूरदास बांधवगढ़ आये थे। तानसेन का गाना सुनकर उन्होंने प्रसन्न होकर कहा :

विधना यह जिय जान है शेषहिं दिये न कान।
धरामेरु सब डोलते, तानसेन की तान ॥

रसीलाबेन ने गर्दन हिलाते हुए कहा, 'वाह-वाह, धरामेरु सब डोलहिं तानसेन की तान !' सूरदास इतने मुग्ध हो गये थे !..."

रूखीबेन ने बीच में ही कहा, "तानाबेन का गाना सुनकर मेरे

ससुरजी कहते हैं, "बेटा तन्मणी, एक बार तानसेन को तेरा गाना सुनना चाहिए। तेरा स्वर सुनकर वह भी नाग की तरह डोलने लगेगा।"

हर्षलाबेन बोली, "बिल्कुल ठीक है। विधाता ने हजारों हाथों से तानाबेन को रूप और गला, दोनों ही दिये हैं।"

बुजुर्गों से अपनी प्रशंसा सुनकर ताना संकोच से सिमट गई। वह तपाक से उठी। तानपूरा नीचे रखकर रिरी भी उठ गई। दोनों ने ही भक्तिबा को प्रणाम किया और अंदर चली गईं।

भक्तिबा ने नित्यक्रम के अनुसार प्रार्थना प्रारम्भ की। उनके साथ सभी ने एक स्वर में गाना प्रारंभ किया :

नमस्ते नमस्ते विभो विश्वमूर्ते।
नमस्ते नमस्ते चिदानंद मूर्ते।

प्रार्थना पूरी होने पर प्रसाद लेकर सभा विसर्जित हो गई। हर स्त्री विभोर होकर, तृप्त होकर, हवेली से बाहर निकली। मायागौरी द्वारा मुक्त-हस्त से वितरित प्रसाद उनकी मुट्ठी में समा नहीं रहा था। उनके कर्ण गान-सुधा से तृप्त हो गए थे। उनके नेत्रों की दोनों पुतलियों पर गुड़ियों के समान ताना-रिरी के मुख का सौंदर्य इतना अधिक छा गया था कि उन्हें और कुछ दिखाई नहीं दे रहा था, न सूझ रहा था।

दो

गुजरात की भूमि जैसी उपजाऊ, जैसी रसयुक्त और रमणीय है, वैसे ही वहां के लोग भी बहुत ही उत्सवप्रिय और प्रसन्नचित्त हैं। रस से छलछलाते गुजरात का रंग ही कुछ दूसरा है; सौंदर्य से भरे गुजरात की शान ही कुछ निराली और मोहक है; गुजरात का चरित्र भी कुछ अनोखा ही है।

किसी के घर मंगनी हो या भात, मनौती का गरबा हो या कोई यात्रा

के लिए प्रस्थान कर रहा हो, ऐसे सभी मंगल-प्रसंगों पर उस घर में विशाल समारोह किया जाता है। उत्सव की छटा चारों ओर छा जाती है। उस घर को विवाह-घर की तरह सजाया जाता है। ऐसे घरों में बहुमूल्य वस्त्रालंकारों से सुसज्जित स्त्रियों के झुण्ड-के-झुण्ड आते हैं। प्रौढ़ा सुन्दरियों की कमर से लटके चाभियों के झुमके और तरुण सुहागिनियों के पैरों के नूपुर उन घरों के वातावरण में मधुर गुंजन भर देते हैं। मंगल-गीत के स्निग्ध स्वरों से केवल वे घर ही नहीं, पास-पड़ोस भी मुखरित हो उठते हैं। उत्सव के लिए अस्थायी रूप से निर्मित रसोईघरों में बड़े-बड़े कढ़ावों में तैयार हो रहे पकवानों की सुगंध सारे वायुमंडल में भर जाती है। समूचे वातावरण में एक अनोखी मादकता छा जाती है।

यह तो एक सामान्य घर की बात है। यदि वह घर किसी नागर ब्राह्मण का हुआ तो वहां की धूम-धाम, शोरगुल का कहना ही क्या !

किंतु ये सामान्य घर भी किसी जमाने में असामान्य थे। अणहिलपुर पाटण के वैभवशाली राज्य-सिंहासन पर गुजरात का सच्चा इतिहास बनानेवाले सोलंकी और वाघेला राजाओं के समय में गुजरात के घर धन-धान्य से भरे-पूरे थे। उस ऐतिहासिक युग में गुर्जर लोग जिस वैभव को भोगते थे, उसकी बराबरी नहीं की जा सकती। उनके सुख की सीमा नहीं थी। वह समय गुजरात का सबसे शानदार समय था।

इन गुर्जर राजाओं के शासनकाल में महागुजरात की सीमा भी दूर-दूर तक फैली हुई थी। उत्तर में गिरनार के पार ठेठ द्वारका का अनंत-सागर, दक्षिण में भृगु-कच्छ से मिला हुआ दूर तक फैला नर्मदा का तट, पश्चिम में सात समुंदर पार दुनिया से व्यापारिक-लेन-देन करनेवाले खंभात का रात-दिन व्यस्त द्वीप ! उस समय गुजरात की समृद्धि की ख्याति सिंधु सागर के पार चारों दिशाओं में दूर-दूर तक व्याप्त थी।

महागुजरात की चारों सीमाओं में महामंडलेश्वरों के अधीन कई संपन्न नगर थे। हर नगर का कारोबार सुव्यवस्थित चलाने के लिए मंडलेश्वर की नियुक्ति होती थी। मंडलेश्वरों को तो महामंडलेश्वर की सूबे-

दार होता था, किंतु अपने नगर के विकास और शांति के लिए वह हर तरह से स्वतंत्र रहता था। अपनी नगरी का तो वह राजा ही होता था। प्रत्येक नगरी की मंडियां माल से भरी रहती थीं। उस समय के रिवाज के अनुसार जिन ऊंची हवेलियों पर झंडे फहराते, वे करोड़पतियों की मानी जाती थीं। लखपतियों के यहां, जितने लाख की हैसियत होती थी, उतने ही दीपक जलते थे। दूसरे धनी लोगों के घर के प्रवेश-द्वार पर सोने के पतरे मढ़े रहते। इन्हीं चिन्हों से उस नगरी की संपन्नता आंकी जाती थी। वह गुर्जर-वैभव का स्वर्णयुग था। स्वतंत्रता का सूर्य पूरे तेज के साथ चमक रहा था।

पर भाग्य की गति कौन जानता है! प्रकृति के नियमानुसार समय बदला। गुजरात पर एक के बाद एक विदेशी आक्रमण आरंभ हुए। राज्य चले गए, स्वतन्त्रता छिन गई, दासता आई। धार्मिक स्थान नष्ट-भ्रष्ट कर दिये गए। करोड़पतियों के घर की पताकाएं धूल में मिल गईं। हवेलियों के दीपक बुझ गए। अपार धन-दौलत लूटी गई। पुरुषों को मौत के घाट उतार दिया गया। स्त्रियों की दुर्दशा हुई। जब गुर्जराधिपति सर्वेश्वर की ही सत्ता चली गई तो मंडलेश्वरों की क्या बिसात! सत्ता गई, वैभव गया, गुजरात के इतिहास के निर्माता अणहिलपुर पाटण की प्रभुता का सूर्य अस्त हो गया। यवन आक्रमणकारी ने गुजरात पर अधिकार कर लिया। नया अहमदाबाद नगर बसाकर उसने अपना राज्य आरंभ किया।

यवनों के आक्रमण के साथ ही महागुजरात के वैभव का पतन शुरू हो गया। तूफान में उखड़े हुए बड़े-बड़े वृक्षों के समान नगर के बाद नगर उजड़ गए। झंझावात में भी अपने प्राण मुट्ठी में लेकर खड़े रहनेवाले छोटे-छोटे वृक्षों की तरह अनेक छोटे गांव और कस्बे सुरक्षित बच गए। वे आक्रमणकारियों की निगाह में नहीं पड़े।

इसी प्रकार के छोटे गांवों में से एक गांव था वृद्ध-नगर, अहमदाबाद के दक्षिण में लगभग ३६ मील दूर। विधर्मियों ने स्थान-स्थान के

मंदिर तोड़ दिये। सोमनाथ के मंदिर का अनेक बार ध्वंस किया, पर वृद्ध-नगर का पुरातन 'हाटकेश्वर' उनकी पहुंच से परे रहा। वृद्धनगर पर भी विदेशी टुकड़ियों और स्वदेशी लुटेरों के हमले लगातार होते रहते थे, किंतु वृद्धनगर की प्रजा इतनी बहादुर थी कि उसने हर हमले को प्राण-पण से विफल कर दिया।

हाटकेश्वर शिव-भक्त नागर ब्राह्मणों के परम पवित्र कुल-देवता हैं। मान्यता है कि वे सोमनाथ की अपेक्षा भी प्राचीन हैं। हाटकेश मंदिर की कारीगरी अद्वितीय है। आज भी देखनेवाले उसे देखते ही रह जाते हैं।

इस छोटे से वृद्धनगर—आज के वड़नगर—की प्राचीन परंपरा के सूत्र ढूंढ़े जायं तो ठेठ पौराणिक काल तक पहुंच जायंगे। गुजरात का पौराणिक नाम है आनर्त। मनु के एक पोते का नाम आनर्त था और उसी के नाम पर गुजरात का नाम आनर्त देश पड़ा। आनर्त की राजधानी द्वारका थी। अनेक वर्षों के पश्चात् आनर्तपुर गुजरात की राजधानी बना। आनर्तपुर का नाम ही कालांतर में आनंदपुर—वृद्धनगर—वड़नगर हो गया। भूतकाल में समुद्र में समाई द्वारका की तरह वृद्धनगर का वैभव भी समय के साथ समाप्त हो गया। राजधानी वहां से हट गई तथा स्वाभाविक रूप से इस नगरी का महत्व कम हो गया, लेकिन उसका मूल गौरव बना रहा, प्राचीन परंपरा अमिट रही।

अर्जुनदेव ने पाटण के सिंहासन पर बैठने के बाद अपने रक्षक महामंत्री नागेंद्रराय के एक पुत्र शोमनाथ को वड़नगर का मंडलेश्वर नियुक्त किया और उसे वड़नगर की जागीर दे दी। नागेंद्र को सबसे अधिक संतोष इस बात का था कि उसके लड़के को वड़नगर मिल गया, हाटकेश्वर की परम पवित्र भूमि उसके हाथ आ गई।

सोमनाथ स्वयं परम शिव-भक्त था। उसे बड़ा आनंद हुआ। वड़नगर की जागीर क्या मिली, प्रत्यक्ष कुलदेवता हाटकेश की छत्रछाया मिल गई।

सोमनाथ अपने साथियों को लेकर पाटण से निकल कर एक दिन वड़नगर की सीमा पर पहुंच गया। सामने ही मानसरोवर के समान

दिखाई दे रहे शर्मिष्ठा सरोवर तथा उसके पार ऊंचाई पर अर्धचंद्र की आकृति में बसी हुई छोटी-सी नगरी को देखकर वह पुलकित हो गया। हाटकेश्वर के दर्शन कर उसने अपने को धन्य माना। उसने संकल्प किया कि नागर कुलदेवता हाटकेश्वर की इस धरती और उसकी पवित्रता की रक्षा प्राणपण से करेगा। उसने गांव का निरीक्षण किया। गांव में प्रमुख बस्ती नागर ब्राह्मणों की थी। हर गांव में नागर ब्राह्मणों के घर एक-दूसरे से जुड़े रहते और उनकी बस्ती को नागरवाड़ी कहते थे। गुजरात में एक भी गांव ऐसा नहीं होगा, जहां नागरवाड़ी न हो।

गुजरात प्रांत में हर गांव की नागरवाड़ी को गुजराती संस्कृति का केंद्र माना जाता था। अपनी संस्कृति की रक्षा करते हुए भी समयानुसार क्रांतिकारी सुधार स्वीकार करने में यह समाज हमेशा आगे रहता आया था। नागर समाज विभिन्न कलाओं और ज्ञान का परमभक्त तथा पूर्ण रसिक था।

वड़नगर की नागरवाड़ी बहुत बड़ी थी। नागर-ब्राह्मणों का मूल निवास-स्थान होने के कारण यहां की नागरवाड़ी का महत्व भी बहुत था। यहां के नागर घराने पुरातन थे। नागर ब्राह्मणों के समीप ही नायक लोगों की बस्ती थी। ये लोग सोलह कलाओं में निपुण होते थे। नृत्य, संगीत, अभिनय आदि कलाएं उनकी घुट्टी में मिली थीं। जिस प्रकार नागरवाड़ी संस्कृति का, उसी प्रकार नायकवाड़ी कला का केंद्र थी। हाटकेश के सम्मुख प्रतिदिन पौराणिक नाटक, गान आदि होते रहते थे। ऐसे अवसरों पर नायक कलाकारों का अभिनय-कौशल खिल उठता था। ऐतिहासिक एवं पौराणिक नाटकों की रचना में भी वे बड़े कुशल थे। गांव में अपने-अपने व्यवसाय के अनुसार अन्य जातियों की बस्तियां भी थीं।

नागरवाड़ी और हाटकेश के परिसर में अनेक पाठशालाएं थीं। वृद्धनगर गांव था तो छोटा, किंतु बड़ा समृद्ध दिखायी देता था।

मंडलेश्वर सोमनाथ राय के गांव में प्रवेश करते ही वड़नगर के नगरसेठ तथा अन्य प्रमुख लोगों ने बड़ी धूम-धाम से उनका स्वागत किया।

सोमनाथ राय ने बड़नगर का शासन अपने हाथ में ले लिया। वे उसके विकास एवं विस्तार में लग गए। प्रारंभ में बस्ती शर्मिष्ठा तालाव के एक किनारे पर थी, वह अब चारों ओर फैल गई। तालाब इस तरह शोभित होने लगा, जैसे पानी का कलश बीच में रखकर चारों ओर गरवा नृत्य हो रहा हो।

शर्मिष्ठा तालाब वहां के प्रत्येक प्राणी का जीवन और नगरी का सौंदर्य था। गर्मी के दिनों में जव दूसरे गांवों के कुएं तथा दूर-दूर के तालाब सूख जाते, शर्मिष्ठा में द्रौपदी के चीर की तरह बराबर पानी भरा रहता। सोमनाथ राय ने तालाब पर बहुत सुंदर और पक्के घाट बंधवा दिये। इससे तालाब की ही नहीं, नगरी की शोभा सौगुनी हो गई। सोमनाथ राय ने तालाब को जाने वाले एक प्रमुख मार्ग का नाम शर्मिष्ठा-मार्ग रखा।

सोमनाथ राय ने वहां बाजार को भी खुशहाल कर दिया। बड़नगर का व्यापार खंभात और भृगु-कच्छ बंदरगाहों द्वारा मस्कत, जावा, सुमात्रा तक होने लगा, पशु-धन पुष्ट होने लगा। जिन घरों पर किसी समय लक्षदीप जलते थे, उन पर पताकाएं फहराने लगीं। लक्षदीप-युक्त हवेलियों की तो भरमार हो गई।

नगर की सुरक्षा के लिए सोमनाथ राय ने चारों ओर ऊंचा पर-कोटा बनवा दिया। चार दिशाओं में चार विशाल द्वार बनाये गए। प्रत्येक दरवाजे के पास, कोट के ऊपर जाने के लिए सीढ़ियां बनाई गईं। दरवाजे के अंदर की चौकियों पर चार पहरेदार रहते। सूर्यास्त के समय बाहर गये हुए लोगों और पशुओं के आने के बाद दरवाजे वंद कर दिये जाते। बाद में आने वाले प्रत्येक व्यक्ति की कड़ी जांच करके ही उसे खिड़की से अंदर आने दिया जाता था। चारों दरवाजे सूर्योदय के समय खोले जाते। बड़नगर की सुरक्षा एक किले की तरह की जाती थी।

सोमनाथ राय के शासन-काल में बाहर से अनेक नागर ब्राह्मण वहां आकर बस गए। उस समय विवाह-सम्बन्ध गांव-के-गांव में ही होते थे,

किंतु सोमनाथ राय ने अपने घर की लड़कियां काशी, जूनागढ़, मेवाड़ आदि दूर-दूर के स्थानों पर देना आरंभ किया और वहां से कन्याएं अपने घर लाये। अन्य लोगों ने भी उनका अनुकरण किया।

इस तरह नगर में नागर ब्राह्मणों की बस्ती बढ़ गई। वहां की नागरवाड़ी सारे गुजरात और सौराष्ट्र में शामिल हो गई। नागर ब्राह्मणों में लड़ाकू लोग भी थे। मौका आने पर वे रणवेश धारण किये, हाथ में तलवार लेकर बाहर निकल पड़ते थे।

सोमनाथ राय की मृत्यु जिस वर्ष हुई, उसी वर्ग गुजरात की भूमि पर यवन-दल की छाया पड़ी। अंतिम गुर्जराधिपति कर्ण हारे और दक्षिण की ओर भाग गये।

यवन-दलों ने संपन्न गुजरात पर अधिकार कर लिया। अनेक नगर लूट लिये। अराजकता आरंभ हो गई। यवन-दलों के साथ-साथ लुटेरों की भी बन आई। चोर-उचक्के भी सिर उठाने लगे। दुर्बल, असुरक्षित गांवों को लूटने लगे। जो मिलता, लूटकर वे लोग आगे बढ़ जाते थे।

पाटण से आने वाला एक मार्ग वड़नगर के पूर्वी दिल्ली दरवाजे के सामने से ठेठ दिल्ली तक जाता था। इसी रास्ते से विदेशी हमलावर आते और ढाटा बांधे हुए लुटेरे भी गुजरते। लुटेरों के आने की खबर जासूसों द्वारा प्राप्त होते ही नगर के चारों दरवाजे बंद कर दिये जाते। डर दिल्ली दरवाजे पर ही अधिक रहता था।

कभी लुटेरों के दल घोड़ों को दौड़ाते हुए आगे निकल जाते और कभी दरवाजे पर टक्करें मारते। द्वार पर थपथपाहट होते ही चौकी का पुराना लड़ाका पहरेदार रणमल्ल भाठी हाथ का हुक्का नीचे रखकर अपनी सफेद मूछों पर ताव देता। साठ से अधिक उम्र हो जाने पर भी अभी उसकी काठी मजबूत थी। वह उठकर दीवार पर लटकती हुई अपनी तलवार हाथ में लेता और सीढ़ियां चढ़कर कोट के ऊपर जाता। इधर दरवाजे पर धक्के लगते रहते, पर उस वीर राजपूत को जैसे कोई जल्दी ही न हो। वह अपनी तलवार निकालकर नीचे देखता और यदि लुटेरे

हुए तो चिल्लाकर कहता, "अरे, भाइयो, यह गांव ब्राह्मणों का है। सारी बस्ती नागर ब्राह्मणों की है। सभी भजन-पूजा करने वाले हाटकेश्वर के सेवक हैं। उनको लूटकर पाप क्यों कमाते हो? जाओ, चुपचाप अपने रास्ते चले जाओ।"

यह सुनकर गरम दिमाग वाला कोई लुटेरा नीचे से चिल्लाता, "अरे ए, पाप-पुण्य के बच्चे, चुपचाप दरवाजा खोल!"

इस पर रणमल्ल की आवाज की नम्रता लुप्त हो जाती। उसका कठोर स्वर गूंज उठता, "कौन बक रहा है रे? ओ लुटेरे, कान का पर्दा खोलकर अच्छी तरह सुन ले। तुम लोगों को अगर दंगा-फसाद ही करना है तो यह राजपूत रणमल्ल तैयार है। हो जाय दो-दो हाथ! पर कान खोलकर साफ-साफ सुन लो—यह हाटकेश का गांव है। हाटकेश की निज-भूमि है। इस गांव को हाटकेश की आन है कि जो भी इस गांव पर हाथ उठायगा, उसका सर्वनाश हो जायगा। उसका वंश खत्म हो जायेगा। आजतक इस प्रकार बहुतों का नाश हुआ है। वे सभी निर्वंश हो गए। तुमको इसकी परीक्षा करनी है तो आगे आओ! दरवाजा खोलता हूं। अंदर आओ।"

घोड़े पर बैठे हुए लुटेरे गर्दन ऊंची करके ऊपर देखते। हवा में तलवार उठाये उस राजपूत की ताकत का अंदाज उन्हें दूर से ही हो जाता। उसके फौलादी शरीर पर पुराने जख्मों के निशान दूर से ही दिखायी देते। लुटेरों को समझते देर न लगती कि जिस गांव का पहरेदार इतना जागरूक हो, वह गांव सामना करने के लिए कितना तैयार होगा। गुजरात भर में हाटकेश के जागृत देव होने की प्रसिद्धि भी उनके ध्यान में रहती थी। वहां की आन का भय भी उनके मन को आतंकित कर देता था।

रणमल्ल उनके असमंजस को ताड़ लेता और हंसते हुए स्नेह-भाव ने कहता, "अरे भाइयो, अपने देश में यवनों ने लूट-मार मचा रखी है, लोग हैरान हो रहे हैं, और तुमने अपने ही घर को लूटने का धंधा आरंभ

कर दिया है ! यह ठीक नहीं है। लौट जाओ मेरे भाइयो, मेरे बापो, लौट जाओ। जय हाटकेश !"

ढाटे बांधे हुए लुटेरे 'जय हाटकेश' की गर्जना करते हुए आगे चल देते।

नगर के द्वार पर धक्के मारने वाली टोली यदि विदेशियों की होती तो रणमल्ल हाथ की तलवार परकोटे पर रख हाथ जोड़कर गिड़-गिड़ाता, "सुलतान मियां, यह गांव गरीब ब्राह्मणों का है। बेचारे ब्राह्मण ताल, मंजीरा, एकतारा लेकर रात-दिन भजन करते हैं। पूजा पूरी होते ही शंख बजाते हैं। ओ परवरदिगार, मेहरबानी करो, आगे बढ़ जाओ—इस गांव में लूटने के लायक कुछ भी नहीं है।"

यवन घुड़सवार गर्दन उठाकर परकोटे पर दीन-मुद्रा में खड़े निहत्थे बूढ़े पहरेदार की ओर देखते। उन्हें यकीन हो जाता कि यहां सामना होने का थोड़ा-सा भी डर नहीं है। वे एक-दूसरे की ओर अचरज से देखते कि इतने मजबूत परकोटे से घिरा हुआ गांव और गरीब ! फिर पहरे की क्या जरूरत ! ब्राह्मणों के पास ही तो ज्यादा धन होता है। और यह बूढ़ा कहता है कि गरीब ब्राह्मणों का गांव है ! यह सब झूठ है, सरासर झूठ !

तुर्क घुड़सवार तब अकड़कर कड़ी आवाज में घुड़कते, "अबे ओ बुड्ढे, बकबक बन्द कर, दरवाजा खोल। जल्दी कर।"

यवन द्वार तोड़ने की कोशिश करते। अंदर उसी समय कहीं रण-सिंगा बजता। सोमनाथ राय के बाद गद्दी पर बैठे शिवशंकर राय अपने भाई और लड़कों सहित रण-सज्जा में घोड़ों पर निकल आते। घर-घर से हथियारबंद पुरुष उनके पीछे होते।

रणमल्ल दरवाजा खोल देता। धूल के बादल उड़ाते हुए यवन लुटेरे अंदर घुसते। गांव का वैभव उनकी आंखों को चौंधिया देता। वे उन्मत्त होकर जैसे ही गांव की ओर बढ़ते, समुद्र की प्रचंड लहर की तरह नागर-सेना मुकाबले पर आ जाती।

नागर ब्राह्मणों के हाथों में ताल-मंजीरों के स्थान पर तलवारें होतीं। 'जय हाटकेश! जय हाटकेश!' के प्रचंड निनाद के साथ वे यवनों को मार गिराते। जो बच जाते वे दुम दबाकर भाग छूटते।

थोड़ी देर में सर्वत्र शांति हो जाती। दुश्मन का मुकाबला करने के लिए आये हुए लोग ढाल-तलवार दीवारों पर टांगकर अपने-अपने नित्य के व्यवसाय में लग जाते। रणमल्ल चौकी पर आराम से हुक्का पीने लगता, मानो कुछ हुआ ही न हो। हाटकेश के मंदिर में भजन की धूम मच जाती। रोज का जीवन-क्रम शांत चित्त से व्यवस्थित चलने लगता।

सालों तक यही क्रम चलता रहा। शिवशंकर के बाद फणीद्र राय और हरिहर राय आये। उनके बाद अब नीलकंठ राय वहां के मंडलेश्वर हो गए थे।

शूर रणमल्ल भाठी नहीं रहा था, किंतु उसी का एक वंशज आज भी दिल्ली दरवाजे को बहादुरी से संभाले हुए था।

पंद्रहवीं-सोलहवीं शताब्दी के दौरान गांवों पर अचानक हमला होना, घरवार का लूटा जाना, गुजरातवासियों के जीवन की स्वाभाविक घटना हो गई थी। उस समय गुजरात की उपजाऊ स्वर्ग-भूमि उजड़ गई थी। वहां की शस्य श्यामला भूमि घोड़ों की टापों से रोंदी जा रही थी, फिर भी उसका प्राकृतिक गुण नष्ट नहीं हुआ था। खेतों में खूब पैदावार होती थी। फल द्रुपता में कमी नहीं हुई थी।

यह सच है कि पुराना वैभव नहीं रहा था, परंतु गुजरात की मूल रसिक-वृत्ति ज्यों-की-त्यों बरकरार थी। उसका गौरव समाप्त नहीं हुआ था। स्वतंत्रता चली गई थी, परंतु संस्कृति शेष थी। उत्सव, समारोह, धार्मिक कृत्य, कौटुंबिक कार्य सभी कुछ पूर्ण उत्साह के साथ होते थे। गली-गली में गरबे होते, मंदिर के प्रांगण में पौराणिक नाटक होते, अखंड कीर्तन चालू रहते, गानों की महफिलें होतीं। जीवन सुरक्षित नहीं था, तो भी दैनिक कार्यक्रम सुचारु रूप से चल रहा था।

मंडलेश्वर की हवेली का वैभव भी अब पूर्व पीढ़ियों के समान नहीं रह गया था। जागीर अवश्य कायम थी, परंतु मंडलेश्वर, मंत्री, अमात्य आदि पदवियों का, मुसलमानी शासन में, शाब्दिक गौरव के अतिरिक्त कोई अर्थ शेष नहीं रह गया था।

विदेशी शासन शुरू होने के बाद नीलकंठ राय के दादा ने व्यापारी पेढ़ी आरंभ कर दी थी। पेढ़ी का व्यापार खंभात मार्ग से ठेठ मस्कत तक होता था। इसके अतिरिक्त नगर में चोर-लुटेरे कभी नहीं घुस पाये थे, अतः वहां के संचित धन में कोई कमी नहीं हुई थी। अन्य गांवों की अपेक्षा वड़नगर में काफी खुशहाली थी।

तीन

सारा गांव जानता था कि मायागौरी की दोनों बहुएं, ताना और रिरी बहुत सुंदर हैं। दोनों बहुओं का पीहर गांव में ही होने के कारण घूंघट में छिपा उनका अनुपम सौंदर्य भी कइयों ने प्रत्यक्ष देखा था। दोनों बहुएं एक ही घर की थीं। वे सगी बहनें थीं—बंशीधर मेहता की पोतियां और घनश्याम मेहता की कन्याएं। वड़नगर गांव में पुराने प्रतिष्ठित घरानों में बंशीधर मेहता का घर अग्रणी माना जाता था। उनकी पीढ़ियों से चल रही पेढ़ी गांव में ही थी। यह घराना वैष्णवपंथी था। बंसी काका परम कृष्णभक्त थे—बड़े ही शांत, परोपकारी और सबसे समभाव रखने वाले। उनके स्वभाव की सभी लोग प्रशंसा करते रहते थे, सारा गांव उनकी बात मानता था। राजनीति में वे कभी भाग नहीं लेते थे, फिर भी जब कभी जरूरत पड़ती, मंडलेश्वर की हवेली से सलाह-मशविरे के लिए उन्हें बुला लिया जाता। उनकी सलाह कोई टाल नहीं सकता था।

बंसीकाका बहुत अच्छे संगीतज्ञ थे। ताना-रिरी को संगीत उन्होंने सिखाया था। घनश्यामराय भी अपने पिता-जैसे ही थे। बंसी काका के

घर की प्रतिष्ठा, घर के रीति-रिवाज और कृष्णभक्ति की उनकी प्रसिद्धि सुनकर ही उना के श्रीरंग मेहता की पत्नी और गुजरात के वैष्णवभक्त नरसी मेहता की पुत्री कुंवरबा ने अपनी बेटी शर्मिष्ठा का विवाह घन-श्यामराय से कर दिया था। शर्मिष्ठा अपने दादा की वैष्णवभक्ति ले कर ही इस घर में आई थी। नागरवाड़ी के सारे वैष्णव कहने लगे, "दूध में मिश्री पड़ी है। घनश्याम बड़ा किस्मत वाला है।"

घनश्यामराय और शर्मिष्ठा कृष्णभक्ति के साथ ही अपनी गृहस्थी चला रहे थे। कुछ समय बाद एक कन्या का जन्म हुआ। वह थी ताना। फिर दूसरी कन्या आई रिरी। नगरों में सुंदरता का कभी अभाव नहीं रहा। नागर-कन्या कहते ही सौंदर्य की देवी सामने आ जाती है। एकदम संगमरमर-सा गोरा रंग, बड़ी-बड़ी आंखें, सीधी तीखी नाक, उच्च संस्कारों की छापवाली अभिजात-वृत्ति आदि संस्कारों से परिपूर्ण नागर-कन्या किसी से छिपी नहीं रह सकती। वह सबमें अलग ही पहचानी जाती है।

ताना-रिरी की सुंदरता का क्या पूछना! उनका सौंदर्य एकदम अनोखा था। उसमें भी ताना शायद कुछ अधिक सुंदर थी। सारी नागर-वाड़ी के लोग कहते, "बंसीकाका की भक्ति से प्रसन्न होकर 'राधाकृष्ण' ने सौंदर्य की अप्सरा और गंधर्व कन्या की पौत्री के रूप में वरदान दिया है।" नरसी मेहता के पुण्य का ही फल शर्मिष्ठा की गोद में फूला-फला था।

कोकिल-काकली-जैसी मधुर कंठवाली ताना-रिरी का रिश्ता अपने ही घर में होना चाहिए, यह भावना नागरवाड़ी के प्रत्येक परिवार में विद्यमान रहती थी। शर्मिष्ठा के घर मिलने आनेवाली स्त्रियां अक्सर इस तरह की बात कह दिया करती थीं।

शर्मिष्ठा की सास से एक दिन ललितागौरी ने कहा, "लाभूबा, शर्मिष्ठाबेन को भगवान ने हीरे-जैसी लड़कियां दी हैं। अब आपको दामाद भी हीरे-जैसे ही मिलने चाहिए।"

लाभकुंवरबा ने कहा, "मेरी पोतियों को जैसे शोभा देंगे, वैसे ही दामाद मेरे दरवाजे पर आयेंगे, बेन।"

एक अन्य स्त्री बोली, "लाभूबा, हमारे गांव में क्या सुंदर लड़कों की कमी है ? गांव छोड़कर लड़कियों को आप बाहर मत देना।"

"देखेंगे, जब समय आयगा तभी इस पर सोचेंगे। आज क्या करना है फालतू बातें करके।"

लाभकुंवरबा ने चर्चा बंद कर दी। कभी-कभी पड़ोस की रमिलाबेन या ललिताबेन किसी काम का बहाना बनाकर शर्मिष्ठा के पास आतीं और घुमा-फिराकर यही बात करतीं। तब शर्मिष्ठा कह देतीं, "बेन, जिसने ये दो हीरे मुझे दिये हैं, वही इन हीरों के लिए पारखी भी ढूंढ़ देगा। मैं क्यों बेकार इसकी चिंता करती रहूं !"

रमिलाबेन के साथ सूर्यकांताबेन भी खड़ी थी। वह बोली, "बिल्कुल सही है शर्मिष्ठाबेन, आपकी बात। तू जब कुंवरबा के पेट में थी तब तेरे नाना नरसी मेहता को भात भरना था, लेकिन भगवान कृष्ण को वह भात भरना पड़ा था। उसी कुल की तू कन्या है। भक्ति और श्रद्धा तुझमें वहां की है तो भगवान इसमें भी तेरी जरूर मदद करेंगे।"

जब बातचीत इस तरह चल पड़ी तो रमिलाबेन फिर बोल उठी, "बेन, चम्पाबेन का माधव तुमको कैसा लगा ?"

"अच्छा है।"

"और अपने जयाबेन का जितेंद्र ?"

"ठीक है।"

रमिलाबेन के जाने पर जयाबेन आई और उसने कहा, "क्यों बेन, रमिलाबेन का रसिक ताना के लिए और सूर्यकांताबेन का रमणीक रिरी के लिए अच्छा रहेगा न !"

नागरवाड़ी की स्त्रियां इसी तरह की बातें आपस में करती रहतीं और एक-दूसरी की सिफारिश शर्मिष्ठाबेन से कर आतीं। लेकिन शर्मिष्ठा ने कभी किसी की प्रशंसा पर विचार नहीं किया। ये बातें तो लाभकुंवरबा के विचार करने की थीं। लड़कियां अब बड़ी होती जा रही थीं। जल्दी ही तय करना जरूरी था, यह लाभकुंवरबा जानती थीं,

लेकिन जैसे लड़कियों के सौंदर्य में उफान आ रहा था, वैसे ही उनके सौंदर्य का मोल भी बढ़ता जा रहा था। लाभकुंवरबा नागरवाड़ी के सभी विवाह--योग्य लड़कों को अपनी नजर के सामने लाकर उनका मोल-तोल सोचतीं, लेकिन कोई लड़का उनके मन पर चढ़ नहीं पाता था।

घर की स्त्रियों में यह चर्चा होती, लेकिन बाहर पुरुषों में अभी इस चिंता ने प्रवेश नहीं किया था। यह स्वाभाविक था, क्योंकि नगरों में शादी-विवाह का निश्चय करना घर की बड़ी-बूढ़ी स्त्रियों के जिम्मे ही था। बहू अथवा दामाद के चुनाव का पहला अधिकार नागर समाज में स्त्रियों का ही था। बाहर की बातों में, चाहे वे व्यापार की हों या नौकरी की, स्त्रियां कभी दखल नहीं देती थीं। घर की बातों में पुरुष टांग नहीं अड़ाते थे। लाभकुंवरबा को रात-भर नींद नहीं आती। लड़कियों को दूसरे गांव में दे दिया जाय तो भी कोई हर्ज नहीं। घर-वर अच्छा होना चाहिए।

एक दिन दोपहर के समय ताना का छोटा भाई कुंजबिहारी बाहर से दौड़ता हुआ आया। बोला, "दादाजी, हवेली की पालकी हमारे यहां आई है। उसमें भक्तिबा हैं।"

बंसीकाका आश्चर्यचकित होकर एकदम उठ खड़े हुए। भक्तिबा साधारणतया किसी के घर नहीं जातीं। किसी से काम हुआ तो उन्हें ही हवेली में बुला लेती हैं। जिसके घर में चली जातीं, उसकी प्रतिष्ठा अपने-आप बढ़ जाती थी। लग्न-विवाह के प्रसंग पर ज़िद करनेवालों की बात वे कभी-कभी मान लेती थीं। वहां छोटे-बड़े का कोई भेद नहीं होता था।

आज भक्तिबा को अचानक अपने घर देखकर बंसीकाका हक्के-बक्के रह गए। झटपट अंदर के दालान के दरवाजे पर खड़े होकर कहा, "सुना, भक्तिबा हमारे घर आई हैं।" कुंजबिहारी तो पहले ही दौड़कर यह खबर सब जगह पहुंचा गया था।

लाभकुंवरबा बाहर निकलीं। शर्मिष्ठा भी हाथ में सफेद धुली हुई चादर लिये सास के पीछे-पीछे बाहर आई।

बंसीकाका आंगन की सीढ़ी के नीचे उतरकर सामने पहुंचे। पालकी से भक्तिवा उतरीं। शाल सम्हालते हुए वे सीढ़ियां चढ़कर बड़े दालान में आईं। घर के सभी लोगों ने समझा, मानो साक्षात् देवकी माता ही उनके घर पधारी हैं।

"जय हाटकेश ! जय हाटकनाथ !" बंसीकाका ने हाथ जोड़कर कहा।

"जय हाटकेश !" भक्तिबा ने प्रत्युत्तर में कहा।

लाभकुंवरबा ने आगे बढ़कर कहा, "आआ बेन, पधारो।"

शर्मिष्ठा ने आगे बढ़कर दरवाजे में से भक्तिबा के सामने चादर बिछा दी।

"बहू, यह क्या !" भक्तिबा ने स्नेह से झिड़का।

"कोई खास बात नहीं है, बेन, आप इस पर से चलिये।" लाभकुंवर-बा ने कहा।

शुभ्र चादर पर धीरे-धीरे चलते हुए भक्तिबा ने कहा, "आज बिना कहे अचानक आ गई हूं।"

बंसीकाका विभोर हो रहे थे। बोले, "भक्तिबेन, देवी-देवताओं का आगमन इसी तरह होता है, और जगन्माता, सर्वसंचारी, इच्छानुवर्तिनी, अनुकामिनी...."

परम शिवभक्त भक्तिवा बंसीकाका की इस प्रशंसा-भरी वाणी से अत्यंत प्रसन्न हुईं। वे लाभकुंवर के साथ औरतों के दालान में चली गईं।

अंदर झूले पर भक्तिबा को आदर से बिठाया गया। शर्मिष्ठा ने गाव-तकिए का सहारा दिया। लाभूबा भक्तिबा के पास ही झूले पर बैठ गई।

"ओ ताना ! ओ रिरी !"

दादीमां की पुकार सुनकर ताना दौड़कर बाहर आई। भक्तिबा को सामने देखकर कंधे पर गिरे आंचल को उसने सिर पर ओढ़ लिया। झुक-

कर भक्तिबा को प्रणाम किया । उसके पीछे-पीछे रिरी भी आई और उसने भी ताना का अनुकरण किया । भक्तिबा ने प्रसन्न होकर उन्हें आशीर्वाद दिया ।

थोड़ी देर रुकने के बाद दादी का इशारा पाकर दोनों बालिकाएं अंदर चली गईं । उनकी ओर देखते हुए भक्तिबा ने स्नेहपूर्वक कहा, "कैसी सुंदर जुड़वां बहनें दिखायी देती हैं ।"

"हां, दोनों के जन्म में एक साल का अंतर है, लेकिन दिखाई ऐसी देती हैं, जैसे जुड़वां हों । रिरी अपनी बड़ी बहन के बिल्कुल पीछे चलती है । जैसा ताना करेगी, वैसा ही वह भी करेगी । बिल्कुल उसकी छाया है— छाया ।"

"लाभूबेन, आप बहुत भाग्यवान हो । दो बहनों में इतना प्रेम आज कहां दिखाई देता है !"

लाभकुंवरबा ने हंसकर कहा, "आपका कहना सही है । ऐसा प्रेम सचमुच आज मुश्किल है । एक के कांटा लगता है तो दूसरी की आंखों में आंसू आ जाते हैं ।"

"दोनों का प्रेम धन्य है !"

"पर भक्तिबेन, इस प्रेम की वजह से हमारे सामने बहुत बड़ी कठिनाई आ जाती है ।"

"वह क्या ?"

"हमें दोनों के लिए एक ही घर ढूंढ़ना पड़ रहा है। रिरी ने तो हठ ठान रखी है कि जिस घर में बड़ी बहन को दो, उसी घर में मुझे भी दो । हम दोनों को अलग मत करो। इसलिए एक ऐसा घर चाहिए, जहां इन दोनों के योग्य दो लड़के हों ।"

"हां, यह बात तो ठीक है । पर इसमें अड़चन कहां है ? अपनी नागरवाड़ी में ही बहुत नहीं तो, एक-दो घर तो ऐसे हैं ही । जयकुंवरबेन का लड़का और उसकी छोटी देवरानी का लड़का तुम्हारे ध्यान में नहीं आये क्या ?"

"हां, ये भी हैं और जूनागढ़ के नाथालाल पंड्या के घर भी दो बरा-बर के लड़के हैं।"

इसी समय शर्मिष्ठा चांदी की थाली में सूखा मेवा लेकर आई और भक्तिबा के सामने रखा। एक सेविका चांदी का पानदान भी लाकर रख गई।

इधर-उधर की बातें हुईं। भक्तिबा ने अंत में कहा, "लाभूबेन, मैं तो शर्मिष्ठा की दोनों लड़कियों को मांगने यहां आई हूं।"

लाभकुंवरबा आश्चर्यचकित रह गई। उसे अपने कानों पर विश्वास नहीं हो रहा था। वह सोच रही थी—यह सपना है या सच्चाई कि भक्ति-बा अपनी ताना-रिरी को मांगने आई हैं? दोनों लड़कियों को मंडलेश्वर के घर की बहू बनाने के लिए भक्तिबा खुद ही चलकर यहां आई हैं!

थोड़ी देर रुककर उसने कहा, "आपका मतलब?"

इस प्रश्न पर भक्तिबा चकरा-सी गईं। शंकित हो गईं। लाभकुंवर कट्टर वैष्णव है। बातचीत में वह 'शिव' शब्द बोलने से भी बचती है। क्या वह अपनी लड़कियां शैव के घर में जाने देगी? भक्तिबा ने फिर भी धैर्यपूर्वक कहा, "मेरी मायागौरी का लोकेश और दयागौरी का महेश दोनों ही लड़के इसी गांव में बड़े हुए हैं। आपने अच्छी तरह देखे ही होंगे?"

"अरे, भक्तिबा, उनको तो हम रोज ही देखते हैं। राम-लक्ष्मण की जोड़ी है। कैसा राजसी रूप है दोनों का। उन पर निगाह ही नहीं ठह-रती।"

"इसलिए कह रही हूं कि इस काम में अपने शैव-वैष्णव पंथ आड़े न आयें! आप कट्टर वैष्णव..."

लाभकुंवरबा ने बीच में ही बात काटकर कहा, "यह कट्टरता आगे की पीढ़ी में भी रहने वाली है क्या? न आपके घर रहेगी, न हमारी आगे की पीढ़ी में दिखाई देगी।"

खुश होकर भक्तिबा बोलीं, "तो फिर तय रहा?"

लाभकुंवरबा गद्गद् हो उठी । उसने कहा, "मैं तय करने वाली कौन हूं ! हाटकेशनाथ ने जब सबकुछ पहले से ही तय कर रखा हो तो !"

थोड़ी देर बाद भक्तिबा ने अपनी नई समधिन से विदा ली । बंसीकाका का पूरा घर आनंद से भर गया ।

देखते-देखते सारी नागरवाड़ी में बात फैल गयी कि भक्तिबा ने शर्मिष्ठा की दोनों लड़कियों का लोकेश और महेश के साथ विवाह तय कर लिया है। आश्चर्य की बात तो यह थी कि भक्तिबा ने स्वयं जाकर बंसीकाका की पोतियों को मांगा, जबकि वहां पर वैष्णव की लड़की वैष्णव के घर तथा शैव की लड़की शैव के घर ही दी जाती थी । मंडलेश्वर का घराना इतना कट्टर शिव-भक्त था कि एक नौकर का नाम नारायण से बदलकर नागनाथ कर दिया था । इस संबंध के पीछे एक ही खास बात थी कि सौंदर्य और गुणों में शर्मिष्ठा की लड़कियों की बराबरी कोई नहीं कर सकता था। इसलिए पंथ और घराने की बातें गौण हो गईं ।

दोनों ही घरों में विवाह की तैयारियां आरंभ हो गईं । पूरा बड़नगर हर्ष और उल्लास से भर उठा। दोनों घरों की शादी दो पंथों की शादी बन गई । हर नगरवासी सोचने लगा कि यह उसी के घर का विवाह है और वह काम में जुट गया । सभी ओर अनुपम उत्साह था ।

दोनों विवाह एक ही शुभ मुहूर्त में, एक ही लग्न-मंडप में, संपन्न हुए। दोनों पंथों के कुछ कट्टरपंथियों ने नाक-भौं सिकोड़ी, पर उनका रोष विवाह-भोज के समय पकवानों की सुगंध से दूर हो गया। बड़नगर में कई दिनों तक उत्सव होता रहा।

•

चार

सूर्य पश्चिम की ओर जा रहा था। वैशाखी गर्मी की तपन कम हो रही थी। मंडलेश्वर की हवेली के विशाल आंगन में एक-एक कर बैलगाड़ियां आने लगीं। थोड़ी देर में ६०-७० के करीब बैलगाड़ियां जमा हो गईं। नीलकंठराय ने कड़ा हुक्म दिया था कि जिन्हें भी यात्रा के लिए जाना हो, उनकी बैलगाड़ियां रात होने से पहले हवेली के आंगन में इकट्ठी हो जानी चाहिए, सारा सामान रात में ही भरकर ठीक कर लेना चाहिए, ताकि सुबह जल्दी निकला जा सके। किसी भी हालत में देर नहीं होनी चाहिए और मुहूर्त नहीं टलना चाहिए।

हवेली में दिन भर भीड़ लगी रही। बाहर के भवन में सुबह से ही नीलकंठराय को विदा देने के लिए आने वाले पुरुषों का तांता लगा रहा। जनानखाने में भी स्त्रियों का आना-जाना चालू था। अंदर और बाहर दोनों जगह विदा के नारियलों का ढेर लग गया था।

नीलकंठराय ने अपनी गैरहाजिरी में नगर का काम देखने के लिए गांव के अनुभवी और प्रतिष्ठित लोगों की एक समिति नियुक्त कर दी। बहुमत से उसके प्रमुख बंसीकाका चुने गए। अब नीलकंठ राय को अपने पीछे की कोई चिंता नहीं रह गई थी।

सूर्यास्त से पहले हवेली का प्रांगण बैलगड़ियों से भर गया। गाड़ीवानों ने बैल छोड़ दिये। बैल सभी सुंदर एवं हृष्ट-पुष्ट थे। गाड़ियां लंबी पेटियों की तरह थीं और उन पर अर्द्ध-गोलाकार रंग-बिरंगे चंदोवे तने थे। लोग सामान की गठड़ियां लेकर दौड़ते हुए आते और उनको गाड़ियों में सहेज कर रखते जाते थे।

हवेली के नौकर भी भाग-दौड़ और कार्य में लीन थे। मंडलेश्वर-परिवार की यात्रा की तैयारी का मामला जो ठहरा। चार-पांच महीनों

की यात्रा, खाने-पीने के कड़े नियम और छुआछूत की बड़ी बातें। सीधा-सामग्री और बरतन आदि रसोई के सभी साधनों की बड़ी तैयारी हो रही थी। बिस्तर-बिछौने, कपड़े-लत्ते सब इस प्रकार जमा किये जा रहे थे मानो बाहर नया घर ही बसाने जा रहे हों।

नीलकंठ राय स्वयं आज्ञा देते और इधर-उधर चारों ओर देखते-भालते घूम रहे थे।

ताना अपनी सास और ददिया सास के कपड़े पेटियों में भरकर अभी-अभी निवृत्त हुई और जनानखाने के अपने कक्ष में जाकर खिड़की के पास खड़ी नीचे प्रांगण की हलचल को देखने लगी।

कुछ नौकरों ने अंदर से बहुत सारी म्यानवाली तलवारें, कटारें, भाले, लाठियां आदि लाकर एक ओर रखीं। नीलकंठ राय ने उन सभी हथियारों की जांच की और तब गाड़ीवानों को कुछ सूचनाएं दीं। गाड़ीवान उनमें से एक-एक, दो-दो तलवारें, कटारें, भाले, लाठियां आदि उठाकर गाड़ियों में बिछी हुई दरियों के नीचे रखने लगे। फिर ऊपर भूसा फैलाकर उन्हें ढक दिया। उसके बाद बिस्तर, बरतन आदि सामान अच्छी तरह जमा दिया।

गाड़ियों में छिपाए हुए हथियारों को ताना कुछ कुतूहल से देखती रही। तीन महीने पहले दर्भावती से उसके दादा से मिलने के लिए बिहारी काका आये थे, उनके मुंह से उसने सुना था कि उत्तर में जहां-तहां यवन-सेना फैली हुई है, चारों ओर दंगे और गड़बड़ चल रही है। खूब लूटपाट मची हुई है। रास्ते में यात्रियों के लूटे जाने का डर रहता है।

एक ही महीने पहले वैष्णवों की जो मंडली वृंदावन की ओर गई थी, उसे यवन-सेना ने लूट लिया। पर इस प्रकार की घटनाओं से यात्राएं बंद नहीं हुईं। गांव-गांव के लोग समूह बनाकर यात्राओं पर जाते और काशी विश्वेश्वर का मंदिर, सोमनाथ का मंदिर, हरद्वार के घाट आदि तीर्थस्थल शिवभक्त यात्रियों की 'हरि ओम्'...'हरि ओम्'...'हर गंगे'...

'जय विश्वेश्वर' ...'जय शिव'...'जय सोमनाथ'... के स्वरों से गूंजते रहते। वैष्णव भक्तों की यात्राएं वृन्दावन, मथुरा आदि पवित्र स्थानों में 'राधेकृष्ण', 'जय-जय राधेकृष्ण'...आदि भजन गाती हुई चलती रहती थीं।

ताना को आज की यात्रा की तैयारी अलग ही प्रकार की लगी। ठीक भी था, क्योंकि यह यात्रा किसी सामान्य घर की नहीं, स्वयं वड़नगर के मंडलेश्वर और उनके परिवार की तीर्थ-यात्रा थी। संकट के दिनों की यात्रा में बड़े घर का इस प्रकार का संरक्षण आगे शायद ही मिल सके। इसी विचार से गांव के अनेक लोग यात्रा पर जाने के लिए तैयार हो गए थे, खासकर गांव की बूढ़ी स्त्रियां इस अवसर का लाभ अधिक संख्या में उठा रही थीं। सुरक्षा और संरक्षण के उत्तरदायित्व को निभाने के लिए ही मंडलेश्वर ने बड़ी तादाद में हथियार साथ ले जाने का इन्तज़ाम किया था।

× × ×

ताना खिड़की के पास खड़ी थी। उसी समय लोकेश अंदर आया।

उसने हँसते हुए छेड़खानी की, "ओहो, बहूरानी बड़ा गंभीर निरीक्षण कर रही हैं!"

ताना ने पीछे घूमकर देखा और आगे बढ़ते हुए कहा, "यात्रा में तो मुझे कोई ले नहीं जायगा, इसीलिए सोचा कि यात्रा की तैयारी देखकर ही जी भर लूं।"

"समय आयगा तो यात्रा भी होगी।"

"बूढ़ी हो जाऊंगी तब। इसके बाद समय कब आयेगा?"

"क्या नवयुवतियों को भी तीरथ करना होता है?"

वह हँस दी और मुंह पर पल्ला लेकर नकली गंभीरता से बोली, "अच्छा, तो यह बात है? लगता है कि मेरे दादाजी को अपने जमाइयों की उम्र के बारे में गलतफहमी हो गई।"

"गलतफहमी?"

"हां, जवान की जगह शायद उन्हें बूढ़े जमाई ही मिले।"

और वह खिलखिलाकर हँस दी।

उसके मुंह का पल्लू झटके के साथ हटाते हुए लोकेश ने कहा, "तन्मणी, तू बड़ी चतुर है।"

"चतुर कैसे हूं भला! आप यात्रा पर जा रहे हैं, इसीलिए तो कह रही हूं।"

"बापूजी की आज्ञा हुई कि मैं और महेश साथ चलें।"

"हां, आप तो जायंगे ही। हमारा ऐसा भाग्य कहां?"

"कोई बात नहीं, घर बैठे ही इस महान पुण्य का आधा भाग अनायास मिल जायगा। बहूरानी इस बात को क्यों भूल जाती हैं!"

"भूल जाऊं, फिर भी पुण्य तो मिलेगा ही। एक बात अच्छी है कि बापूजी ने मृत्युंजय को साथ ले जाने का विचार बदल दिया।"

"उस छोटे बालक को इस लम्बी यात्रा के कष्ट सहन न होते, इसके अलावा..." बोलते-बोलते वह रुक गया।

"इसके अलावा क्या?" ताना ने उत्सुकता से पूछा।

"यहां आकर मेरे पास बैठ तो बताऊं कि तेरे दादाजी का यह बूढ़ा जमाई इस यात्रा में क्यों शामिल किया गया है।"

वे दोनों चांदी के झूले पर बैठ गए।

लोकेश ने कहा, "तन्मणी, यात्रा के बहाने बापूजी ने एक बड़ा ही महत्वाकांक्षापूर्ण काम हाथ में लिया है।"

"कैसा काम?"

"दो महीने पहले मैं माल लेने के लिए खंभात गया था, उसी समय बापूजी पाटण गये थे। याद है न?"

"हां, बापूजी पाटण के महाराज गुर्जराधिपति—अपने अन्नदाता—से भेंट करने के लिए गये थे।"

लोकेश ने एक दीर्घ निःश्वास छोड़ते हुए कहा, "अन्नदाता—हां! जिसकी वीरता की गाथा आज भी सारा गुजरात गाता है। उस बाघेला-वंश की यह निशानी है। पर दुर्भाग्य से आज वह परतंत्र है। स्वतन्त्र राजा

के अन्न पर उसे अपनी जिन्दगी गुजारनी पड़ रही है।"

ताना ने कोमल स्वर में कहा, "समय का फेर है, उसका इलाज ही क्या है ?"

"इलाज ढूंढ़ने के ही लिए तो गुजरात के महाराज रात-दिन बेचैन रहते हैं। अपने गुजरात की भूमि पर यवनों ने जो धमाचौकड़ी मचा रखी है, जो अत्याचार कर रहे हैं, उससे सारे राजे-रजवाड़े परेशान हो उठे हैं। कई जगहों पर खुला विद्रोह भी शुरू हो गया है। उनमें से कई किसी-न-किसी बहाने गुजरात के महाराज से मिलने के लिए आते हैं और गुप्त वार्ताएं भी होती हैं।"

"सभी लोग अगर एक हो जायं...."

"बापूजी का यही प्रयास चालू है। इसी काम के लिए महाराज ने उनको पाटण बुलाया था। वहां कुछ सलाह-मशविरा भी हुआ, जिसके अनुसार बापूजी महाराज का पत्र लेकर जूनागढ़ के राय के पास जाने-वाले हैं। इस वर्ष सोमनाथ की यात्रा के लिए जाने का उनका मूल उद्देश्य वास्तव में यही है। इस कार्य के निमित्त वे आबू के नरेश से भी भेंट करेंगे। वैसे तो आज यह दूर का सपना लगता है, पर इसके लिए वह पूरा प्रयास करेंगे।"

"और आपका क्या काम है ?"

"बापूजी और आबू-नरेश की बातचीत हो जाने के पश्चात उनका खास संदेश लेकर मुझे चित्तौड़ के राणा के पास जाना होगा।"

ताना ने उत्सुकता से पूछा, "चित्तौड़ ? मेवाड़? मीरादेवी का मेवाड़ ? जिस मीरा ने गिरधारी के पावन पति-रूप में दर्शन किये, कृष्ण-भक्ति को जिसने पति-भक्ति का परम सुख माना, उस देवी के मेवाड़ को देखने की मेरी भी बड़ी इच्छा है।"

"तेरी यह इच्छा मैं अवश्य पूरी करूंगा, पर प्रिये, तेरी यह पति-भक्ति भी मीरा के समान ही श्रेष्ठ है।"

"वह कैसे ?"

"मीरा कृष्ण में पति का रूप देखती थी और तू अपने पति में कृष्ण का रूप देखती है।"

ताना हँसी। इतने में नीचे चौक से शंख बजने की ध्वनि सुनाई दी। किसी ने तीन बार शंख फूंका।"

लोकेश हँसकर बोला, "देखा, मेरा कहना तीन बार सच निकला।"

ताना ने हंसकर कहा, "लोगों को अपना कहना हमेशा ही सच लगता है।"

"यदि कहे का पूरा प्रमाण मिल जाय तो उसे सच मानना ही होगा।" कहते-कहते वह उठा और उसने सामनेवाली छोटी अलमारी खोली। अंदर रखे हुए एक चित्र की ओर इशारा करते हुए उसने पूछा, "तन्मणी, यह क्या है ?"

ताना लज्जित हो गई। बोली, "बा, के पास तुम्हारा यह चित्र था, मैंने मांग लिया। बा ने रिरी को भी महेश देवरजी का ऐसा ही चित्र दिया है। बा ने हमें बताया की दक्षिण कि ओर से पिछले दिनों कोई चित्रकार यहां आया था और उसने हवेली में बहुत से लोगों के चित्र बनाये। वह कुशल चित्रकार था।"

लोकेश हँसा और बोला, "...होगा। पर बहूरानी, तेरी कुशलता तो उस चित्रकार के भी कान काटती है।"

लोकेश ने चित्र निकालकर उसके पीछे का हिस्सा दिखाते हुए पूछा, "यह क्या है ?"

चित्र के पीछे की ओर बांसुरी बजाते कृष्ण का चित्र लगा हुआ था।

वह एकदम संकोच से भर उठी, शरमा गई और धीरे से बोली, "बा कट्टर शिवभक्त हैं। उन्हें यहां पर कृष्ण का चित्र शायद पसंद न आये इसलिए...."

"इसलिए अपने शिवपंथी पति की पीठपर वैष्णव-भक्ति का सिक्का तुमने लगा दिया, क्यों ?"

वह घबरा गई। उसने धीरे से कहा, "ऐसा नहीं। पर..."

लोकेश ने हँसकर कहा, "और तन्मणी वैष्णव धर्म मुझे अमान्य नहीं है।"

"जानती हूं, इसीलिए तो इस चित्र को यहां रखने की मैंने हिम्मत की है।"

"हिम्मत ? अरी पगली, शिवभक्त की पीठ तेरा सांवरिया गिरधारी संभाल रहा है। तेरा कृष्ण कन्हैया मेरा रक्षक बना हुआ है, इससे बढ़कर सौभाग्य और क्या हो सकता है ?"

"बहुत हो गया मजाक !" कहते हुए ताना ने उसके हाथ से चित्र लेकर अपने स्थान पर वापस रख दिया।"

नीचे के आंगन से पुन: शंख-ध्वनि सुनाई दी। ताना ने कहा, "अभी तो हाटकेश की आरती में देर है, फिर बार-बार शंख कौन फूंक रहा है?"

"बापूजी का कड़ा हुक्म पूरा किया जा रहा है। कुछ लोग आने में देर कर रहे होंगे, उन्हें चेतावनी दी जा रही है। बापूजी की निगाह से कोई भी चीज छूटने नहीं पाती।"

"सच है। अच्छा, आप चित्तौड़गढ़ कितने दिन रहेंगे ?"

"कुछ पक्का नहीं कहा जा सकता। वहां अपनी बुआजी भी तो हैं। चार-पांच दिन ज्यादा भी रहना पड़ सकता है। बापूजी का आदेश हुआ तो शायद दिल्ली भी जाना पड़े।"

"दिल्ली भी ?"

"हां, पर अभी तय नहीं है। इस बारे में आज कुछ कहा भी नहीं जा सकता।"

ताना क्षणभर निःस्तब्ध रही, फिर उसने बड़ी उत्सुकता से पूछा, "संगीत-सम्राट मियां तानसेन दिल्ली में ही अकबर बादशाह के दरबार में हैं न ?"

लोकेश हँसा। बोला, "समझ गया। यदि दिल्ली गया तो तानसेन से जरूर मिलूंगा। उनसे कहूंगा कि आपके संगीत की परमभक्त और प्रशंसक एक लड़की गुजरात में भी है। आपने जिन ध्रुपदों की रचना

की है, उन्हें वह रोज सुंदर स्वर में बड़ी मधुरता से गाती है।"

ताना शरमा गई। उसने कहा, "कहां वह स्वर-सम्राट तानसेन, कहां यह ताना! सूर्य के सामने दीपक...!"

"पर छोटे से दीपक में भी तो अंधेरा दूर करने की सामर्थ्य होती है।"

ताना ने उत्तर नहीं दिया, केवल हँस दी।

लोकेश ने कहा, "तन्मणी, इच्छा है कि सुबह यात्रा पर निकलने से पहले तुम्हारा संगीत कानों में भर लूं। सुनाओगी न एकाध भजन?"

ताना उठी। उसने कोने में रखा हुआ तानपूरा संभाला। उसके स्वर मिलाये और गाने लगी:

कान्ह उल्हरि आयौ हो घन जिमि,
तरसन लाग्यौ रिमिझिमि रस बूंदनि।
मुरली की धुनि सोई गरजन तरपनि,
तरित मुसकाए तें दसन ओप
बग पांति ग्रीव हरा पुहुप गुंदनि
मोर मुकुट की चंद्रिका धनुष भयौ,
इंद्र सहस नव धन रूंदनि,
'तानसेन' प्रभू भूदृगंजन रेखा
निकरी रीझि मौजि भरनी।।

× × ×

मंडलेश्वर की हवेली रात भर जागती रही। हलचल वदस्तूर जारी रही और नौकर भाग-दौड़ करते रहे।

सुबह तक सारी तैयारियां पूरी हो गईं। जानेवाले सभी जमा हो गए। गाड़ीवानों ने गाड़ियों में बैल जोते। सेवकों ने घोड़े तैयार कर दिये।

लोकेश जाने के लिए तैयार हुआ। उसने चूड़ीदार पायजामा और ज़री के कामवाला अंगरखा पहना। कमर पर पट्टा बांधा। उसमें रत्न-जड़ित मूंठ की कटार तथा तलवार लगाई।

पति की ओर मुग्ध दृष्टि से देखते हुए ताना ने हँसकर कहा, "आप काशी-यात्रा पर जा रहे हैं या अकबर से लड़ने ?"

"लड़ने ?"

"हां, यह सारी रणसज्जा, पट्टा, कटार, तलवार..."

"क्यों नहीं ? अवसर आया तो लड़ना भी पड़ेगा। हाथ में कलम-करछुल रखनेवाला नागर ब्राह्मण मौका पड़ने पर किस खूबी से तलवार चलाता है, इसका पता अकबर को भी चल जायगा।"

"हां, आपके उस पराक्रम का थोड़ा-सा स्वाद उस दिन लुटेरों ने भी चखा होगा।"

"कौन से लुटेरों ने ?"

"दो माह पहले आप जब माल लेने के लिए खंभात गये थे तो घोघला लुटेरों की टोली ने आप पर आक्रमण किया था और ..."

"अरे, तुमको किसने बताया ?"

"आप नहीं बतायेंगे तो क्या मुझे पता नहीं चलेगा ?"

"उसमें कहने की बात ही क्या थी ? बाहर निकलने पर तो रोज ही ऐसा होता रहता है।"

"खंभात से लौटने पर बालजी आपके पराक्रम की बड़ी प्रशंसा और विस्तृत चर्चा कर रहे थे।"

लोकेश मुस्कराकर बोला, "इसमें प्रशंसा की क्या बात है ? नागर ब्राह्मणों के तीन ही तो हथियार हैं—कलम, करछुल और कटार। तीनों का अर्थ है ज्ञान, जीवन और रक्षा। इनका त्रिगुणात्मक तेज ही नागर ब्राह्मण की पहचान है।"

ताना अपने पति के तेजस्वी चेहरे की ओर देखती रही। मन-ही-मन कह रही थी कि इनका ननिहाल चित्तौड़ में है—उस घराने का संबंध पीढ़ियों से चित्तौड़ के राजवंश से रहा है। मेरे ससुराल का घराना प्राण-पण से पाटण के राजवंश का रक्षक रहा है। दोनों ही घरानों का तेज व राष्ट्राभिमान मेरे देवता में आया है, तो आश्चर्य ही क्या !

उसे चुप देखकर लोकेश ने हँसते हुए पूछा, "तन्मणी, किस विचार में पड़ी हो ?"

वह चौंकी और मुस्कराकर बोली, "ठहरो, ठाकुरजी का प्रसाद लेकर आती हूं।"

वह चांदी की थाली में प्रसाद लेकर आई। उस समय तक महेश भी लोकेश के समान ही वीरवेश धारण कर वहां आ गया था। साथ में रिरी भी थी। महेश ने भाभी को नमस्कार करके विदा मांगी, "भाभी, हमारी यात्रा की निर्विघ्न समाप्ति के लिए अपने भगवान से कह दिया है न ?"

ताना के उत्तर देने से पूर्व ही लोकेश ने कहा, "घबरा मत। उसका सखा कृष्ण तेरी पीठ पर है।"

रिरी बोली, "मैं इनसे यही कह रही थी कि अर्जुन की रक्षा के लिए भगवान कृष्ण थे और उन्हीं के समान आपके बड़े भाई आपकी पीठपर हैं।"

ताना मन-ही-मन हँसी। उसने दोनों को प्रसाद दिया और दोनों की बलैयां लीं। रिरी ने झुककर दोनों को प्रणाम किया।

× × ×

हवेली की यात्रा-मंडली जाने के लिए तैयार थी। अंदर के भवन में भक्तिबा को विदा देने के लिए स्त्रियों की भीड़ जमा थी। हर स्त्री झुककर भक्तिबा को प्रणाम कर रही थी और उनका आशीर्वाद ले रही थी। मुहूर्त हो चला था, किंतु स्त्रियों द्वारा विदा देने की रस्म अभी पूरी नहीं हो पाई थी।

बाहर के आंगन से नीलकंठ राय का आदेश भरा स्वर आया, "चलो-चलो, अब बाहर आओ, मुहूर्त टल जायगा।"

अभी तक पीछे खड़ी ताना और रिरी भीड़ में से किसी तरह आगे आईं और उन्होंने भक्तिबा के चरणों में सिर रखकर प्रणाम किया। भक्तिबा ने उठाकर दोनों को अपने कलेजे से लगा लिया और आशीर्वाद दिया, "सुखी रहो !" फिर बोलीं, "तन्मणि, काशी-विश्वनाथ की पूजा

करते समय तेरे गले की सारंगी सदैव मेरे कानों में बजती रहेगी।"

ताना बोली, "बा, आपके वापस आने तक मैं अपनी सारंगी के तारों को जरा-सा भी नहीं छेड़ूंगी।"

"कौन जानता है, तेरा स्वर मुझे अब कब सुनने को मिलेगा !"

"आप जल्दी ही लौटेंगी।"

"आऊंगी, बेटा, आऊंगी।"

नीलकंठराय ने पुनः तकाजा किया, "चलो, अब जल्दी चलो।"

आंगन में जमा यात्री स्त्रियां गाड़ियों में बैठ गईं। पुरुषवर्ग गांव की सीमा तक पैदल ही जानेवाला था।

लोकेश और महेश सुंदर पानीदार घोड़ों पर सवार होकर आगे चले। नीलकंठ राय आंगन में खड़े शस्त्रास्त्र-सज्जित वृद्ध सिंह पुरुष की तरह दिखाई दे रहे थे। उन्हें विदा देने आई हुई पुरुष-मंडली हवेली के प्रवेश-द्वार के पास खड़ी थी। नीलकंठराय के हवेली से निकलते ही उन्होंने सारा वातावरण 'जय हाटकेश!', 'जय सोमनाथ!', 'जय विश्वेश्वर!', के तुमुल घोष से गुंजा दिया।

यात्रीदल आगे बढ़ा। गले के घुंघरू बजाते, पीठ की झूल झुलाते, बैल आगे बढ़ रहे थे। बैलगाड़ियों के पीछे घुड़सवार थे। रास्ते के दोनों ओर खड़े बड़नगर के लोग यात्रियों पर पुष्प-वर्षा कर रहे थे। हाटकेश का जय-जयकार हो रहा था। प्रातः की लालिमा के धुंधले प्रकाश में सारा दृश्य अत्यंत मनोरम लग रहा था।

पांच

यात्रीदल के प्रस्थान के बाद हवेली सूनी-सूनी लग रही थी। ताना-रिरी ने उदास मन से अपने पीहर जाने की तैयारी प्रारंभ की। भक्ति-बा ने जाते समय दोनों को उनके दादा बंसीकाका के घर जाने की इजा-

जत दे दी थी। पीहर दूर नहीं, केवल चार गलियों के ही अंतर पर था।

वैष्णव घर की लड़कियां शैव के घर आई थीं। पंथ अलग था, पर मंडलेश्वर का घर इस बारे में असहिष्णु नहीं था। फिर भी मक्तिवा की यही इच्छा रहती कि दोनों बहनें ससुराल में अपने गोत्र की तरह भक्ति-मार्ग बदलकर शैव हो जायं। ताना-रिरी ने कभी भी मक्तिवा का दिल नहीं दुखाया। जन्म से वैष्णव-रंग में रंगी दोनों बहनें शैव-परिवार के आचार-विचारों का कट्टरता से पालन करती थीं।

ताना-रिरी को अब चार-पांच महीनों तक पीहर में ही रहना था। इससे उनके उदास मन में थोड़ा उल्लास भी था। विवाह के बाद इतने लंबे समय तक उन्हें पीहर में रहना नहीं मिला था।

दोपहर के भोजन के बाद रिरी को सामान के बारे में आवश्यक सूचनाएं देकर ताना ने भी साथ ले जाने योग्य सामान इकट्ठा किया और उसे चन्दन के संदूक में भरने लगी। यह संदूक उसे पीहर से मिला था।

संदूक में सामान रखते हुए अपने विवाह का दृश्य उसकी आंखों में घूम गया। कितनी धूमधाम हुई थी उस दिन! प्रातः लग्नमंडप में गूंजता हुआ सूर्याराधनगान, सुहागनियों के मंगलगीत, फिर हल्दी का लेप, सुगंधित जल से स्नान, शुभ्र वस्त्र का परिधान।

शाम को वर राजा का स्वर्णाभूषणों से सज्जित होकर घोड़े पर बैठकर गाजे-वाजे के साथ मंडप की ओर आना, रात ही देखे गए युवक को वरराजा के रूप में देखने के लिए महिला-मंडल की धरपेल; उभय पक्ष की महिलाओं में गीतों की होड़, प्रतिक्षण बढ़ता हुआ कोलाहल।

भारी कोलाहल में पुरोहित की आवाज उसे सुनाई दी, "अब कन्या को मंडप में लाओ।" सिमटी-सिकुड़ी गठरी की तरह मामा उसे उठाकर विवाह-मंडप में ले गये। गोधूली बेला में 'हस्तमिलाप' का रोमांचकारी क्षण। पश्चिम क्षितिज की कोर-रेखा पर रुके हुए सूर्य देवता से वह प्रार्थना कर रही थी, "सूर्य भगवान, सुबह तेरा स्तुतिगान मैंने श्रद्धापूर्वक सुना। अब हमारा मिलन अविलंब करा दे।"

पुनः कोलाहल उभरता है, भीड़ में हलचल होती है, धक्कामुक्की शुरू हो जाती है। मंगलाष्टक के बाद पुरोहित वेद-मंत्रों के सस्वर पाठ के साथ 'हस्तमिलाप' कराता है। पांच सुहागिनें सुहागचिन्हों से उसे विभूषित करती हैं और सौभाग्यकांक्षिणी वधू सौभाग्यवती बन जाती है।

× × ×

कपड़े चंदन के संदूक में रखने के बाद उसने अलमारी में से लोकेश का सुंदर चित्र—गिरधारी का मनोहर स्वरूप—निकाला और धीरे से संदूक में साड़ियों के बीच रख दिया। उसे हँसी आ गई, वह गुन-गुनाने लगी :

शिवश्च हृदयम् विष्णु:
विष्णुश्च हृदयम् शिव: ।।

विवाह की पहली रात का प्रसंग उसकी आंखों में मूर्तित हो गया—सुसज्जित कक्ष में घुसते ही उसे लोकेश दिखाई दिया था, हूबहू वैसा ही जैसा वह स्वप्न में देखती और कल्पना करती रही थी।

स्मृति और पीछे चली—जूनागढ़ में ब्याही उसकी ननद मधुरिका संगीत की परम-भक्त थी। वह कलापूर्ण कढ़ाई में भी उतनी ही दक्ष थी। ताना का गाना सुनने के लिए वह कभी-कभी बंसीकाका के यहां आती थी। मंडलेश्वर की हवेली में हर वर्ष गरवा होता था। गांव की अन्य लड़कियों की तरह ताना-रिरी भी वहां गरबा गाने जाती थीं। चौक में गरवे के बाद पास के भवन में जलपान होता था। वहां से सभी अपने-अपने घर लौट जातीं। चौक के अलावा हवेली के अन्य भागों को देखने के लिए ताना-रिरी और नागरवाड़ी की अन्य किशोरियों को बड़ी उत्सुकता रहती थी।

संगीत-प्रेम के कारण मधुरिका और ताना के स्नेह-संबंध बढ़ते गए। संगीत सुनने और कढ़ाई सीखने के बहाने दोनों का एक-दूसरे के पास आना-जाना बढ़ता गया। हवेली के बीचवाले चौक के पीछे के हिस्से में

जनानखाना था। उसका रास्ता अलग से था। आगे के भाग में पुरुषों के भवन थे।

दोनों बहनें मधुरिका के पास आतीं तो जनानखाने में उनके कक्ष में बैठती थीं। ऐसे ही एकबार कढ़ाई सीखते हुए ताना ने कहा था, "मधु-बेन, परसों सोनल बता रही थी कि तुमने एक बहुत वड़े रेशमी गलीचे की कढ़ाई की है।"

रिरी ने समर्थन किया था, "वह कह रही थी कि वहुत वड़ा गलीचा है और तुमने खूब सुंदर काम किया है।"

"हां, सचमुच बहुत अच्छा वना है। तीन-चार महीने मैंने उस पर काम किया है। सोनल ने मेरी खूब मदद की, तभी तो काम पूरा हो सका।"

ताना ने उत्सुकता से पूछा था, "हमें नहीं दिखाओगी ?"

मधुरिका ने जवाब दिया था, "दिखाने के लिए अब है कहां ? लोकेश भाई ने जैसे ही देखा, तुरन्त नौकर द्वारा अपने भवन में मंगवा लिया। वहां वह बिछा भी दिया गया।" और फिर उसने हँसते हुए कहा था, "मैंने उन्हीं के लिए तो वनाया था।"

ताना उदास हो गई थी कि इतना सुंदर गलीचा उसे देखने को नहीं मिलेगा। हवेली की रीति के अनुसार यद्यपि घर की महिलाएं पुरुषों के भवनों में आती-जाती थीं, पर दूसरे घरों की लड़कियों का वहां जाना निषिद्ध माना जाता था।

कुछ देर बाद जब दोनों वहनें घर जाने के लिए उठीं तो मधुरिका ने पूछा था, "तानाबेन, आज तूने ठीक से वातें नहीं कीं, विल्कुल गुम-सुम वैठी रही ?"

ताना ने जवाब दिया था, "ऐसा तो कुछ नहीं है।"

तब रिरी बीच में बोल उठी थी, "मैं बताऊं मधुबेन ! उसे गलीचा देखने को नहीं मिला, इसलिए निराश हो गई है।"

मधुरिका जोर से हँस पड़ी थी, "अच्छा, इसीलिए चुप्पी साध ली

थी ! जरूर दिखाऊंगी । तूनें पहले कहा होता तो भाई के भवन से उसे मंगवा लेती । अब दुबारा आयेगी, उसके पहले ही याद रखकर मंगवा लूंगी ।"

ताना नें कहा था, "ठीक है, मुझे कोई जल्दी नहीं है ।"

दोनों बहनें लौटने लगीं तो मधुरिका उन्हें पहुंचाने के लिए चौक तक आई थी। ताना-रिरी उससे विदा लेकर प्रवेश-द्वार से बाहर निकली ही थीं कि पीछे से मधुरिका की आवाज सुनाई दी—"ताना, तानाबेन..."

ताना वापस लौटी थी । मधुरिका ने कहा था, "चल, तुझे अभी गलीचा दिखा देती हूं ।"

ताना हंसी थी, "पर मुझे जल्दी नहीं है, मधुबेन ।"

"मुझे याद आ गया कि लोकेश भाई पाटण गये हैं और उनका भवन खाली है। इसलिए वहां जाकर गलीचा देखने में कोई बाधा नहीं है ।"

ताना संकोच से भर उठी थी । पर-पुरुष के भवन में जाना मर्यादा के विरुद्ध था। उसने कहा था, "नहीं-नहीं, तुम अपने भवन में मंगवा लेना, मैं दुबारा आऊंगी ।"

मधुरिका नें हंसकर कहा था, "इतने दिन तुझसे धैर्य नहीं रहेगा । चल, अभी चल । तू भी आ, रिरी । इसमें आपत्ति क्या है ? तुम दोनों गांव की ही लड़कियां हो, मेरे भाई के भवन में जाने में संकोच किस बात का ? चलो भी अब ।"

ताना की झिझक दूर नहीं हुई थी, फिर भी दोनों बहनें मधुरिका के साथ ऊपर गई थीं । लोकेश के भवन में पैर रखते समय मर्यादा भंग के भय से ताना संकुचित हो रही थी । डरते-डरते ही वह अंदर जा सकी थी ।

लोकेश का विशाल कक्ष सुसज्जित था । भावी मंडलेश्वर के उपयुक्त सभी सुख-सुविधाओं की व्यवस्था उसमें थी । एक ओर चांदी की कड़ियों-वाला नक्काशीदार झूला पड़ा था, दूसरी ओर ऐसा ही सज्जित तख्त

था। चारों कोनों में विशाल दीपाधार सजे हुए थे। दीवार पर सोने की मूठ वाली तलवार, बरछी, ढाल और शस्त्र सज्जित थे।

ताना ने शस्त्र-सज्जित लोकेश को घोड़े पर सवार होकर जाते हुए कई बार देखा था। उसका रूप-रंग ही ऐसा था कि जब वह घोड़े पर सवार राज-मार्ग या गलियों से निकलता तो हर घर की लड़कियां खिड़कियों में से उसे उत्सुकतापूर्वक देखने लगती थीं। अपने घर में यह भनक भी उसके कान में पड़ती रहती थी कि दोनों बहनों का विवाह मंडलेश्वर के यहां करने की चर्चा चल रही है। इस चर्चा का स्मरण आते ही वह और भी लजा गई थी।

उसके विचार में यह विवाह संभव नहीं था। मंडलेश्वर का घराना कट्टर शैव और उसका कट्टर वैष्णव था। फिर मंडलेश्वर का घर उनके मुकाबले कहीं संपन्न था। वह सोचती कि मंडलेश्वर के घर तो किसी मंडलेश्वर की ही लड़की बहू बनकर आयेगी।

× × ×

ताना के विचारों का फलक बदला—विवाह के बाद जब पहली रात उसने इस कक्ष में पैर रखा तो कितनी अधिक घबरा गई थी। लोकेश ने हँसकर, खुले मन मजाक में कुछ कहते हुए स्वागत किया था। उत्तर देना तो दूर, वह हँस भी नहीं सकी थी। नीची गर्दन किये चुपचाप खड़ी रह गई थी।

यह देख लोकेश थोड़ा शंकित हो गया था। फिर भी हंसते-हंसते हाथ पकड़कर उसने उसे पलंग पर बिठा लिया था।

बातचीत में जब उसकी झिझक थोड़ी मिटी तो लोकेश ने पूछा था, "देवि, तू नाराज तो नहीं है न?"

उसने एकदम घबराकर कहा था, "नाराज और मैं! छिः-छिः, नहीं तो, बिल्कुल नहीं। आपको ऐसा क्यों लगा?"

"तू शैव के घर आई है। तुम लोग वैष्णव हो, इसलिए मैं समझा कि शायद मन-ही-मन नाराज हो।"

उसे हँसी आ गई थी। उसने धीरे से पूछा था, "शिव और विष्णु दोनों अलग हैं क्या ?"

"अलग ही नहीं हैं, दोनों में छत्तीस का अंतर है।"

"बिल्कुल नहीं। मेरे दादाजी तो हमेशा कहते रहते हैं :

शिवश्च हृदयम् विष्णु:
विष्णुश्च हृदयम् शिव:

शिव और विष्णु दोनों एक ही हैं।

लोकेश ने दोहराया था, "अर्थात् शिव का हृदय विष्णु और विष्णु का हृदय शिव है।" कहते-कहते वह हँसा था और उसके चेहरे का घूंघट धीरे से पीछे सरकाते हुए बोला था, "मतलब यह है कि लोकेश का हृदय तन्मणि और तन्मणि का हृदय लोकेश है। दोनों एक रूप और अभिन्न! क्यों, ऐसा ही है न ?"

ताना शरमा गई थी। लोकेश ने हँसकर कहा था, "बहूरानी, शैव तो तांडव वृत्ति वाले और वैष्णवों की वृत्ति रसीली—दोनों में साम्य कहां ?"

उसने हँसकर उत्तर दिया था, "साम्य क्यों नहीं है ? पार्वती का प्रेम क्या शिवजी की रसिकता को प्रेरित नहीं करता ?"

"तू बड़ी चतुर है, ताना। तुम्हारा वैष्णव धर्म..."

बात काट कर उसने पूछा था, "मेरा वैष्णव धर्म ?"

"हां, तुम्हारा वैष्णव धर्म बहुत सहिष्णु है।"

वह मुस्करायी थी, फिर एकदम गंभीर होकर मृदुस्वर में बोली थी, "मैं वैष्णव नहीं हूं और शैव भी नहीं।"

"फिर क्या हो ?"

"विवाह ने मुझे एक नये ही धर्म की दीक्षा दी है और अब वही मेरा सच्चा धर्म है।"

लोकेश ने पूछा था, "कौन-सा धर्म है वह ?"

ताना ने गर्दन उठाकर क्षण-भर उसकी ओर भरपूर निगाहों से देखने

के बाद सिर नीचा करते हुए धीरे से कहा था, "सतीधर्म।"

× × ×

चौथे पहर दोनों बहनें पीहर जाने के लिए निकलीं। उस समय नाना ने मृत्युंजय को आवाज दी। सुनकर बुआसास ने बताया, "वह तो कभी का वहां चला गया है। यों भी दिन में चार बार यहां-वहां के चक्कर लगाता रहता है।"

बात सही भी थी। एक ही गांव में ददिहाल और ननसाल होने के कारण मृत्युंजय दादा और नाना दोनों का प्यारा था। दोनों घर उसके अपने ही थे। जहां जी चाहता, वहीं रह जाता था।

बुआसास ने कहा, "बहू, रात को उसे यहीं भेज देना। घर कैसा सूना-सूना हो रहा है! उसके बिना अच्छा नहीं लगेगा।"

छ:

नागरवाड़ी के कोने से उत्तर की ओर की गली में घुसते ही दाहिनी ओर के चार मकान छोड़कर पहला घर बंसीकाका का था। इस मकान पर किसी समय दीये जलते थे। अब वह हालत नहीं रह गई थी, फिर भी बंसीकाका के घर के चौक में स्थित 'बंसीधर-मंदिर' में दो बड़े-बड़े नंदादीप अब भी अखंड जलते रहते थे।

बंसीकाका के पिता शामलदास परम वैष्णव संत थे। वे नियमपूर्वक प्रतिवर्ष कृष्ण जन्माष्टमी के अवसर पर वृंदावन जाते थे, किंतु वृद्धावस्था में यात्रा का कष्ट उठाने की शक्ति न रहने से उन्होंने अपने घर के चौक के अगले भाग में मंदिर बनवा लिया था। जयपुर के कुशल कारीगरों द्वारा वृंदावन के बंसीधर जैसी हूबहू प्रतिमा बनाकर उन्होंने अपने मंदिर में उसकी प्रतिष्ठा कराई थी। मूर्ति के प्रतिष्ठा-उत्सव में गुजरात-सौराष्ट्र के वैष्णवों का भारी मेला जुटा था। मूर्ति की प्राण-

प्रतिष्ठा भक्तश्रेष्ठ कवि नरसी मेहता के शुभ हाथों से संपन्न हुई थी। सात दिन तक अखंड भजन-कीर्तन होता रहा था—ढोलक-मंजीरों की ताल पर—

"जय श्रीकृष्ण—जय राधेकृष्ण
जय-जय कृष्ण - राधाकृष्ण
जय मुरलीधर—नटवर नागर।"

भजन का नाद गूंजता रहा था।

तभी से हर वर्ष कृष्ण जन्माष्टमी के अवसर पर यहां भारी मेला भरने लगा था। गुजरात के जिन वैष्णव भक्तों का वृंदावन जाना संभव नहीं होता, वे यहां आ जाते थे। वैसे भक्तों का आना तो बारहों महीने लगा ही रहता था। इसलिए बंसीकाका का घर गुजरात का 'वृंदावन' कहलाने लगा था। बाहर के यात्रियों के लिए बंसीकाका ने मंदिर के एक ओर कमरे बनवा दिये थे। यात्रियों के खाने-पीने का सारा प्रबंध भी बंसीकाका ही करते थे।

मंदिर के आगे विशाल सभा-मंडप था। वहां रोज कथा, कीर्तन, प्रवचन, धर्मचर्चा आदि होते रहते थे।

× × ×

ताना और रिरी दोनों अपने पीहर आ गईं। स्वाभाविक ही था कि उन्हें वहां खुला-खुला लगता। दोपहर में अपनी सखी-सहेलियों के साथ गपशप और हँसी-मजाक का निःसंकोच दौर चलता। ऐसे समय यदि रूखीबेन आ जाती तो गपशप का स्थान संगीत ले लेता। सखियों में भजन गाने की होड़ लग जाती। मायके आकर ताना-रिरी का गला खुल गया था। वे रोज-रोज नये-नये भजन गाने लगीं। रात को आरती के बाद दोनों बहनें बंसीघर के सामने भजन गातीं। अपनी पोतियों का मधुर स्वर सुनकर बंसीकाका प्रसन्न और गद्‌गद् हो जाते। उनका संगीत देखकर काका उत्साहित हो उठते और नये-नये भजन उन्हें सिखाते।

नागरवाड़ी की कुछ लड़कियां ताना के पास संगीत सीखने आने

लगीं। कुछ दिनों के बाद दोपहर का उनका पूरा समय संगीत-साधना में बीतने लगा। कभी-कभी रूखीबेन भी इसमें भाग लेने आ जाती। अपने ससुर के कागजों को उलटते-पलटते अगर उसे कभी कोई नई चीज मिल जाती तो लाकर ताना को दे देती। ताना फौरन उसे अपने गले में बिठा लेती।

रूखीबेन के आते ही ताना उससे पूछती, "रूखीबेन, ससुरजी के खजाने में से आज कोई नई चीज मिली है क्या ?"

"रतन क्या रोज-रोज मिला करते हैं ? जितनी चीजें मिलीं, तेरे हवाले कर दीं।"

एक दिन रूखीबेन दोपहर को आई। ताना के पूछने से पहले ही उसने कहा, "तानाबेन, आज ससुरजी के खजाने में एक मोती मिला है—बड़ा ही सुंदर और पानीदार मोती है।"

"सच, देखूं।"

रूखीबेन ने सावधानी से कागज का एक पुर्जा निकाला और बोली, "तू तानपूरा मिला। मैं पढ़कर सुनाती हूं। अक्षर साफ नहीं दिखाई दे रहे हैं।" और रूखीबेन ने पढ़ा :

"गोरे मुख गोदना ठोड़ी सोहै और
लिलाट जराइ कीं बिंदुरी।
और जो वसन बिराजत तापै कजरारी अंखियन,
तापर सोंधे भीजीं लटें लटक रहीं,
सोहै चौकनी चौपुरी।
और जु आभूषन कसूमे वस्त्र सोहत,
तन द्युति छिनहू न पैयतु है री दूरी।
'तानसेन' प्रभु तो तन चितवत, मोह रहे अति,
परी है नैनन में प्रीत फंदुरी।

तानपूरे के तार मिलाते-मिलाते ताना ध्यान से सुन रही थी। पढ़ना समाप्त होते ही ताना ने तानपूरे के तार छेड़कर सुरीले स्वर में

इस पदावली को गाना आरंभ किया। उसके गले से निकले एक-एक शब्द के साथ वातावरण में एक सुंदर साकार स्वरूप की कल्पना वहां उपस्थित उसकी सखियों को होने लगी। वे सभी मंत्रमुग्ध रह गईं।

ताना ने गाना समाप्त किया। उसने तानपूरा नीचे रखा। माथे का पसीना पोंछते हुए सखियों ने पूछा, "अरे, क्या हुआ! ऐसी चकित क्यों हो?"

"चकित न हों तो क्या करें?"

"पर चकित होने का कारण क्या है?"

मजाक के स्वर में सोनल बोली, "कोई चन्द्रमुखी अपने स्वरूप का वर्णन करे और बिना दर्पण के उसका प्रतिबिंब दिखाई देने लगे तो क्या विस्मय नहीं होगा?"

ताना ने पूछा, "क्या मैं अपने रूप का वर्णन कर रही थी?"

रसीला ने उत्तर दिया, "और नहीं तो क्या? गोरे मुख गोदना—तेरे गोरे गाल पर ब्रह्मा ने अपने हाथ से तिल गोद दिया है। और भी सुन, भीजी लटें लटक रहीं, तेरे कपाल पर ये लटें हमेशा लटकी ही रहती हैं।"

ताना रोषपूर्वक बोली, "बस, रहने दे अपना वर्णन।"

"अरी, मैं तेरा वर्णन नहीं कर रही; तूने जो वर्णन किया, वही बता रही हूं।"

कंचन ने कहा, "आश्चर्य तो तानसेन की दिव्यदृष्टि का है। उसने दिल्ली में बैठे-बैठे अपनी ताना का कितना सुंदर और हूबहू चित्रण किया है!"

"बड़ी सुंदर चीज लिखी है तानसेन ने।"

"तानसेन कवि है या गवैया?"

रूखीबेन ने बताया, "दोनों ही। इसीलिए तो अकबर ने बांधवगढ़ के राजा से मांगकर उसे अपने पास रख लिया है। जिस दिन अकबर के दरबार में प्रवेश किया, उसे दो लाख मोहरों की थैली भेंट की गई। इतना ही नहीं, उसे तमाम गवैयों का सिरमौर भी बना दिया।"

सोनल ने चुटकी लेते हुए पूछा, "रूखीबेन, यदि अकबर को अपनी तानाबेन का गाना सुनने को मिल गया तो क्या होगा ?"

रसीला ने कहा, "मैं बताऊं, तानाबेन के संगीत की ख्याति यदि अकबर बादशाह तक पहुंच गई तो वह इसे लेने के लिए सोने की पालकी भेजेगा और इसके सामने मोहरों का ढेर लगा देगा।"

रसीला के स्वर में केवल निर्दोष चुटकी नहीं थी। ताना ने, अन्य सखियों की तरह, इसमें ईर्ष्या का डंक अनुभव किया। उसने रोष एवं प्रताड़ना भरे स्वर में कहा, "रसीला, मैं नागर-कन्या हूं।"

"हमें पता है।"

"तू नहीं जानती होगी, इसीलिए बता रही हूं कि मैं मंडलेश्वर की बहू हूं, दरबार में गानेवाली गायिका नहीं।"

उसका चेहरा क्रोध से तमतमा उठा था। यह देखकर रूखीबेन ने कहा, "रसीला, मनुष्यों को विचारपूर्वक बोलना चाहिए।"

रसीला ने अपनी अकड़ कायम रखते हुए कहा, "रूखीबेन, थोड़ा-सा मजाक कर लिया तो ऐसा क्या बिगड़ गया ! उस दिन गंगाबुआ जो कह रही थीं, वह तुमने नहीं सुना क्या ?"

"नहीं, मैंने तो नहीं सुना। गंगाबुआ तो दुनिया भर की बातूनी हैं। तू उनसे क्या सुन आई है ?"

रूखी के प्रश्न का उत्तर न देते हुए रसीला ने ताना से पूछा, "तानाबेन, नागर ब्राह्मण मूल तो क्षत्रिय ही हैं न ?"

ताना उसके प्रश्न का मतलब नहीं समझ सकी। वह इतना अवश्य जानती थी कि रसीला टेढ़े स्वभाव की है और उसके प्रश्न में भी बिच्छू के डंक-जैसा टेढ़ापन और दंश रहता है। इसीलिए उसने कहा, "मुझे नहीं मालूम, और न मैं किसी के पिछले इतिहास में टांग अड़ाती हूं।"

"तू जरूर नहीं जानती होगी, किंतु मेरे ददियाससुर बताते हैं। वे बहुत बड़े विद्वान हैं।"

रूखीबेन बोली, "हमें भी पता है; परंतु इस समय इतिहास के

छिलके उतारने की तुझे क्या जरूरत पड़ गई ?"

"कोई खास जरूरत तो नहीं थी। पर तानाबेन के गाने की तारीफ में थोड़ा मजाक कर दिया तो उसे कितना गुस्सा आ गया। सच-झूठ का पता नहीं, पर सुना है कि बड़े-बड़े राजपूत राजा अपनी लड़कियां अकबर बादशाह को देते हैं। सुनने में आया है कि हाल ही में अंबर-राजा की लड़की से अकबर का विवाह बड़ी धूमधाम से हुआ और वह भी पूरे हिन्दू रिवाजों के अनुसार।"

ताना ने हाथ का तानपूरा नीचे पटक दिया। तानपूरे का एक तार टूट गया, जिससे विचित्र-सी झनझनाहट हुई और साथ ही ताना का तीव्र कंपित स्वर गूंज उठा, "रसीला, राज्य के लोभ में पड़े वे राजपूत असली नहीं होंगे, जो अपनी लड़कियां यवनों को देते हैं। ऐसी वृत्तिवाले नागर ब्राह्मण भी चाहें तो खुशी से अपनी बेटियां विधर्मियों को दे दें।"

ताना का तेजस्वी चेहरा लाल-भभूका हो गया था। रसीला भी अपमान के दंश से तिलमिला उठी। वातावरण तनावपूर्ण हो गया। यह देख रूखीबेन समझाने के स्वर में बोली, "तानाबेन, जाने दे और रसीला, तू भी रहने दे। बड़े-बड़े राजे-रजवाड़ों की बातों से हमें क्या मतलब ! हमारे इस छोटे-से गांव में तो इस तरह का कोई झमेला है नहीं।"

रूखीबेन ने दोनों को शांत किया। तनाव कम हुआ। उस दिन की बैठक उखड़ गई। रसीला अपने घर चली गई। अन्य युवतियां और रूखीबेन भी एक-एक करके उठ गईं।

ताना उसी प्रकार बैठी रही। उसकी नजर बार-बार तानपूरे पर केंद्रित हो जाती थी।

यह देखकर रिरी ने तानपूरा उठाया और बोली, "बड़ीबेन, रणछोड़ के हाथ इसे पन्नालाल भाई के पास भेज देती हूं। शाम तक वह इसकी मरम्मत कर देगा।"

"रिरी, मेरे तानपूरे का तार टूट गया। कह नहीं सकती, क्यों ? पर मुझे यह अच्छा लक्षण नहीं लग रहा। मेरा मन एकाएक उदास हो

गया है ।"

"वड़ी बेन, रसीला की तो आदत ही रंग में भंग डालने की है। वह तुम्हारा मन दुखाने का अवसर ढूंढ़ती रहती है। वह जाने क्यों, तुमसे नाराज है और जलती भी है ।"

ताना बोली, "जलती होगी; मंडलेश्वर की वहू वनने की उसकी वड़ी हविस थी। उसकी मां ने इसके लिए बहुत जोर लगाया, किंतु बड़ी वा ने कोई ध्यान नहीं दिया और यहां आकर हम दोनों बहनों को मांगकर ले गईं। इसीलिए वे सब वहुत नाराज हैं ।"

"पर वह हमारे दूर के ककिया ससुर के घर में ही तो गई हैं ।"

"हां, मगर वह घराना भी राज्य के लोभ और बदले की भावना से अंदर-ही-अंदर दुश्मनों से मिल गया है। उस घराने को मंडलेश्वर-पद और सत्ता की भूख है, किंतु मिला कुछ नहीं ।"

"रसीला का बड़ा देवर रमणभाई वीरमगांव के राय की जो नौकरी कर रहा है, क्या इसी प्रपंच को पूरा करने के लिए ?"

"हां, तेरे जेठ वता रहे थे कि एक वार बापूजी ने अपने उन दूर के काका को..."

"यानी कंचनभाई के दादा को ?"

"हां, बुलाकर कहा कि यदि तुम्हें मंडलेश्वर-पद चाहिए तो ले लो, किंतु घर के भेदी मत बनो ।"

"क्या इसके वाद भी वे वीरमगाम के राय से जा मिले ?"

"हां, पाटण के सिंहासन को समाप्त करने में काका-ससुर के नमक-हराम घराने का बड़ा हाथ रहा है। काका-ससुर चले गए किंतु अपने वेटों को ईर्ष्या-द्वेष की विरासत सौंपते गए ।"

"रसीलाबेन उसी घराने की वहू है। पीहर के नाते जब-तब यहां आ जाती है और अवसर पाते ही डंक मारकर चल देती है ।"

"जाने भी दो। उसका तो स्वभाव बचपन से ही ईर्ष्यालु और नीच है। उठो, हम लोग मंदिर हो आयें ।"

ताना उठी । पर उसका मन भयंकर दुश्चिंताओं से घिरा हुआ था ।

× × ×

इस एक घटना को छोड़ दें तो पीहर में ताना-रिरी के दिन बड़े आनंद से गुजर रहे थे । इस वर्ष गर्मी बहुत तेज थी, किंतु पीहर की ठंडी छाया में उन्हें वह महसूस नहीं हो रही थी। दिन बीत रहे थे। वर्षा ऋतु शुरू होनेवाली थी । शीघ्र ही चारों ओर हरियाली हो जायगी। शर्मिष्ठा तालाब लबालब भर जायगा । ताना का विचार इस श्रावण मास में हाटकेश्वर पर जल चढ़ाने का था ।

नागरवाड़ी की लड़कियां श्रावण में हाटकेश्वर पर नियमित रूप से जल चढ़ाने का व्रत लेती थीं। इस काम के लिए सुंदर घड़ों पर रंग-बिरंगी चित्रकारी कर वे पहले से ही तैयारियां किये रहती थीं । झुंड बनाकर गीत गाते हुए वे शर्मिष्ठा तालाब के पानी से उन घड़ों को भरतीं और हाटकेश पर चढ़ा आतीं । उनका विश्वास था कि इससे हाटकेश प्रसन्न होते हैं और धन-धान्य बढ़ता है ।

विवाह से पूर्व ताना-रिरी भी हर वर्ष यह व्रत लेती थीं । विवाह के बाद मंडलेश्वर के घराने के रिवाज के अनुसार उनके लिए यह व्रत संभव नहीं रहा था । इस वर्ष पीहर में थीं, इसलिए बुआसास की इजाजत लेकर इस व्रत को करने की उनकी बड़ी इच्छा हो रही थी ।

ताना ने कुम्हार से दो घड़े मंगवा लिये । दोनों बहनें बैठी-बैठी उन पर बारीक बेलबूटों की चित्रकारी किया करतीं। आस-पास की लड़कियां भी दोपहर में अपने-अपने घड़े लेकर वहां आ जातीं और चित्रकारी करतीं । ताना-रिरी सिर पर घड़े रखकर चलने के अपने पुराने अभ्यास को दुहराती भी थीं।

× × ×

ज्येष्ठ समाप्त हुआ, आषाढ़ लगा, पर वर्षा का कहीं कोई चिह्न नहीं । दिनोंदिन गर्मी बढ़ने लगी । कोसों तक वृक्ष सूख गए । किसी भी पेड़ पर हरा पत्ता तक न रहा । शर्मिष्ठा के उस पार के घने वृक्षों पर

बसेरा करनेवाले पक्षियों के झुंड चिचियाते हुए आकाश में चक्कर लगाने लगे। बहुत से पंछी दूसरे आश्रय की खोज में चले गए। अपनी धरती और परिवेश से जिन्हें गहरा लगाव था, वे जलते आसमान में उड़ते और पुनः सूखे हुए पेड़ों पर उतर आते। सैकड़ों पक्षी निढ़ाल होकर आग उगलती धरती पर गिर पड़ते।

गर्मी से तपे खेतों में हल चल चुके थे। पर फसलों के अंकुर देखने को आंखें तरस कर रह जाती थीं। सूर्य अधिकाधिक क्रोधित होकर जमीन पर अग्नि-वर्षा का अनुपात बढ़ाता जा रहा था। वर्षा के कोई आसार दिखाई नहीं देते थे।

जोती हुई जमीन में दरारें पड़ गई थीं और उनमें से पृथ्वी गरम निःश्वास छोड़ने लगी थी।

शर्मिष्ठा द्रौपदी के अखंड पात्र की तरह, बारहों महीने पानी से भरा रहता था। कितना ही पानी निकालो, उसमें कमी नहीं होती थी। लेकिन अब वह तालाब भी धीरे-धीरे सूखने लगा था।

गुजरात की भूमि पर अभूतपूर्व अकाल उतर आया। वड़नगर के बूढ़ों की स्मृति में भी कभी इतना भयंकर अकाल नहीं पड़ा था। बड़-नगर का सौंदर्य गायब होने लगा। माल के बिना दुकानें और अनाज के बिना मंडियां उजड़ी-उजड़ी दिखाई देने लगीं। सूखे की आग में सभी चीजें स्वाहा होने लगीं।

× × ×

नगर का कार्य-व्यापार वंसीकाका के हाथ में था। उनके पास दिन भर लोगों का तांता लगा रहता था। शिकायतें और सुझाव सुनने में उनका सारा दिन बीत जाता था। कई दूसरे जरूरी कामों के लिए उन्हें फुरसत ही नहीं मिल पाती थी।

लोगों की भुखमरी कैसे दूर की जाय, इस स्थिति में से रास्ता कैसे निकाला जाय, कौन-कौन से उपाय किये जायं आदि प्रश्नों में वृद्ध वैष्णव बंसीकाका आठों पहर डूबे रहते थे। हर दूसरे-तीसरे दिन सलाह-

-कार मंडल की बैठक होती। गांव के प्रमुख लोग इकट्ठा होते। विचार-विमर्श होता।

अंत में वंसीकाका ने आदेश दिया, "प्रत्येक व्यक्ति अपने कुटुम्ब की आवश्यकता के लिए केवल दो महीनों का अनाज अपने पास रखे। अतिरिक्त सारा अनाज हाटकेश्वर के गोदाम में जमा कराकर उसका मूल्य प्राप्त कर ले।"

हाटकेश्वर के मंदिर में सस्ते अनाज की दुकान खोल दी गई। व्यापारियों को निर्धारित मूल्य पर अनाज और अन्य वस्तुएं बेचने के आदेश दे दिये गए। मंडलेश्वर के अधिकारियों ने माल-गोदामों की जांच करके सारे माल की सूचियां तैयार कर लीं।

स्वयं वंसीकाका ने अपने 'वृंदावन' में अन्न-सत्र आरंभ कर दिया। मंदिर में आनेवाले वैष्णव-भक्त इस अन्न-क्षेत्र को चलाने के लिए हर तरह से सहायता करने लगे।

वर्षा के लिए हाटकेश्वर मंदिर में आठों पहर अनुष्ठान और रणछोड़ रायजी के मंदिर में चौबीसों घंटे कीर्तन होने लगा।

सात

आषाढ़ आधा और बीत गया। सफेद आकाश में काले बादलों का एक टुकड़ा भी दूर-दूर तक दिखाई नहीं दिया।

भंडार का अनाज खत्म होने लगा। बंसीकाका की चिंता बढ़ने लगी। वे पूरी सावधानी बरतते कि भंडार में जो कुछ भी है, उसका वितरण ठीक प्रकार से हो और अपने नगर में कोई भूखा न रहे, चाहे सभी को पूरी रोटी न मिलकर आधी ही मिले। वे स्वयं नगर में घूम-घूमकर जानकारी लेते। नगर में सबसे अधिक गरीब लोग भंगी जाति के थे। इनकी बस्ती नगर के दक्षिण दरवाजे के पास थी। बंसीकाका की नजर से यह

बस्ती भी छूटने न पायी। वृंदावन के भंडार से अनाज और अन्य आवश्यक वस्तुएं बांटने के लिए वे स्वयं इस बस्ती में रोज जाते थे।

सारा प्रबंध करने के बाद भी जब शिकायतें होतीं कि 'घर में अनाज नहीं है', 'अनाज कहीं मिलता नहीं है' तो शिकायत करनेवालों को बंसीकाका अपने मंदिर के भंडार से अनाज दिलवाकर संतुष्ट करते थे।

परिस्थिति दिनोंदिन भीषण होती गई। वर्षा का काले कोसों तक पता नहीं था।

हाटकेश्वर की प्रतिमा पर अखंड अभिषेक चालू हो गया।

× × ×

सलाहकार मंडल की रोज बैठकें होने लगीं। एक दिन मंदिर के सभा-भवन में मंडल की बैठक हो रही थी। गांव के प्रतिष्ठित लोग जमा थे। अकाल की स्थिति पर विचार किया जा रहा था।

इतने में बाहर रास्ते पर बच्चों का शोर सुनाई दिया, "चोर-चोर-चोर!"

बच्चों का शोर निकट आता गया, "चोर पकड़ा गया, पकड़ा गया!"

मंदिर के प्रवेश-द्वार से पंद्रह-बीस लड़कों का एक झुंड अंदर आया। सभी दस-बारह वर्ष की उम्र के थे। मृत्युंजय उनकी अगवानी कर रहा था। सभी के हाथों में छोटी-छोटी लाठियां थीं। मृत्युंजय की कमर में कटार भी खोंसी हुई थी। उसके सफेद कपड़ों पर जगह-जगह मिट्टी के दाग लगे हुए थे और गेहूं का भूसा चिपका था।

सारा दिन हवेली में रहने के विचार से मृत्युंजय बंसीकाका के घर से वहां चला गया था। उसकी ओर देखकर बंसीकाका ने आश्चर्य से पूछा, "बेटा जयराज, यह क्या है? चोर पकड़ने कहां गया था? यह वानर सेना कब बनाई?"

"दादाजी, अपने ही गांव का चोर हमने पकड़ा है। अमृत के पिता पोपटलाल काका हैं न, उन्होंने अपने भूसे के भंडार में अनाज की कई बोरियां भूसे के नीचे दबाकर रखी हैं।"

"तुझे कैसे पता ?"

मृत्युंजय के उत्तर देने से पूर्व ही एक लड़का बोल उठा, "दादाजी, मेरे पिता पोपटलाल काका से गेहूं खरीदने गये थे। उस समय कहा गया कि गेहूं खत्म हो गया। कल हमारी गली में किसी को भी गेहूं नहीं मिला। हम लोगों ने कल घास उबालकर पिया। अमृत उस समय हमारे घर आया हुआ था। उसने मुझे बताया कि उनके यहां अनाज की कई बोरियां पड़ी हैं। काका ने भूसे के नीचे छिपाकर रखी हैं। फिर हम जय-राज के पास पहुंचे। वह हमारी बाल-सेना का सरदार है।"

वसीकाका हँसे, "तुमने अपनी सेना भी बना ली है। क्या-क्या काम करती है तुम्हारी सेना ?"

मृत्युंजय बोला, "दादाजी, आपने कहा था न कि कोई झूठ न बोले, कुछ छिपाकर न रखे, सभी को खाने के लिए मिलना चाहिए। आपने ही वताया था कि रणछोड़राय का कहना है कि एक के पास हो तो सभी को बांट कर खाना चाहिए। इसलिए हम जांच करने निकल पड़े कि कौन झूठ बोलता है, कौन अनाज छिपाकर रखता है !"

"वहुत अच्छे, बेटे ! पर तेरे कपड़े कैसे खराब हो गए। ये तिनके कैसे चिपके हुए हैं ?"

"दादाजी, पोपटकाका के भूसे के भंडार में हम खिड़की के रास्ते घुसे। वहां बहुत बोरियां रखी हैं। अपने भंडार में जितनी बोरियां हैं, उनसे कहीं ज्यादा हैं। मगन के घर गेहूं नहीं था, इसलिए हमने एक बोरी फाड़कर जरूरत के लायक गेहूं मगन को दे दिया।"

गांव के जितने भी प्रतिष्ठित लोग वहां उपस्थित थे, यह सुनकर बहुत खुश हुए। उनमें से एक ने कहा, "बहुत अच्छा किया। मंडलेश्वर का सच्चा उत्तराधिकारी लगता है।"

वंसीकाका ने पूछा, "जयराज, दूसरे की वस्तु को उससे पूछे विना लेने को क्या कहते हैं ?"

"चोरी, दादाजी।"

"तो तुम बच्चों ने पोपटलाल काका के यहां चोरी की। इसे मानते हो न?"

मृत्युंजय से तुरंत जवाब न बन पड़ा। बात ठीक भी थी, पर उसके मन को स्वीकार नहीं हो रही थी। थोड़ी देर तक उसके छोटे-से मस्तिष्क में विचार चलते रहे, फिर वह बोला, "दादाजी, पोपटलाल काका ने बोरियां भूसे में छिपाकर क्यों रखीं? क्या वे झूठे और चोर नहीं हैं?"

अब निरुत्तर रहने की बारी बंसीकाका की थी। इतने में पोपटलाल भागा-भागा वहां आया। वह पचास से ऊपर का, शरीर से स्थूल और चेहरे से धूर्त लग रहा था। मारे क्रोध के लाल अंगारा हो गया था।

अंदर आते ही लड़कों की टोली को वहां देखकर उसके गुस्से में तेल पड़ गया। बिफरकर बोला, "बंसीकाका, इन छोकरों ने उत्पात मचा रखा है। मंडलेश्वर का लड़का होने से हम कुछ बोल नहीं पाते, पर गांव के इन छोकरों को इकट्ठा करके जिस तरह गुंडागर्दी मचा रखी है, उससे मंडलेश्वर के नाम को बट्टा ही लगेगा। आप जैसे शीलवान वैष्णव का दोहिता..."

बंसीकाका ने हँसकर पूछा, "पर दोनों परिवारों को कलंक लगाने लायक कौन-सी बात इस आठ-दस वर्ष के बालक ने की है? तुम आराम से बैठ जाओ और फिर बताओ। कितना पसीना आ रहा है तुम्हें?"

पोपटलाल खड़ा ही रहा। गमछे से पसीना पोंछते हुए उसने कहा, "इसे आप छोटा बच्चा कहते हैं! इसकी जुटाई हुई भीड़ के इन छोकरों को भी देखिए, कैसे सांड़ बने हुए हैं! गाय-भैंस के लिए सहेजे हुए भूसे को इन्होंने किस तरह तहस-नहस कर दिया है, चलकर देख लीजिए।"

मृत्युंजय ने तीखी आवाज में कहा, "दादाजी, पोपटकाका झूठ बोल रहे हैं। हमने भूसे को हाथ भी नहीं लगाया, उसमें छिपाकर रखी हुई गेहूं की बोरियों में से सिर्फ एक को फाड़ा है।"

पोपटकाका एकदम इतना घबरा गया कि बोलते न बना।

बंसीकाका ने हँसकर कहा, "बच्चो, अब तुम जाओ। कल सवेरे

प्रसाद लेने आना। तुमको काम चाहिए न ?"

बाल-मंडली ने समवेत स्वर में कहा, "हां, जरूर चाहिए।"

"कल सुबह आ जाना। तुम्हारे लिए काम तय करेंगे। अब अपने-अपने घर जाओ। जय, तू भी घर जा और कपड़े बदल।"

बच्चे चले गये तो बंसीकाका ने कहा, "पोपटभाई, बैठो। संयोग से नगर के प्रतिष्ठित लोग यहां पर हैं। बैठक के लिए आये हुए हैं। उनके सामने ही आपसे थोड़ी बात कर लेना चाहता हूं।"

पोपटभाई कुछ बोल न सके, उनकी ओर देखते हुए खड़े रहे।

बंसीकाका ने पूछा, "पोपटलाल, बच्चों ने जो खोज की, क्या सही है?"

"कौन-सी खोज ?"

"आपने अनाज की बोरियां छिपाकर रखी हैं ?"

पोपटलाल पहले तो सकपकाया, परंतु तुरंत संभल गया और बोला, "नहीं, छिपाकर नहीं रखी हैं। बंसीकाका आप भी बच्चों की बात सुनकर, बच्चों-जैसी बातें करने लगे !"

"तो तुम बड़े लोगों की तरह हमें सही बात समझा दो।"

पोपटलाल ने अपनी पगड़ी ठीक करते हुए चेहरे पर फीकी हँसी लाकर कहा, "बंसीकाका, क्या मुझे गांव की चिंता नहीं है ? कठिन समय के लिए ही मैंने उन बोरियों को अलग रखा है।"

"कितनी बोरियां हैं ?"

"होंगी यही कोई दो-ढाईसौ।"

"मंडलेश्वर की कचहरी में उनको दर्ज कराया है क्या ? इस बारे में हुक्म भी हुआ था।"

"हां, हुआ तो था। पर वे बोरियां एक तरफ पड़ी रह जाने के कारण दर्ज कराना भूल गया।"

बंसीकाका सहज शांति से बोले, "ठीक है, कभी-कभी याद नहीं भी रहती है।"

पोपटलाल बूढ़े बंसीकाका के ठंडेपन से उत्तेजित हो उठा। उसने

कहा, "वंसीकाका, कुछ तो भरोसा करना चाहिए। आप सब लोग जानते हैं कि दान-धर्म में मैं कभी पीछे नहीं रहता।"

"जानता हूं। वास्तव में तुम पर विश्वास करना चाहिए। पर विश्वास-अविश्वास का निर्णय कई बार आदमी के हाथ में नहीं रह जाता।"

उपस्थित लोगों में से एक बोल उठा, "वंसीकाका, आप प्रमुख हैं। आप जो निर्णय देंगे, वह सभी को मान्य होगा।"

"अरे गोविन्दराय, प्रमुख हुआ तो भी क्या, हूं तो मनुष्य ही। एक मनुष्य दूसरे मनुष्य का फैसला कैसे कर सकता है? सही फैसला तो बंसीवाला ही करेगा।"

कई लोग एक साथ बोल उठे, "सही बात है, सच्चा न्यायकर्ता तो वही है।"

"ठीक है। फिर तो सच्चाई का निर्णय उसी को करने दो। पोपटलाल तुम वैष्णव हो; रणछोड़राय पर तुम्हारी भक्ति है न?"

बंसीकाका की यह बात न पोपटलाल की समझ में आई, न वहां उपस्थित दूसरे लोगों की।

पोपटलाल ने कहा, "वंसीकाका, रोज तीन बार मंदिर जाकर दर्शन करने का मेरा नियम आज भी अखंडित है। आपको मालूम ही है कि रणछोड़राय का दर्शन किये बिना मैं पानी भी नहीं पीता।"

"इसीलिए तो कहता हूं कि यहां आओ और रणछोड़राय के सामने खड़े रहो।" कहते-कहते वे स्वयं उठे और मंदिर के अंदर चले गए। उन्होंने मूर्ति के पास रखी हुई चांदी की झारी उठाई। तबतक पोपटलाल मंदिर के द्वार पर पहुंच गया था। वंसीकाका ने उससे कहा, "पोपटभाई, इस झारी में गंगा, यमुना और सरस्वती का पवित्र जल है। यह पवित्र जल हाथ में लेकर कहो कि अनाज के बारे में अभी तुमने जो कुछ कहा, वह सत्य है। तुम्हारे मन में किसी प्रकार की चोरी नहीं है।"

पोपटलाल एकदम घबरा गया। उसकी तनी हुई गर्दन झुक गई,

चेहरा उतर गया।

बंसीकाका ने गंभीर-शांत मुद्रा से कहा, "पोपटभाई, एक बार सभी को विश्वास दिला दो। हाथ आगे करो, गंगा जल लो।"

पोपटलाल की गर्दन उठ न सकी। उसे लगा, वह अपने ही जाल में फंस गया है।

उपस्थित लोगों को जो कुछ जानना था, मालूम हो गया। वैसे भी सभी को अनुभव था कि नगर के व्यापारियों में पोपटलाल कितना लोभी और मक्कार है। दान-धर्म के काम में पोपटलाल सभी जगह आगे रहता था। गोशाला बनाने के लिए उसने सबसे ज्यादा पैसा दिया था। दक्षिणी पर-कोटे की भंगी जाति के लिए पानी का बारहमासी कुआं बनवाने के लिए सबसे पहले उसी ने धन दिया था। किसी भी सार्वजनिक काम में वह हमेशा सबसे आगे रहता था। उसका प्रयत्न होता था कि दान-दक्षिणा के कामों में उसका नाम चारों ओर फैले। इसीलिए उसने भंगियों के लिए बने कुएं का नाम 'पोपट का कुआं' रखवाया था।

पोपटभाई सार्वजनिक रूप से तो इतना दान-धर्म करता था, किंतु यदि उसके दरवाजे पर कोई गरीब जरूरतमंद चला जाता तो उसे एक कौड़ी भी नहीं मिलती थी। धक्के और गालियां ही उसके हिस्से में आती थीं। उसकी दानशीलता के इस दुरंगेपन को भी सभी जानते थे, इसलिए कोई उसे सम्मान नहीं देता था।

पीढ़ियों से उसका लेन-देन का धंधा चल रहा था। गिरवी रखकर कर्ज देने के धंधे में वह माहिर था। उसके ब्याज की दर इतनी कम थी कि मूल से कई गुना ब्याज चुका कर भी कर्जदार अपनी रेहन रखी चीज को छुड़ा न पाता और पोपटलाल उसे हड़प लेता था। इस तरह उसके पास अपार धन हो गया था।

बंसीकाका बोले, "पोपटलाल, गंगा जल को छूने तक की तुम्हारी हिम्मत नहीं हो रही, इससे समझ में आ गया कि सचाई क्या है। आदमी दूसरों को धोखा दे सकता है, किंतु अपने ही मन को धोखा देना मुश्किल

होता है ।"

रतिलाल बोले, "बंसीकाका, पोपटभाई का अपराध साबित हो गया । उन्हें कायदे के अनुसार सजा मिलनी चाहिए ।"

"मिलेगी । एक तो संकटकालीन स्थिति में जान-बूझकर अनाज छिपाना मानवता की दृष्टि से भारी गुनाह है, दूसरे जिस उद्देश्य से इन्होंने अनाज छिपाया..."

बंसीकाका ने थोड़ा रुककर पोपटलाल से पूछा, "पोपटभाई, अनाज छिपाने का तुम्हारा उद्देश्य अच्छा नहीं था न ?"

पोपटलाल ने जवाब दिया, "बंसीकाका, अब आप जो भी कहेंगे, मुझे सब स्वीकार है ।"

"मैं कहता हूँ इसलिए नहीं । मेरे पास पूरे प्रमाण हैं । अहमदाबाद के एक व्यापारी को यहां से दुगने दामों पर एक हजार बोरी गेहूं देने की तुम्हारी बातचीत चल रही है । तुमने एक-दो दिन में ही गुप्त रूप से माल भेजने का सारा प्रबंध भी कर लिया है । तुम्हीं बताओ, सच है न?"

पोपटलाल का चेहरा फक हो गया । सोचने लगा, दिन-रात भजन में मग्न रहनेवाले पैंसठ वर्षीय बंसीकाका ने यह जासूसी किस प्रकार की? सारी बातों का पूरा पता इन्हें कैसे चल गया ? लड़ाकू स्वभाव और तेज निगाहवाले नीलकंठराय को आजतक मेरी चोरबाजारी का सुराग नहीं लग पाया, किंतु इस सीधे-सादे बंसीकाका ने न जाने कैसे सारी बातें मालूम कर लीं ।

बंसीकाका की बात सुनकर सलाहकार-मंडल के सभी सदस्य एक साथ बोल उठे, "बंसीकाका, घर के लोगों को भूखा मारकर जो शत्रु को खिलाता है, उसको कठोर दंड मिलना चाहिए ।"

"सो तो होगा ही ।" उन्हें आश्वस्त कर पोपटलाल की ओर घूमकर बंसीकाका ने कहा, "पोपटभाई, तुम अपने को वैष्णव समझते हो । पर सच्चा वैष्णव तो वह है, जो दूसरों के दु:ख को समझे । तुम सच्चे वैष्णव नहीं हो । मैं आज से तुम्हारे मंदिर-प्रवेश पर पाबंदी लगाता हूं । तुम

वष्णव तिलक अब माथे पर नहीं लगा सकोगे, क्योंकि इस तिलक को लगाने का अधिकार सच्चे वैष्णव को ही है। इसके अतिरिक्त व्यापार-मंडल की तुम्हारी सदस्यता आज से समाप्त की जाती है। छिपाया हुआ सारा अनाज भी जब्त किया जाता है।"

वसीकाका का स्वर अंत तक पहुंचते-पहुंचते वज्र के समान कठोर हो गया था। उन्होंने कहा, "अब तुम यहां से चले जाओ।"

पोपटलाल बिना कुछ बोले, नीची गर्दन किये सभा-भवन से बाहर चला गया।

उसके जाने के बाद थोड़ी देर तक चुप्पी छाई रही। अंत में निस्तब्धता भंग करते हुए एक सभासद बोला, "बंसीकाका, अपराधी को उचित दंड मिलना चाहिए था, किंतु आपने तो उस नमकहराम को योंही चले जाने दिया।"

एक अन्य सदस्य ने कहा, "न्याय के हाथ कठोर होने चाहिए। उसे इस प्रकार छोड़ना उचित नहीं। ऐसे लोगों को सार्वजनिक रूप से कोड़े मारने की सजा दी जानी चाहिए। तभी दूसरे अपराधियों में डर बैठेगा।"

"बंसीकाका, वैष्णव साधुदिल के, कोमल होते हैं, किंतु अवसर आने पर उन्हें वज्र से भी कठोर बनना पड़ता है।"

बंसीकाका तकिये से टिककर आराम से बैठे थे। आंखें बंद किये दूसरों की बातें सुन रहे थे। यह देख रतिलाल चिढ़कर बोले, "बंसीकाका, पोपटलाल को सजा देने का निर्णय बहुमत से होना चाहिए।"

बंसीकाका ने आंखें बंद किये हुए ही शांति से पूछा, "बहुमत के अनुसार क्या किया जाना चाहिए ?"

"बीच चौक में उसे कोड़े की सजा मिलनी चाहिए। मंडलेश्वर होते तो वे भी यही करते।"

बंसीकाका थोड़ी देर चुप रहे, फिर उन्होंने आंखें खोलीं, मंद हंसी के साथ बोले, "मगन सेंध लगाने के अपराध में एक साल बंदीघर में था।

इस सजा से उसमें कुछ सुधार हुआ है क्या ? छूटने के तुरंत बाद वह सराफ़े में बड़ी चोरी करते हुए पकड़ा गया और पुनः बंदीख़ाने में चला गया। आप सभी जानते हैं।"

"इसका मतलब आप क्या यह समझते हैं कि अपराधियों को दंड दिया ही न जाय।"

"दंड अवश्य मिलना चाहिए। पर विचार कीजिए कि अपराधी को दंड देने के स्थान पर यदि उसका घर ही नष्ट कर दिया गया तो क्या वह सुधर पायगा ?"

"बंसीकाका, हम भी यही कहते रहे हैं कि ऐसे मनुष्य को कड़ा दंड मिलना चाहिए।"

"नहीं, आप दूसरी ही बात कर रहे हैं। मेरी बात आपकी समझ में नहीं आई। शरीर को दंड देने से मनुष्य का मन नहीं सुधरता। देह को दंड देने से मन और आत्मा दंडित नहीं होते, क्योंकि शरीर मन का निवास और आत्मा का घर है। इसलिए वास्तव में दंड मन को दिया जाना चाहिए। शासन का वास्तविक आघात आत्मा पर होना चाहिए।"

"बंसीकाका, अब आप कायदे-कानून छोड़कर वेदान्त के चक्कर में पड़ रहे हैं।"

बंसीकाका ने हँसकर कहा, "अरे भाई, कायदे-कानून और न्याय जिस प्रकार मनुष्य के सुधार के लिए हैं, उसी प्रकार वेदांत भी मानव के हित के ही लिए है।"

"आपके इस वेदांत से मनुष्य सुधर जायगा ?"

"मेरा यही विश्वास है। सभी बातें कायदे-कानून से नहीं होतीं। कायदे-कानून को भी वेदांत का पुट देना होता है।"

"यह किस प्रकार होगा।"

"पोपटलाल को सजा मिली है। उसके पास छिपा सारा अनाज कल मंदिर के भंडार में आ जायगा। यह तो एक बात हुई, दूसरी यह कि आज शाम तक नगर-कोट के चारों दरवाजों पर आज्ञा पहुंच जायगी

कि बाहर से आने और जानेवाले सामान की पूरी जांच की जाय। इस आदेश का कठोरता से पालन होगा। इस विषय में किसी को कुछ कहना हो तो कह सकते हैं।"

"नहीं, यह आदेश बिलकुल उचित है।"

उसी दिन शाम तक सारे नगर में पोपटलाल की धूर्तता और चोर-बाजारी के समाचार फैल गए। नतीजा यह हुआ कि पोपटलाल का घर से निकलना दूभर हो गया। दुकान पर उसका बड़ा लड़का बैठने लगा। कोई भी पूछता तो बेटा कहता, पिताजी बीमार हैं और वास्तव में पोपटलाल बीमार था—तन से नहीं, मन से।

नये आज्ञापत्र पर कड़ाई से अमल होने लगा। चोरबाजारी रुक गई।

आठ

अकबर की राजधानी आगरा में बड़े पैमाने पर उत्सव हो रहा था। जगह-जगह अकबर का जय-जयकार सुनाई दे रहा था। यह अकबर की चित्तौड़-विजय का उत्सव था। जिस किले को वर्षों की कोशिशों और साम, दाम, दण्ड, भेद की सभी नीतियां अमल में लेकर भी नहीं जीता जा सका था, उसकी विजय का उत्सव भारी पैमाने पर मनाया जाना स्वाभाविक ही था।

विशाल मुगल साम्राज्य की स्थापना के लिए अकबर अंबर, बीकानेर, जयपुर रणथंभौर आदि सभी प्रमुख राजपूत राज्यों को जीत चुका था। केवल चित्तौड़ का किला उसे चुनौती दे रहा था।

एक माह पूर्व ही चित्तौड़ जीता गया था और तभी से उत्सव हो रहा था। रोज साधु-फकीरों को भोजन और दान दिया जा रहा था। रोशनी की जा रही थी। रंगीन महफिलें सज रही थीं।

राजमार्ग पर तानसेन की हवेली थी। वह सामनेवाले सुसज्जित

कक्ष में तकिये से टिककर शांतचित्त बैठा था। राजमार्ग का शोरगुल उसके कानों में आ रहा था। बंद आंखों से वह कई प्रकार के दृश्य देख रहा था। महीने भर से हो रही लगातार महफिलों से वह ऊब-सा गया था। रोज-रोज के जागरण का असर उसके स्वास्थ्य पर भी पड़ा था। वह कुछ दिन किसी शांत स्थान पर जाकर रहना चाहता था।

उसने आठ दिन अपने गांव बेहट में जाकर रहने का निश्चय किया। वहां से वृंदावन जाकर कुछ दिन अपने संगीत-गुरु स्वामी हरिदासजी के दर्शन करने और उनके पास रहने का भी विचार उसके मन में आया।

तानसेन विचारमग्न था, तभी नौकर ने मुजरा करते हुए बताया, "नीचे अमीर मिर्जा खान आये हैं। आपसे भेंट करना चाहते हैं।"

"अमीर मिर्जा खान ?"

"जी हां, सेनापति मिर्जा अजीज।"

तानसेन ने कहा, "जा, ले आ उनको।"

नौकर सलाम बजाकर उलटे पांव लौट गया।

मिर्जा अजीज अकबर के मंत्रिमंडल का एक कुशल राजनीतिज्ञ, मंत्री और एक अच्छा सेनापति भी था। वह बादशाह का समवयस्क था। अकबर उसे बिल्कुल भाई की तरह मानता और कई महत्वपूर्ण अंतरंग बातों में उससे परामर्श करता था। बादशाह पर उसका बड़ा प्रभाव था।

मिर्जा के पिता और तानसेन में गहरा प्रेम था। मिर्जा स्वयं भी संगीत का शौकीन था। वह तानसेन का भक्त था और उसके पास प्रायः आता रहता था।

मिर्जा अंदर आया। उसने झुककर तानसेन को सलाम किया और कहा, "चाचा, अब्बाजान ने बताया कि आपकी तबियत ठीक नहीं है।"

"आओ, सिपहसालार, बैठो।"

तानसेन की गद्दी के कोने पर अदब के साथ बैठते हुए उसने नम्रता-पूर्वक कहा, "चाचा, अकबर बादशाह के दरबार में मैं सिपहसालार जरूर हूं, पर यह याद क्यों नहीं फरमाते कि आपके दरबार में महज

एक छोटा-सा शागिर्द हूं।"

तानसेन ने उस पच्चीस वर्षीय तरुण की ओर स्नेह से देखा और वात्सल्य से उसकी पीठ थपथपाई।

मिर्जा ने पूछा, "हकीमजी की दवा नहीं ले रहे हैं क्या ?"

"ऐसा कुछ बीमार नहीं हूं बरखुरदार। तबियत मामूली-सी नरम है। ज्यादा बिगड़ी तो हकीम-वैद्य हाजिर हैं ही।"

मिर्जा ने सामने रखे अनेक प्रकार के वाद्य-यंत्रों पर निगाह घुमाते हुए कहा, "चाचा, उस दिन दरबार में आपकी कमी सबको बहुत खटकी।"

"उस दिन तबियत खराब थी, इसलिए हाजिर न हो सका, पर बिलासखां को मैंने भेजा था। बादशाह सलामत नाराज तो नहीं हुए ?"

"चाचा, जिससे मिलने के लिए आलीजाह दूसरों की मरजी का खयाल रखते हैं, उसपर नाराज कैसे हो सकते हैं।"

तानसेन की पूर्व-स्मृति जाग उठी। उसने पूछा, "संगीत दरबार में हाजिर रहने की इजाजत लेकर जलालखां जब बांधवगढ़ आया था तो तू भी उसके साथ था न ?"

"जी हां, सबसे पहले मैं आपको देखूं, यह मेरी ख्वाहिश थी। बादशाह सलामत ने भी मुझे खास काम से ही जलालखां के साथ भेजा था। आपके संगीत की शोहरत दिल्ली-आगरा तक पहुंच चुकी थी। बादशाह सलामत की इस ख़ासियत से तो आप वाकिफ ही हैं कि दुनिया में जो सबसे उम्दा और बेहतरीन हो, वह सब उनके पास होना चाहिए। आपकी शोहरत सुनी तो आलीजाह ने फौरन फैसला कर लिया कि आपको उनके दरबार में होना चाहिए। एक बार फैसला करने के बाद इंतजार करना बादशाह सलामत के स्वभाव में नहीं है। उन्होंने एक तरफ तो आपको अपने दरबार में गाने की दावत दी और साथ ही राजा रामचंदर को शाही खरीता भी भेज दिया।"

"राजा साहब ने वह खरीता मुझे पढ़कर सुनाया था।"

"बादशाह सलामत ने खुद उसे लिखवाया था। उसमें क्या था, यह तो मैं नहीं जानता, मगर यह सही है कि दूसरों के दिल में बैठकर अपनी बात मनवालेना बादशाह बाखूबी जानते हैं।"

"हां, उसमें ऐसी ही जबान इस्तेमाल की गई थी। बादशाह सलामत ने लिखा था—आप भाग्यवान हैं। आपके पास जो दुर्लभ रत्न है, उसकी मांग करना उचित नहीं, मगर आप जानते ही हैं कि नभमंडल में आने पर ही सूर्य का प्रकाश चारों ओर फैलता है। आप स्वयं समझदार हैं। अनमोल रत्न की कीमत करना मूर्खता है। पर अवसर आने पर मुंहमांगी कीमत देने के लिए अकबर तैयार है, यह भी आप जानते ही हैं।"

तानसेन ने आगे कहा, "आलीजाह की इच्छा साफ थी। मुझे विदा देने के लिए महाराज को विवश हो जाना पड़ा। उन्होंने कहा था, 'तानसेन, कृष्ण मुरारी को लाने के लिए जब अक्रूर गोकुल गये उस समय नंद, यशोदा और गोकुल के गोपियों की जो दशा हुई, वही आज बांधवगढ़-वासियों की हो रही है।' मैंने कहा था, 'महाराज, जाने की मेरी इच्छा नहीं है। आपकी सेवा में ही मैं संतुष्ट हूं।' महाराज बोले, 'नहीं, तानसेन, तुम जाओ। बादशाह का कहना ठीक है। उस कला-प्रेमी सम्राट के दरबार में तुम्हारे-जैसा रत्न शोभा पायगा। तुम्हारे गुणों को दाद मिलेगी।' मैंने कहा, 'आपके कारण ही तो लोग इस तानसेन को जानने लगे हैं। उसका नाम मुगल सम्राट तक जो पहुंचा, इसका श्रेय भी आप को ही है। सूर्य का उदय यहीं हुआ है, इसे यहीं रहने दीजिए।' मगर वे राज़ी न हुए। मिर्जा, वे महाराज वास्तव में धन्य हैं!"

मिर्जा हंसा और बोला, "हां, वे भी धन्य हैं और तानसेन भी! इसका यकीन आपने पहले ही दिन दरबार को करा दिया। हाड़-मांस का बना कलाकार शूरमाओं की तरह जांबाज़ होता है, कड़ी छाती का होता है, यह बादशाह सलामत के भरे दरबार में आपने साबित कर दिखाया।"

तानसेन जवाब में केवल हंस दिया।

मिर्जा ने अपनी बात चालू रखी, "चाचा, सात-आठ साल पहले का वह नज़ारा आज भी मेरी निगाहों के सामने हूबहू खड़ा हो जाता है।"

तानसेन ने आंखें बंद कर लीं। वह दिन और घटना उसकी आंखों में भी प्रत्यक्ष हो उठे थे। मिर्जा ने विस्तार से वर्णन किया, उस दिन दरबार भरा। आपका गाना सुनने के लिए सभी बेताब थे। बादशाह सलामत दरबार में रौनक अफरोज हुए। उन्होंने आपका गाना सुनने की ख्वाहिश जाहिर की। दरबार में सन्नाटा तो पहले ही था, और गहरा हो गया। आपके सुर गूंजने लगे। लोग खो-से गए, सांप की तरह डोलने लगे। आपका जो नाम सुना था वैसा ही पाया, बल्कि उससे कहीं बढ़-चढ़ कर। सारा दरबार झूम उठा—वाह-वाह, सुभानअल्लाह, बहुत खूब, कमाल कर दिया !

खुद बादशाह सलामत भी उछल पड़े। आलाप के बाद आपने ध्रुपद के बोल शुरू किये, गोया तान-पलटों के चंदोवे से रंगारंग फूल झड़ने लगे। वे अलफाज मुझे आज भी भूले नहीं हैं।"

तानसेन ने हँसकर कहा, "तुम्हारी याददाश्त बहुत अच्छी है।"

"मगर आपकी फनकारी की बुलंदियों के आगे कुछ भी नहीं है। वैसे मंजूर करता हूं कि आपकी गीत-रचना इतनी आसान भी नहीं होती कि हर कोई उसे अपने जहेन में रख सके। आपके सुरों में से गीत के अलफाज नदी की धारा की तरह बहने लगे :

ए तुम सजि सजि दल चढ़त,
जब भूमि पर भार होत।
थरथरात देस-देस के गढ़पती
सुनि धाक थरहरात ॥
जाके चढे तें खुर रैंनु उड़त,
गगन छिपि जात,
खलबल परत सिंह हू पै
बाजत निसान जब शब्द घहरात ॥

देव-दानव और राव-राना भाज गये,
सेस पाताल लौं कमठ पीठ कलमलात ।।
सहस सहस फनि कटि-कटि,
चूरि-चूरि भयो थरहरात ।।
महराजन-मनि राजा राम
रामचंद्र की सवारी होत,
अस्वदल, गजदल, पयदल
सुनि-सुनि अकबकात धमधकात ।
ऐसौ सुरौ-पुरौ वासौ वोही दुजौ नांही,
मेरे जान 'तानसेन' गुनीजनकौं अचानक कीन्हों
वाकी सूरत-मूरत पर बलि-बलि जात ।।

जैसे ही अलफाजों का मतलब समझ में आया, लोग चौकन्ने हो गए, बाज़-बाज़ तो घबरा भी गए । खौफ़ज़दा हो गए, क्योंकि बादशाह हुज़ूर के दरबार में आप पहले ही दिन जहांपनाह की तारीफ में गीत गाने की जगह राजा रामचंदर की शान में गाना सुना रहे थे । मामूली आदमी को भी अपने मुंह पर दूसरे की तारीफ गवारा नहीं होती, फिर वह तो शाही दरबार था और खुद बादशांह सलामत पूरे दरबारी हुजूम के साथ रौनक फरमा रहे थे ।"

तानसेन ने हँसकर कहा, "आदमी जितना बड़ा होता है, उसका घमंड, उसकी खुद्दारी भी उतनी ही बड़ी होती है ।"

"तभी तो लोग इस खयाल से थर्रा उठे थे कि नतीजा जाने क्या होगा ! आम खयाल यही हुआ कि शायद आपको नयी जगह का औसान नहीं रहा । मुमकिन है, आप इसी गफलत में रहे हों कि राजा रामचंदर के दरबार में बैठे हैं ।"

"हां, लोगों का ऐसा खयाल हो भी सकता है ।" कहकर तानसेन हँसा ।

मिर्जा ने बात जारी रखते हुए कहा, "पर बाद में पता चला कि

आपको जगह और मौके का पूरा खयाल था। आप बादशाह की कद्रदानी का इम्तहान ले रहे थे। आप जांच कर रहे थे कि राजा रामचंदर के मुकुट के जिस मोती को बादशाह सलामत ले आये, उसके पारखी और कद्रदान भी वे हैं या नहीं। आप हुजूरआली के कला-प्रेम की थाह ले रहे थे।"

तानसेन हँसा, "हां, देख रहा था कि शहंशाह का दिल कितना बड़ा और ऊंचा है।"

मिर्जा ने कहा, "चाचा, बादशाह सलामत आपकी कसौटी पर खरे उतरे। हुजूरआली आपका गाना सुनकर सबकुछ भूल गए, अपने तन-बदन की भी सुध उन्हें न रही। आपके किरदार की तारीफ करते हुए जब दो लाख मोहरें आपको इनायत कीं तो तमाम दरबारी आंखें फाड़े देखते रह गए।"

"और बेटा, दूसरे दिन मैं हैरान रह गया जब मुझे संगीतसभा का प्रमुख बनाये जाने का हुक्मनामा मेरे पास पहुंचा।"

"आपके लायक ही तो था, चचाजान!"

इधर-उधर की गपशप के बाद मिर्जा अपने काम की बात पर आ गया। बोला, "चाचा, आज बादशाह सलामत की खिदमत में पेश हुआ था।"

"क्यों? कोई खास बात थी क्या?"

"हुजूर के दुश्मनों के मिजाज नासाज़ हैं। जिल्ले सुभानी कुछ बेचैन नज़र आते हैं।"

"बेचैन? पर क्यों? उन्होंने चित्तौड़गढ़ फतह किया, बड़ी मार्के की कामयाबी है, फिर बेचैनी क्यों?"

"मगर चित्तौड़ को हासिल करने के लिए जो कपट-चाल चलनी पड़ी..."

"अरे भाई, जंग जीतने के लिए छल-कपट से तो काम लेना ही पड़ता है। जंग कोई संगीत की जुगलबंदी तो है नहीं।"

"बात तो ठीक है, चाचा। कपट-चाल के बिना जंग नहीं जीता जा

सकता, मगर चित्तौड़ के जंग में जंगी उसूलों को वालाए ताक रखकर वहां जो कहर बरपा किया गया, तबाही हुई, उसकी याद बादशाह सलामत को दिन-रात बेचैन किये रहती है।"

"ताज्जुब है। मगर मिर्जा बेटे, जंगी मामलों की ज्यादा जानकारी तुम्हें है। मैं तो सिर्फ इतना जानता हूं कि जंग के मैदान में जब बहादुरी बहादुरी की टक्कर पर टिक नहीं पाती तो लड़नेवाले और खास तौर पर हमलावर बेरहमी पर उतर आते हैं।"

"जी चाचा, आपका फरमाना दुरुस्त है।"

"मिर्जा, इस मुहीम में बादशाह सलामत को बहुत ज्यादा मेहनत करनी पड़ी, शायद यही वजह है कि नतीजे में उनका दिल भारी और मन बेचैन रहने लगा हो।"

"हां, कई बार ऐसा भी होता है।"

थोड़ी देर चुप रहकर मिर्जा ने फिर कहा, "चाचा, बादशाह सलामत की मौजूदा बीमारी महज मेहनत की वजह से नहीं है। उसकी असली वजह कुछ दूसरी ही है।"

तानसेन ने हँसकर कहा, "तुम शहंशाह के खास मुसाहिब हो और दिली दोस्त भी। वजह भी तुम्हें जरूर मालूम होगी।"

मिर्जा ने स्वीकार किया, "चाचा, दरअसल यह बेचैनी नहीं, गुनाहों की टीसें हैं।"

"गुनाहों की टीसें, कह क्या रहे हो ?"

"जी हां, जिस दिन चित्तौड़ पर फतह हासिल हुई, उसी दिन शाहजादा हुसेन के मरने की खबर मिली। बादशाह सलामत राजधानी वापस आये, उसी दिन शाहजादा हुसेन भी चल बसे। दोनों जुड़वां शहजादे अल्लाह को प्यारे हो गए। उनसे बादशाह सलामत को बड़ी मुहब्बत थी। उसी वक्त से हुजूर के मन में यह बात बैठ गई कि चित्तौड़ में जो बेपनाह मार-काट की गई, उसी का यह नतीजा है। निहत्थे और बेगुनाह लोगों के कत्ले-आम के सबक से दोनों प्यारे बच्चे एक साथ जाते रहे।"

"बादशाह सलामत, जंग के नतीजों पर इस कदर गौर फरमाते हैं ?"

"जी हां, आला हुजूर जितने बेरहम हैं, बेरहमी के नतीजों से उतने ही परेशान भी होते हैं। जब भी किसी मुहीम से वापस होते हैं तो खूब खैरात और इबादत भी करते हैं।"

"किये हुए गुनाह क्या खैरात और इबादत से धुल सकते हैं ?"

"इसके बिना मन को सकून जो नहीं मिलता। इस बार खुद बेटों के गम में मुब्तिला हैं, मगर रियाया को फतह की खुशियों से महरूम नहीं रखना चाहते। इसलिए फतह के जलसे का ऐलान किया है। हुकूमत और ज़ाती मामलों को जिल्ले सुमानी अलग-अलग मानते हैं। यही वजह है कि रियाया जलसे कर रही है और उनका बाहशाह बेचैन है।"

"हकीम-वैद्यों से इलाज..."

"सबकुछ चल रहा है। हकीम-वैद्य पुरजोर कोशिश कर रहे हैं, मगर कोई फायदा नहीं हो रहा है। मन बहलाने के भी कई तरीके किये जा रहे हैं, मगर सब बेकार। उनका मन कहीं नहीं लगता। शतरंज उनकी खास पसंद का खेल है। इसमें वे खूब रमे रहते हैं। अभी खूबसूरत और होशियार नाजनीनों को मोहरें बनाकर शतरंज जमाई गई, मगर थोड़ी देर में वह उठकर चल दिये। आजकल तो किसी से मिलते भी नहीं।"

"उपाय क्या हो सकता हैं ?"

"किसी की कुछ समझ में नहीं आ रहा। आज अंबर की रानी साहिबा ने मुझे बुलाया था। उन्होंने फरमाया था कि बादशाह सलामत को खुश करने का तरीका आपके पास है।"

"मेरे पास है ?"

"जी, चाचाजान। बेगम साहिबा को यकीन है कि आपके संगीत से बादशाह सलामत के जी को जरूर सकून मिलेगा।"

"बादशाह सलामत की खिदमत के लिए मैं हर वक्त तैयार हूं।"

"इसीलिए तो मैं आपको तकलीफ देने हाजिर हुआ हूं। शाम को फिर हाजिर हूंगा, आपको दरबार में ले जाने के लिए। अब इजाजत

दीजिए।"

× × ×

निश्चित समय पर तानसेन को लेकर मिर्जा बादशाह के महलों में गया।

उस शाही महल के एक विशाल खंड में अकबर ऊंचे मंच पर आंखें बंद किये लेटा हुआ था। सेवक पांव की ओर खड़े थे। दासियां चंवर डुला रही थीं। हर कोने में रखे इत्र के दीये आज जलाये नहीं गये थे। केवल सिरहाने की ओर एक दीपक मंद प्रकाश बिखेरता टिमटिमा रहा था। दूसरी ओर के कोने में सोने की धूपदानी में सुगंधित धूप जल रही थी। पूरे कक्ष में इत्र की मधुर सुगंध छायी हुई थी। दीपक का प्रकाश इतना कम था कि बादशाह का चेहरा भी साफ दिखाई नहीं देता था।

मिर्जा ने बादशाह को तानसेन के आने की खबर दी। तानसेन ने आगे आकर बादशाह को मुजरा किया।

बादशाह ने कहा, "आओ, मिर्जा तानसेन।"

तानसेन बोला, "शहंशाहे आलम, हुजूर के दुश्मनों का मिजाज नासाज है, यह मालूम होते ही खादिम खिदमत में हाजिर हो गया।"

"अच्छा..." बादशाह ओठों में बुदबुदाया और गहरी सांस छोड़कर उसने फिर आंखें मूंद लीं।

तानसेन ने मिर्जा की ओर देखा। मिर्जा ने गाना शुरू करने का इशारा किया।

तानसेन के साजिंदे-बाजिंदे हलके कदमों आकर बैठ गए। तानसेन ने गाना शुरू किया। आलाप की गूंज उठी और स्वर-सुगंधि वातावरण में भरने लगी।

अकबर ने धीरे से आंखें खोलीं और थोड़ा ऊपर की ओर खिसककर तकिये के सहारे बैठ गया। पास खड़े अनुचर ने ईरानी हुक्के की नली उसके हाथ में थमा दी।

संगीत के स्वर क्रमशः उसके कानों में पहुंचने लगे। स्वरों में से बोल

फूटने लगे :

चरक चित्र मित्र हू मिलत अमल मबल,
चित्त चढ़त रूप रंग भरत,
जगत मन हरत ।
प्रथमहि आतमा दरत, पुनि अरि-तन टूक करत,
बड़ी-बड़ी वार परत ।
रस ढरत लटपटात थरथरात
बेहोस भट है लरत ।
एक मारत मरत, एकन दरत बिसरत,
हेरत रौर दारिद्र इनके दरत ।।
वहीं ज्ञान जी में धरत, परसत संसार नित,
धीरे मन में यातें भूल न परत ।
'तानसेन' कहत अकबर अल्ला सुमरि कैं नाद गाये,
एक दरसन ही सुरत निरम ।।

गीत पूरा हुआ ।

अकबर ने कहा, "मिर्जा तानसेन, आपकी इस तारीफ से हमारा मन खुश नहीं हो रहा है । हमारे दिल में अंधेरा छाया हुआ है। वह जाने का नाम नहीं लेता। उसे दूर कीजिए ।"

"हुजूर का हुक्म सिर-माथे ।" यह कहकर तानसेन क्षणभर सोचता रहा । फिर अपने साज़िंदों-बाज़िंदों को उसने कुछ सूचनाएं दीं । उन्होंने नये सिरे से अपने साज मिलाये । तानसेन का गीत प्रारंभ हुआ। दीपक राग के स्वर प्रकट होने लगे :

हे तन बनाय बरसत अग्नी, तरसत रोम रोम
दीपक दरसन कर देख उजाले अनंत अपरंपार ।।
जगत गगन झलकत झलकार सहस्र से तार जे तेज से
कोटी कोटी बनी है मिसाल ज्ञान समाज अंगार ।
निसदिन सिलगत रहत महान अग्नी

ओंकार पृथ्वी पाताल आकाश उनके बसन
दरसन प्रकाश आधार
सकल ज्योत अग्नी सागरज्वाला मेरू मकार
तूं विचार अगम निगम प्रथम अग्नी उपजावन अंध:कार ।।
कहे मिया 'तानसेन' सुन गुनी अकबर बादशाह हे धरित्री उद्धार
मंगल दीपक मानग्यान ब्रह्मावतार ।।

स्तब्ध वातावरण में चैतन्य तत्त्व तरंगित होने लगा। बादशाह आंखें बंद किये हुक्का पीते-पीते डोलने लगा। मिर्जा की भी यही अवस्था हुई।

एकाएक चमत्कार हुआ। सारे कक्ष में प्रकाश भर गया। वहां रखे तमाम दीपक अपने-आप जल उठे।

अकबर की आंखें अभी तक बंद थीं। पर अपने-आप प्रकटे प्रकाश के प्रभाव से उसने चौंककर आंखें खोलीं और दीपक जले हुए देखकर चकित हो उठा। उस कक्ष का ही नहीं, उसके अंत:करण में व्याप्त अंधकार भी दूर हो गया था। बादशाह का चेहरा खिल गया। आनंद से भरकर बोला, "कमाल कर दिया ! वाकई कमाल कर दिया ! मिर्जा तानसेन, आपने कमाल कर दिया। दीपक राग जगाकर दिये जलाने का चमत्कार करनेवाला आज एक ही इंसान इस दुनिया में है, और वह तानसेन है।"

"गुस्ताखी माफ हो, जहांपनाह ! दीपक राग का असर ही ऐसा है कि जो भी इसे गायगा, उसके गाने से दिये जल उठेंगे और उजाला हो जायगा।"

"नहीं, मिर्जा तानसेन ! हम इस बात को नहीं मानते। अलबत्ता हमारी बड़ी बेगम साहिबा ने विक्रम राजा का किस्सा हमें एक बार सुनाया था। उस विक्रम राजा के बाद दीपक राग के सबसे आला गानेवाले आप ही हुए हो !"

तानसेन ने सिर झुकाकर कहा, "हुजूर का दिल ख़ुश हुआ, ख़ादिम

धन्य हो गया। मेरी कला भी आज सार्थक हो गई।"

"बेशक। बड़ी खुशी की बात है। मिर्जा, आज मिर्जा तानसेन ने कैसा चमत्कार कर दिखाया!"

"बहुत बड़ा अजूबा है यह, जहांपनाह। ऐसा अजूबा हुजूर के इस खादिम ने न पहले देखा था, न सुना ही था।"

तानसेन ने कहा, "यह चमत्कार नहीं, संगीत की दिव्य शक्ति है।"

"संगीत की ऐसी बुलंदी सिर्फ आपको ही हासिल है।"

"बेअदबी माफ फरमाएं, मगर अर्ज करना चाहूंगा कि ऐसा नहीं है, हुजूर! संगीत का कोई भी एकनिष्ठ उपासक इस बुलंदी को हासिल कर सकता है।"

मिर्जा ने कहा, "बादशाह अकब र जैसे एक ही हैं, वैसे ही संगीत के शहंशाह तानसेन भी एक ही हैं।"

अकबर बोला, "मिर्जा तानसेन, हमारे पसमुर्दा मन में आज आपने जान डाल दी! सूखी लता को लहलहा दिया।"

"शाहआलम सौ वर्ष के हों, उनका तख्त आबाद रहे!"

"तानसेन, आज आपके सामने सारा खजाना भी खोलकर रख दिया जाय तो आपकी कलाकारी की कीमत नहीं चुकाई जा सकती। आपको जो भी चाहिए, मांगिए। अकबर आपको निहाल कर देगा।"

"गरीबपरवर, बिना मांगे मुझे इतना मिल चुका है कि अब मांगने-जैसी कोई चीज बाकी नहीं रही।"

"नहीं तानसेन, जरूर मांगिए।"

"जहांपनाह की खुशी ही मेरा सबसे बड़ा इनाम है,। फिर भी शाह-आलम का हुक्म है तो यही अर्ज करना चाहता हूं कि बादशाह सलामत को आज का यह मौका मुबारक याद रहे और खादिम को यह इजाजत हो कि उसे जब भी मांगना हो, मांग सके।

अकबर ने प्रसन्न होकर कहा, "इंशा अल्लाह, इजाजत है। हम याद रखेंगे।"

नौ

आषाढ़ पूरा बीत गया तो भी सारे गुजरात में कहीं वर्षा के चिह्न नहीं प्रकट हुए। आकाश बिलकुल साफ और सफेद ही रहा, उसके किसी कोने में बादलों का काला-कजरारापन उभरता न दिखाई दिया। अकाल के लिए सहेजे हुए अन्न-भंडार रीते होने लगे। घरों में अब मुश्किल से एक बार चूल्हा जल पाता था। छोटे-बड़े सभी को केवल एकाध सूखी रोटी मिल पाती थी। सब्जियां देखने को भी नहीं थीं। पीने के पानी का भी अकाल था। गांवों के कुएं कभी के सूख गए थे। जो बड़े सवेरे पहुंच जाते, उन्हें किसी तरह कुओं से आधा-पौन घड़ा पानी मिल जाता था। कुओं पर औरतों की कतारें लग जाती थीं।

जब कुओं का पानी समाप्त हो गया तो वड़नगर की महिलाएं शर्मिष्ठा पर पहुंचने लगीं। वहां झुंड-के-झुंड इकट्ठे होने लगे। सारा गांव पानी के लिए तालाब पर टूट पड़ा। रोज हजारों घड़े भरे जाते। भयंकर गर्मी के कारण शर्मिष्ठा का पानी भी तेज़ी से कम होता गया। नगर को जीवन देनेवाला और गांव की शोभा शर्मिष्ठा तालाब सूखने लगा।

आखिर विवश होकर बंसीकाका को तालाब के चारों ओर पहरा लगाना पड़ा। अब लोगों को नाप-नापकर पानी दिया जाने लगा।

जहां तक संभव हो, लोगों को अन्न उपलब्ध कराने के लिए बंसी-काका ने एक आदेश द्वारा मंदिरों के राजभोग पर भी पाबंदी लगा दी। देवताओं को केवल रोटी का नैवेद्य चढ़ाया जाने लगा।

× × ×

'वृंदावन' में रोज की तरह ग्वाला भालमा दूध देने आया। लोटे में सिर्फ आधा सेर दूध देखकर शर्मिष्ठा ने कहा, "अरे, यह क्या? इतना-

सा दूध !"

झालमा ने सिर नीचा किये जवाब दिया, "हां, मालकिन।"

"क्या मतलब ? कल रात तो दो सेर दूध लाया था !"

"हां बेन, लाया था, पर आज नहीं निकला।"

"एक रात में ही गाय ने दूध देना बंद कर दिया ? आधा सेर दूध से क्या होगा ?"

शर्मिष्ठा का उलाहना देना उचित ही था। हमेशा मेहमानों का आना-जाना लगा रहता था। दूध की जरूरत रहती थी। मगर दुष्काल के कारण गायों का दूध सूखने लगा था। रोज बड़ी मुश्किल से दो सेर दूध आ पाता था।

आज दूध की एकदम कमी देखकर शर्मिष्ठा बेचैन हो गई। जहां एक मन दूध की खपत थी, वहां रोज कमी होते-होते अब आधा सेर दूध रह गया था। इससे क्या होगा ? घर का काम कैसे चलेगा ? रणछोड़राय की पूजा-नैवेद्य का क्या होगा ? इस आधा सेर दूध में से दही, मक्खन, छाछ क्या-क्या निकाला जाय ?

शर्मिष्ठा ने कहा, "बाबा, तेरी गाय का दूध सूख गया तो कहीं दूसरी जगह से ला दे।"

मालमा नीचे बैठ गया। उसने घुटनों में सिर छिपा लिया और रोनी आवाज में बोला, "क्या बताऊं, बेन ?"

"क्यों रे, क्या हुआ ?"

"मेरी गाय कल मर गयी।"

"मर गयी ! कैसे ?"

"भूख से। दो दिन से चारा नहीं मिला। चारे के लिए सब ओर घूम आया। पिंजरापोल भी गया, पर कहीं से एक तिनका भी नहीं मिला।"

"हे भगवान, ये कैसे दिन आये !"

इतने में लामूबा बाहर आयी। उसने भी पूछा, "क्यों, क्या बात है ?"

शर्मिष्ठा ने सारी बात बताई और लोटा उठाकर अंदर चली गई।

भालमा ने कहा, "क्या कहूं बा, सभी गायें सूख गईं। चारा नहीं, पानी नहीं। गांव के पशु तड़प-तड़प कर मर रहे हैं। पिंजरापोल तक में चारा नहीं है।"

"हां बाबा, बहुत बुरे दिन आये हैं। हाटकेश क्यों कुपित हो गए, पता नहीं चलता। ऐसा तो कभी नहीं हुआ था। कल बंसी की भी दो गायें मर गईं।"

"गांव के कुछ ग्वाले अपनी गायों के साथ गांव छोड़कर जाने वाले हैं।"

"गांव छोड़कर चले जायंगे ?"

"नहीं तो क्या करें, बा ? चारे-पानी के बिना जानवर मर रहे हैं। इनको यों मरने कैसे दिया जाय ? एक तो पहले ही हाटकेश का रोष और उस पर गोहत्या का पाप ! इसीलिए पिंजरापोल के ग्वाले गायों को लेकर दक्षिण की ओर नर्मदा-किनारे जाने की कह रहे हैं। वंसीकाका पिंजरापोल की तरफ आने वाले हैं। देखें, वे क्या तय करते हैं ? पिंजरा-पोल के ग्वाले जायंगे तो बाकी ग्वाले भी अपने-अपने मवेशी लेकर उनके पीछे निकल जायंगे। मेरी भी चारों गायें लेकर गोपी उनके साथ चला जायगा।"

लाभूबा ने लम्बी सांस ली, "भगवान, दुश्मन को भी ऐसे दिन न दिखावे ! सौराष्ट्र में चालीस वर्ष पहले ऐसा ही भयंकर अकाल पड़ा था। त्राहि-त्राहि मच गई थी। उस समय वहां से गायों के झुंड-के-झुंड यहां आये थे। बड़नगर के कोट के बाहर का मैदान हजारों मवेशियों से भर गया था। बड़नगरवालों ने घर आये मेहमानों की तरह उनकी सेवा की थी। पूरा दाना-चारा दिया था। उस समय गायें कौड़ी के मोल बिकी थीं। यहां कइयों ने खरीदी थीं।"

भालमा ध्यान से सुनता रहा और फिर खाली लोटा लेकर चला गया।

× × ×

अनावृष्टि और अकाल की स्थिति दिनोंदिन भीषण होती गई। वर्षा की आशा में आसमान ताकते-ताकते आंखें पथरा जातीं। आखिरकार सलाहकार मंडल को गांव के मवेशियों को बाहर भेजने का निर्णय करना पड़ा।

दूसरे दिन पिंजरापोल के मैदान में सभी ग्वाले अपने-अपने मवेशी लेकर एकत्र हुए। चार-पांच महीने पहले जो पशु हृष्ट-पुष्ट दिखाई देते थे वे इस समय मात्र हड्डियों का ढांचा रह गए थे।

सलाहकार-मडल के साथ बंसीकाका भी वहां आये। उनके चेहरे पर आंतरिक वेदना साफ दिखाई दे रही थी। गांव का पोषण करनेवाले गोधन और खेती का आधार बैलों को विदा करते समय सभी का व्याकुल होना स्वाभाविक था।

वंसीकाका और अन्य सदस्यों ने हर गाय-बैल के मुंह में एक-एक मुट्ठी दाना दिया। थोड़ा चारा भी खिलाया। मवेशियों को लेकर जाने वाले ग्वालों को रास्ते के लिए थोड़ा-थोड़ा अनाज पहले ही दे दिया गया था। ग्वालों के स्त्री-बच्चे भी वहां आये हुए थे। वे अपने साथ रोटियां बनाकर लाये थे।

प्रस्थान की सारी तैयारियां हो चुकने पर बंसीकाका ने कहा, "दिन चढ़ने से पहले ही तुम लोग निकल जाओ। साबरमती के किनारे-किनारे आगे जाना। तापी-वापी के बीच का भाग बारहों महीने हरा रहता है। वहां अकाल नहीं पड़ता। वहीं मुकाम करना।"

कुछ लोग बोले, "बापाजी, पानी बरसा और अकाल मिटा कि हम तुरंत लौट आयंगे। हाटकेश की छाया हम नहीं छोड़ेंगे।"

बंसीकाका ने कहा, "ठीक है, जैसी हाटकेश की मर्जी होगी, वैसा ही होगा।"

ग्वाले गाय-बैलों के झुंड लेकर चल दिये। वृंदावन की छत से पिंजरापोल का मैदान दिखाई देता था।ताना-रिरी वहां खड़ी देख रही थीं। ठठरीनुमा गाय-बैलों को दाने-चारे की खोज में जाते देख दोनों

बहनें व्याकुल हो गईं। ताना सोचने लगी, देवता का यह कैसा कोप है? आज पशुओं को घर छोड़ना पड़ रहा है तो कल मनुष्यों की बारी आयगी। क्या इसका कोई उपाय नहीं है? वर्षा के अलावा उपाय हो भी क्या सकता है? परंतु वर्षा कैसे हो? क्या वर्षा मनुष्य के बस में है? तो क्या किया जाय? क्या...

वह नीचे उतर आयीं। मंदिर के मंडप में सलाहकार-मंडल बैठा था। एकादशी होने के कारण गांव के भक्त-जन भी आये हुए थे। दर्भावती के साठ वर्षीय वृद्ध वैष्णव नटवरलाल वृंदावन, मथुरा, नाथद्वारा आदि की यात्रा करके वड़नगर में हाटकेश के दर्शन के लिए आये थे।

अकाल के समाचार मंडलेश्वर तक पहुंचा दिये गए थे, जो उस समय जूनागढ़ में मुकाम किये हुए थे। बंसीकाका ने दो सप्ताह पूर्व ही दर्भावती को विशेष दूत भेजकर वहां के महाजन-मंडल तथा मंडलेश्वर से अनाज की मदद की प्रार्थना की थी।

आरती समाप्त हुई ही थी। रणछोड़राय का रूप निहारते हुए भक्त-जन, अपना सात्विक संताप प्रकट कर रहे थे, "देवता की रोज इतनी प्रार्थना करते हैं, फिर भी उस पर कोई असर नहीं होता।"

"हाटकेश्वर का अखंड अभिषेक चालू है तो भी उसको दया नहीं आती।"

बंसीकाका ने कहा, "यह देवता का दोष नहीं है।"

"फिर किसका है? भक्तों का?"

"हां, भक्त की पुकार सुनकर भगवान न दौड़े आयें, ऐसा कभी नहीं हुआ।"

"फिर हमारी पुकार रणछोड़राय के कान तक क्यों नहीं पहुंचती?"

बंसीकाका बोले, "पहुंच ही नहीं रही होगी। जबतक मन में भक्ति की व्याकुलता नहीं होती, अंतःकरण की पीड़ा नहीं होती, श्रद्धा का विश्वास नहीं होता, फल-प्राप्ति की दृढ़ कामना नहीं होती, भगवान के साथ तदाकार होने की सामर्थ्य नहीं होती, भक्ति पानी के बुलबुले के समान

हीं है।"

इसके वाद वेदांत की चर्चा चल पड़ी; पर उससे कुछ हासिल नहीं हुआ। पुराने दुष्कालों की कथाएं और कई प्रकार की दंत-कथाएं कही-सुनी जाने लगीं।

वृद्ध नटवरलाल ने वताया, चालीस वर्ष पूर्व सौराष्ट्र में अकाल पड़ा था, इससे भी भयंकर। सोमनाथ पर अखंड अभिषेक हो रहा था, पर वे सारा पानी स्वाहा कर जाते। जूनागढ़ के राय परम शिव-भक्त थे। सोमनाथ उनके कुल-देवता थे। कुल-देवता किसी तरह प्रसन्न नहीं हो रहे थे। तब राय नरसी मेहता की शरण गये।

राय ने अपना विशेष मंत्री भेजकर नरसी मेहता को जूनागढ़ वुलवाया। उनसे प्रार्थना की, "नरसी-भक्त, आपकी कृष्ण-भक्ति की महिमा हमने सुनी है। हमारे सत्व की परीक्षा की घड़ी आ पहुंची है।"

नरसी मेहता ने कहा, "महाराज, देवताओं का नियम ही है भक्तों के सत्व की परीक्षा करना।"

"भक्तराज, आपका कहना सही है। हम राजगद्दी पर हैं तो भी भक्ति की तो पहली ही सीढ़ी पर हैं। अव तो आप ही कृष्ण भगवान तक हमारी पुकार पहुंचाइए।"

"महाराज, आप सोमनाथ के अनन्य भक्त हैं। सोमनाथ और द्वारकानाथ अलग नहीं हैं। महाराज निश्चिन्त रहें। कल पूजा करने के बाद थोड़ी देर के लिए मंदिर में आकर बैठें।"

दूसरे दिन सवेरे भक्तराज नरसी मेहता स्नान करने के लिए तालाव पर गये। वहां कुछ लड़कियां घड़े भर रही थीं। उन्होंने एक लड़की से घड़ा लिया और धीरे से पानी में डुबाया। 'डुब-डुब' की आवाज के साथ मेघ-मल्हार के सातों स्वर स्पष्ट सुनाई दिये। वह घड़ा लड़कियों को देकर उन्होंने कहा, "जाओ, यह पानी सोमनाथ के अभिषेक-पात्र में उँडेल दो।" संगीत ज्ञान से शून्य लड़कियों ने सोचा, भक्तराज ने पानी में कोई मंत्र फूंका है। भक्तिभाव से गीत गाती हुईं वे सोमनाथ मंदिर गईं

और घड़े के उस स्वर-संयुक्त जल को अभिषेक-पात्र में डाल दिया।

भक्तराज भी सोमनाथ मंदिर में आकर बैठ गए। उन्होंने भजन शुरू किया और मेघ मल्हार राग गाने लगे।

दोपहर हो गई। आग उगलते सूरज की संहारक धूप हाहाकार मचा रही थी कि इतने में एकाएक चमत्कार हुआ। आकाश के एक कोने में न जाने कहां से वादल इकट्ठे होने लगे। धीरे-धीरे सारा आकाश वादलों से छा गया। वर्षा होने लगी।"

सुननेवाले 'धन्य-धन्य' कह उठे।

किसी ने पूछा, "यह भक्ति की महिमा थी कि संगीत की?"

"दोनों की।" जवाव मिला।

बंसीकाका दुखी होकर बोल उठे, "पर आज भक्ति और संगीत दोनों ही दुर्लभ हो गए हैं। भगवान जो भी करेगा, ठीक ही करेगा।"

× × ×

ताना अंदर बैठी हुई ध्यान से सुन रही थी। अपने बड़े नाना के वारे में यह दिव्य कथा सुनकर वह रोमांचित हो गई। उसके मन में विचार उठने लगे—"क्या बड़े नाना के आशीर्वाद से हमारे लिए भी यह करना संभव होगा? नानाजी ने हमें मेघ मल्हार सिखाया है। हम भी इसी प्रकार घड़ा भरकर हाटकेश्वर पर क्यों न चढ़ायें?...कहीं मैं पागल तो नहीं हो गई? कहां मेरे नाना की तपस्या और कहां मैं? पर मेरा जन्म भी तो उस महान सन्त के घर में हुआ है। मैं छोटी हूं तो क्या ध्रुव छोटा नहीं था? मैं भी ध्रुव के जैसी तपस्या करूंगी। मेघ मल्हार राग का वरदान हमारे घराने को प्राप्त है।

"भक्तराज के एकमात्र पुत्र शामलदास एकाएक चल बसे, अन्यथा उनके घराने में यह वरदान बना रहता। घराने की संगीत-साधना आगे चल नहीं सकी। नाना ने हमें बचपन से संगीत सिखाया। अब हम साधना करेंगी। सभी कहते हैं, नरसी मेहता के संगीत की विरासत हमें मिली है तो हम उसके लिए तपस्या क्यों न करें?"

ताना को रात-भर नींद नहीं आई। सोचते-सोचते उसने दृढ़ निश्चय कर लिया।

सुबह उठकर उसने रिरी को अपनी योजना समझाई। कहा, "किसी को इसका पता नहीं चलना चाहिए—मां को, दादाजी को, किसी को भी नहीं।"

"पर यह होगा कैसे ?"

"होना ही चाहिए। थोड़े-से दिन रह गए हैं। इस वर्ष यों भी हम दोनों हाटकेश्वर पर जल चढ़ाने के लिए जानेवाली थीं।"

उसी दिन से दोपहर के एकांत में वे घर के पीछे की हौदी में घड़ों की 'डुब-डुब' से मेघ मल्हार के स्वर निकालने का अभ्यास करने लगीं।

अब दोनों का एक ही लक्ष्य था, एक ही साधना। पहले तो स्वर ही नहीं जमते थे। अकसर पानी का अंदाज नहीं रहता था। बार-बार पानी भरतीं और खाली करती रहतीं। कभी एक स्वर लग जाता तो दूसरा चूक जाता। 'रे' कोमल लगता तो 'ग' तीव्र हो जाता। फिर से घड़ा खाली करके 'सा' से शुरू करतीं।

'घड़ा भर—खाली कर' कसरत से हाथ दुखने और कंधे फटने लगते। समय का ध्यान न रहता। पीछे के चौक से आवाजें आतीं तो दोनों झटपट घड़े छिपाकर घर में भाग आतीं। यदि कभी कोई वहां आकर पूछताछ करता तो गप्पें लगाने का बहाना कर देतीं। आधे भरे घड़े सिर पर रखकर बात बनातीं, "घड़े सिर पर रखकर चलने का अभ्यास छूट गया है। घाट से हाटकेश्वर तक घड़े ले जाने पड़ेंगे। उस समय कोई यह न कह दे कि नागरकन्या को सिर पर घड़ा भी रखना नहीं आता, इसीलिए थोड़ा अभ्यास कर रही हैं।"

आखिर एक दिन सभी स्वर सध गए। "डुब-डुब" ध्वनि में मेघ मल्हार राग साफ सुनाई दिया, एकदम शुद्ध स्वरूप में। प्रयत्न से परमेश्वर मिलने की कहावत चरितार्थ हुई। ताना ने हर्ष की किलकारी मारते हुए रिरी को बांहों में भर लिया। बोली, "रिरी, रिरी, अबतो पक्का..."

कहते-कहते वह रुक गई।

"क्या बात है बड़ीबेन, पक्का क्या ?"

ताना हंसी, "अब हाटकेश निश्चित प्रसन्न होंगे।"

दो दिन बाद का शुक्ल पक्ष शुरू हुआ। पहला दिन सोमवार था। उस दिन ताना-रिरी बहुत सवेरे उठ गईं। रणछोड़राय की प्रातः आरती में दोनों नियमपूर्वक आकर खड़ी हुईं। रणछोड़राय की ओर एकटक देखते हुए ताना ने मन-ही-मन प्रार्थना की, "रणछोड़राय, बड़े नाना की पुकार पर दौड़ा चला आया था। अब मेरी बारी पर भी दौड़ते हुए आना।"

आरती के बाद ही ताना-रिरी घड़े लेकर घर से निकल गईं। उन-की बुआसास ने हाटकेश्वर पर जल चढ़ाने की इजाजत तो अवश्य दी थी, पर साथ ही कड़ी ताकीद कर दी थी कि तुम मंडलेश्वर के घर की बहुएं हो, अब पालकियों में आनेजाने लगी हो। यह भगवान का काम है, इसलिए मना तो नहीं करती, किंतु रास्ता चालू होने से पहले ही जल चढ़ाकर लौट आना।

नागरवाड़ी की दूसरी लड़कियां भी उनके साथ चल पड़ीं।

मंडलेश्वर की हवेली के दो पहरेदार उनके आगे-पीछे चल रहे थे।

घाट पर पहुंचने के बाद लड़कियां अपनी-अपनी जगह चुनकर सीढ़ियां उतरीं। ताना-रिरी कुछ दूर एकांत की ओर चली गईं। सभी ने पूजा की और अपने-अपने घड़े डुबाये।

ताना-रिरी ने भी मन-ही-मन प्रार्थना कर अपने घड़े डुबाये। डुब-डुब-डुब-डुब...मेघ मल्हार के सातों स्वर एकदम स्पष्ट सुनाई दिये— बिना किसी आयास के।

हाटकेश के विशाल अभिषेक-पात्र में दूसरों के साथ वे दोनों घड़े भी खाली हो गए और नित्यक्रम चालू हो गया। मेघ मल्हार-संयुक्त जल-बिन्दु भगवान हाटकेश्वर के मस्तक पर अविरल टपकने लगे।

दस

तानसेन मथुरा के कृष्ण-मंदिर से बाहर निकला और यमुना के किनारे-किनारे वृंदावन की ओर चल दिया। प्राकृतिक सौंदर्य का आनंद लेता हुआ वह धीरे-धीरे आराम से चला जा रहा था। आज उसे काफी खुलापन महसूस हो रहा था। दरबारी ठाठ, राजसी वैभव, मान-सम्मान के बंधन, प्रतिष्ठा की शान, वक्त की पाबंदी, थोड़े समय के ही लिए ही क्यों न हो, सभी कुछ छोड़कर—सभी से मुक्त होकर वह दिल्ली से बाहर निकला था। अब किसी प्रकार के बंधन नहीं थे और न किसी तरह की जल्दबाजी। वह अपने साथ किसी प्रकार की टीम-टाम लेकर नहीं आया था। अपनी रोजमर्रा की दरबारी पोशाक, मखमली कमरपट्टे में लगी रत्नजड़ित कटार आदि सबकुछ राजधानी में ही छोड़कर उसने वैष्णव-भक्तों के सादे वस्त्र पहन लिये थे। पूर्व में सूर्य की लाली दिखाई देने लगी थी। आकाश आषाढ़ के बादलों से छाया हुआ था। पिछली रात थोड़ा पानी भी बरसा था। पगडंडी के दाहिनी ओर की झाड़ियों में चिड़ियों की चहचहाट सुनाई दे रही थी। सामने के मैदान में मोरों के झुंड-के-झुंड दिखाई दे रहे थे। उनकी कर्कश कें-कें वातावरण में गूंज रही थी। कई अपने पंख फैलाकर नाच रहे थे। बड़ा मनमोहक दृश्य था।

मोरों का सामूहिक नृत्य देखकर तानसेन के पांव वहीं ठिठक गए। उस लुभावने दृश्य पर वह मोहित हो गया। मयूरों के फैले हुए पंखों की सरसराहट में उसे सारंगी के स्वर सुनाई देने लगे।

वह रास्ते के किनारे एक पत्थर पर बैठ गया और एकटक उस मयूर-नृत्य को देखने लगा। दो बेढंगे पांवों पर पंखों का बड़ा-सा घेरा बनाकर नाचने की यह सुंदर कला इन्हें किसने सिखाई? और जिन्हें ईश्वर ने ही नृत्य-कला सिखाई हो, उनकी सुंदरता का वर्णन क्या किसी के लिए

संभव है ?

दिल्ली के शाही दरबार में कुशल नर्तकियों का नाच वह देखता रहा था, पर उस नाच और इस नृत्य में कोई समानता नहीं; दोनों में जमीन-आसमान का अंतर था। पंखों से निकलने वाली स्वर-लहरी उसके कानों में गूंजने और उसके संगीत भरे हृदय में अनेक लहरें उठाने लगी। वह झूम उठा और उसके मुंह से अपने-आप संगीत के स्वर और शब्द फूट निकले :

"...नाद ब्रह्म...नाद—मंदिर ..!"

उसका मन-मंदिर ब्रह्मनाद से भर उठा, नेत्र बंद हो गए। सागर में हिलोरें लेती नौका की तरह वह डोलने लगा, गुनगुनाने लगा। थोड़ी देर बाद शब्दों का स्फोट और तब काव्य-पंक्तियों का स्फूर्त सृजन :

गुन समुद्र में तन जहाज
मन सौदागर
ले चलयो सो सुरभि
मन के जोर
सप्त सुर लंगर के बादवान
बांधे तीन ग्राम
बांधे लाय-लाय मोड़ें
बादी की ओर ॥
चार चरन कोठे हीरा-मोती-मानिक
बानिक गुनी जोरे ओर।

इन पंक्तियों को दुहराता-गुनगुनाता वह उठा और आगे की ओर चल दिया।

बात-की-बात में वह साढ़े तीन-चार कोस निकल आया और वृंदावन पहुंच गया। वृंदावन वह पहली बार नहीं आया था। पहले भी कई बार आ चुका था। संगीत-शास्त्र के महान ज्ञाता और अधिकारी विद्वान संगीताचार्य हरिदास से उसने संगीत की शिक्षा प्राप्त की थी। किंतु

अकवर के दरबार में संगीत-सम्राट का पद प्राप्त करने के बाद आज पहली बार वह अपने गुरु के दर्शन के लिए जा रहा था। थोड़ी देर वह वृंदावन की सीमा पर रुका रहा।

कृष्ण का वृंदावन ! जिस भूमि पर कृष्णमय होकर गोप-गोपिकाओं ने रास रचाया था, जहां 'मोहिनी मूरत' की मुरली के स्वर गूंजे थे—वही वृंदावन !

उसे गायों को लेकर पांच-सात ग्वाले दिखाई दिये। वे अपनी गायों को लेकर यमुना किनारे की ओर जा रहे थे। उनमें से एक ने वांसुरी ओठों से लगाई और सुरीली तान छेड़ी।

गाय-ग्वालों का वह समूह तानसेन के आगे से होता हुआ एक ओर चला गया।

तानसेन कुछ देर उनकी ओर देखता रहा। फिर वृंदावन में प्रवेश कर वह कुंजमार्ग से आगे बढ़ा।

ग्वाले की वांसुरी के स्वर अभी तक उसके कानों में गूंज रहे थे। चलते-चलते वह ध्रुपद की रचना करने लगा :

> एरी आज बांसुरी बजाई बन मध्य
> कौन ढंग, कौन रंग फुंकि-फुंकि।
> सुनत स्रवन सुधि रही नहीं तन की,
> भई हौं बावरी,
> वृंदावन दिसि हेरि झुकि-झुकि
> ब्रह्मा वेद पढ़त भूले, सिव समाधि मांहि डोले,
> सुर-नर-मुनि मोहे देवांगना देखैं लुकि-लुकि,
> सप्त स्वर तीन ग्राम इक्कीस मूर्च्छना लै,
> 'तानसेन' प्रभु मुरली बजावत,
> बोलत मोर कोकिला कुहुकि-कुहुकि ।।

सेवाकुंज छोड़कर वह निधिवन की ओर मुड़ गया। यमुना-किनारे स्थित निधिवन बड़ा ही रमणीक स्थान था। दूर-दूर तक फैले इस वन

में अनेक प्रकार के वृक्ष थे, तरह-तरह के फूलों की सुगंध चारों ओर फैल रही थी। कड़ी धूप के बावजूद वहां ठंडी छाया थी और शीतल मंद, सुगंधित हवा बह रही थी।

निधिवन में ही स्वामी हरिदास का विशाल आश्रम और उससे लगा हुआ बिहारीजी का मंदिर था। लोगों का कहना था कि एक बार अखंड कीर्तन के समय स्वामी हरिदास की भक्ति पर प्रसन्न होकर भक्त को दर्शन देने के लिए साक्षात भगवान प्रकट हुए और मूर्ति रूप में वहीं प्रतिष्ठित हो गए। बाद में स्वामी हरिदास ने वहां मंदिर बनवा दिया।

मंदिर के दूसरी ओर कई कुटिया थीं, जिनमें वैष्णव-भक्त तथा स्वामी हरिदास से संगीत सीखने के लिए आनेवाले शिष्य रहा करते थे। आश्रम से लगा हुआ निधिवन के उत्तरी कोने में विशाखा कुंड था।

तानसेन आश्रम में पहुंचा। और भी वैष्णव भक्त आये हुए थे। आषाढ़ लगते ही वैष्णव मंडलियों का आना शुरू हो जाता था। वैष्णव भक्तगण श्रावण के जन्माष्टमी उत्सव में शामिल होने से शायद ही चूकते थे।

तानसेन ने जब निधिवन में प्रवेश किया तो कुछ वैष्णव लोग विशाखा कुंड की ओर जा रहे थे। अपने ही जैसे एक कृष्ण-भक्त को आते देख उन्होंने जोर से कहा, "जय श्रीकृष्ण !"

तानसेन हँसा और उसने भी प्रत्युत्तर में, "जय श्रीकृष्ण!" कहा।

स्वामी हरिदास ने बड़े प्रेम से उसका स्वागत किया, "संगीत-सम्राट तानसेन, आओ !"

गुरु के चरणों में सिर नवाकर तानसेन ने कहा, "स्वामीजी, दिल्ली के बादशाह के दरबार में भले ही संगीत-सम्राट कहा जाऊं, यहां तो आपके चरणों में बैठनेवाला विनम्र सेवक ही हूं।"

स्वामीजी के मुंह से 'तानसेन' शब्द का निकलना था कि आश्रम और पास-पड़ोस के सभी वैष्णवों को पता चल गया कि शाही दरबार का श्रेष्ठ गायक तानसेन आया है।

अकबर के दरबार में जिसे पहले ही दिन दो लाख स्वर्ण-मुद्राएं भेंट की गईं, जिसको संगीत-सम्राट का पद प्रदान किया गया, जिसके गाने की प्रसिद्धि के डंके चारों दिशाओं में बज रहे थे, उस तानसेन को देखने की उत्सुकता सभी को थी। स्वामीजी के शिष्यों और आश्रमवासियों ने जब उसी तानसेन को अपने सामने देखा तो चकित रह गये।

भोजन के बाद तीसरे पहर स्वामीजी ने तानसेन से कहा, "तानसेन, गोकुल के गोविंद, गोसाईं विट्ठलनाथजी यहां पधारे हुए हैं।"

तानसेन प्रसन्न होकर बोला, "अहोभाग्य ! गोसाईंजी के दर्शनों के लिए गोकुल जाने की बड़ी इच्छा थी। मेरे भाग्य से घर बैठे गंगा आ गई।"

स्वामी हरिदासजी ने हँसकर कहा, "और गोस्वामीजी भी तुम्हारा गायन सुनना चाहते हैं। दीपक राग के सर्वश्रेष्ठ गायक के रूप में तुम्हारी प्रसिद्धि उन तक पहुंच चुकी है।"

तानसेन ने विनत होकर कहा, "स्वामीजी का आदेश शिरोधार्य है। सेवक प्रस्तुत है।"

शाम तक सारे वृंदावन में खबर फैल गई कि दिल्लीपति के दरबार का सर्वश्रेष्ठ गायक संगीत-सम्राट तानसेन निधिवन में आया है और आज रात में उसका गायन होगा।

रात की आरती के बाद, मंदिर के सामने के प्रांगण में वैष्णव-भक्त स्वामीजी की शिष्य-मंडली और वृंदावन के संगीत-प्रेमी जमा होने लगे। तानसेन का गाना सुनने के लिए सारा वृंदावन ही उमड़ पड़ा। महिलाएं मंदिर के दाहिनी ओर के आम्रकुंज में थोड़ी आड़ लेकर बैठ गईं। तरुणियों ने अपने सिर की साड़ी आगे खींचकर घूंघट निकाल रखे थे और उनके वे घूंघट चांदनी में डोल रहे थे। घूंघट संभालने के लिए हाथों की लगातार हलचल के कारण कलाई में पड़ी चूड़ियों की खनखनाहट दूर तक सुनाई दे रही थी।

कदंब के पेड़ के नीचे के विशाल चबूतरे पर स्वामी हरिदासजी

और गोसांई विट्ठलनाथजी न आसन ग्रहण किये।

तानसेन उनके सामने बैठा।

आषाढ़ी पूर्णिमा में कुछ ही दिन शेष थे। आकाश काफी साफ हो गया था। लता, गुल्म और वृक्षों में से छनकर हल्की-हल्की चांदनी बरस रही थी। पृष्ठ भाग में कृष्णा कालिंदी का अगाध जल मंद गति से प्रवाहित हो रहा था। शीतल, मंद, सुगंधित बयार बह रही थी।

सामने मंदिर में बिहारीजी की मुस्कराती सांवली मूरत खड़ी थी।

दरबार भर गया। तानसेन के लिए रोज के शाही दरबार के मुकाबले यह निराला ही दरबार था। उसका मन हर्षोल्लास से उमंगित हो रहा था।

उसने सामने देखा—प्रेमभक्ति के भोक्ता कृष्णमुरारी बंकिम छटा में खड़े थे। उनके सांवले मोहक मुख पर मंद मुस्कान खिली हुई थी। स्वामी हरिदासजी के चेहरे पर कौतुक था। गोसाइं विट्ठलनाथजी परीक्षक की गंभीर मुद्रा में बैठे थे। रसिक श्रोताओं की आंखें एकटक उसी को देख रही थीं।

गोसाइं विट्ठलनाथजी ने कहा, "मियां तानसेन, हमने आपका नाम बहुत सुना है; अब अपनी कला को प्रत्यक्ष कीजिए।"

तानसेन ने अभिवादन में सिर झुका दिया; लेकिन गोसाइंजी के स्वर का तीखापन उससे छिपा न रह सका।

तानसेन ने शुरू किया :

कृष्ण केशव कमलनयन
केसीदलन कान्हर करतार,
सुरन के भरन करुनानिधि
कुंजबिहारी कामकदन किसोर।
जोगी ध्यानी अरु जनार्दन
मुकंद माधो रंगनाथ,
[illegible] के सरन छोर।

पारब्रह्म परमेसुर पुरुषोत्तम
उबारन,
महाबली जोधा नहीं और।
'तानसेन' प्रभुभक्त इच्छा करी।
अनंत अकोर जन
चितवत कोर॥

तानसेन के गायन के साथ सुननेवालों के कानों में अमृत घुलता गया। निधिवन का समूचा वातावरण रसविभोर हो गया—पेड़ डोलने लगे, पत्ते हिलने लगे, कलियां खिलने लगीं, फूल नाचने लगे, सुगंधित पवन अठखेलियां करने लगा।

तानसेन का गाना समाप्त हुआ। वृंदावनवासियों ने जीवन में पहली वार ध्रुपद शैली का गायन सुना था; कानों को बहुत मधुर लगा। जो संगीत की बारीकियों को नहीं जानते उन्हें भी स्वर-लालित्य और शब्द-योजना की अनुपम मिठास की अनुभूति हुई, अपार आनंद मिला। गीत की भाव-सुगंध ने उनके रोम-रोम को पुलकित कर दिया। अपनी जानी-पहचानी ब्रजभाषा की शब्दमाधुरी ने उन्हें आप्लावित कर दिया। राग-रागिनियों की जानकारी न होते हुए भी उस मधुर गायन के मर्म और रस को उनके अन्तःकरण ने समझा और ग्रहण किया। प्रतिदिन बांसुरी के स्वरों से निखरा उनका कोमल संवेदनशील मन आनंद से परिपूर्ण हो गया।

यहां-वहां से प्रशंसा के शब्द सुनाई पड़ने लगे :

"वाह वा! वाह वा! क्या आवाज है।"

"इतना मधुर स्वर कभी सुना नहीं!"

"तानसेन—तान का सेन, यानी सर्वश्रेष्ठ, वाह!"

"मानो कन्हैया की बांसुरी ही तानसेन के गले से बज रही हो!"

लेकिन गोसाईंजी की गंभीरता में थोड़ी-सी भी कमी नहीं हुई थी। उन्होंने अपने निकट बैठे हुए स्वामी हरिदासजी से कहा, "दिल्लीपति के

गायक का गान हमने सुना; उनका यथोचित सम्मान करना हमारा कर्तव्य है।"

उन्होंने अपने पीछे खड़े सेवक को कुछ आज्ञा दी। सेवक तुरंत बाहर गया और मुद्राओं से भरी एक थाली ले आया। गोसाईंजी ने कहा, "मियां तानसेन, यह लीजिए अपने गायन का पुरस्कार!"

तानसेन ने सिर झुकाकर विनम्रतापूर्वक कहा, "गोसाईंजी, क्षमा करें, यह पुरस्कार मैं ले नहीं सकूंगा।"

"क्यों?" गोसाईंजी की भौहों में वल पड़ गए और स्वर थोड़ा पैना हो गया।

"क्षमा करें, मेरे गुरुजी की मर्यादा का अतिक्रमण होगा। मैं यहां गुरुदेव के दर्शनार्थ आया हूं। शिष्य-सेवक रूप में जो सेवा बन पड़ी थी गुरुचरणों में निवेदित की, उसका क्या पुरस्कार!"

स्वामी हरिदासजी ने हँसकर कहा, "तानसेन, बिहारीलालजी का प्रसाद समझकर स्वीकार कर लो।"

"जैसी स्वामीजी की आज्ञा।" कहते हुए तानसेन ने रेशमी कपड़े से ढकी वह थाली हाथ में ले ली।

रात्रि का पिछला पहर। लोग संतुष्ट मन धीरे-धीरे निधिबन से बाहर जाने लगे। स्वामीजी के शिष्य-गण अपने-अपने आवासों में चले गए। गोसाईंजी भी उठे और सेवकों के साथ अपनी बैठक की ओर चल दिए।

निधिवन के प्रशांत वातावरण में कदंब के नीचेवाले चबूतरे पर अब स्वामी हरिदासजी और तानसेन गुरु और शिष्य ही रह गए थे।

तानसेन थाली लेकर विहारीजी के मंदिर में गया। मूर्ति के सामने थाली रखकर ऊपर का रेशमी कपड़ा हटाते हुए उसने कहा, "स्वामीजी, यह विदायगी मैं बिहारीलालजी को अर्पण करता हूं। आप इसका उपयोग किसी जरूरतमंद सेवक के लिए कीजिएगा।"

लेकिन जैसे ही उसका ध्यान थाली की ओर गया, वह स्तंभित रह

गया। ऊपर तक भरे हुए चांदी के सिक्कों के बीचोंबीच एक कौड़ी रखी थी। समझ में यह न आया कि यह गलती है अथवा जानबूझ कर किया गया है। उसनें कौड़ी की ओर इशारा करते हुए स्वामी हरिदासजी से कहा, "स्वामीजी, यह क्या हैं ?"

हरिदासजी ने हँसकर कहा, "यह अहंकार है बेटा !"

अपमान के डंक से तानसेन तिलमिला उठा। तीव्र स्वर में बोला, "मेरे गायन की कीमत अगर कौड़ी बराबर है तो यह पुरस्कार किस लिए ?"

"अकबरी दरबार के सर्वश्रेष्ठ गायक को सम्मानित करनें के लिए है यह पुरस्कार।"

तानसेन हतप्रभ हो गया। बाहर आकर वापस चबूतरे पर बैठ गया। उसके गाने की आजतक किसीने ऐसी कीमत नहीं आंकी थी। आकुल मन और क्षोभ भरे स्वर में बोला, "स्वामीजी, मैं आपका शिष्य हूं। यदि आपके शिष्य की यही कीमत है तो धिक्कार है मेरी संगीत-कला को ! उसे समाप्त कर देना ही अच्छा है।"

स्वामी हरिदासजी ने उसके कंधे को थपथपाते हुए कहा, "शांत हो जाओ, तानसेन ! कौड़ी देनें से न कला की कीमत कम होती है और न थाली भर स्वर्ण-मुद्रा देंने से बढ़ती है। कला अथाह समुद्र की तरह है, सागर की गहराई को भला कौन और कैसे नाप सकता है ? संगीत सर्व-श्रेष्ठ कला है, इसका जन्म प्रत्यक्ष सामवेद से हुआ है, यह अनमोल और अनुपमेय है।"

"फिर इस कौड़ी का क्या मतलब ?" तानसेन ने पूछा।

स्वामीजी हँसे और बोले, "अभी बताया न कि यह अहंकार है !" मगर साथ ही स्वामीजी ने अनुभव किया कि यह चर्चा अगर इसी तरह चलती रही तो इसका कभी अंत नहीं होगा, इसलिए बोले, "तानसेन, संसार में समय की धारा के अनुसार संगीत की शैली भी बदलती रहेगी। सामनें यमुना को देखा। कई-कई साल पहले, यहां उसका किनारा था। आज

जहां हम दोनों बैठे हैं यहीं तेरे पिता मकरंद पांडे और मैं बैठे थे, तब की बात है।"

बातचीत का रुख बदला तो तानसेन विवाद का विषय और अपमान का दंश, सभी कुछ भूल गया और कहने लगा, "जी हां, अपने बचपन में पिताजी के मुंह से आपके बारे में बहुत-कुछ सुना था। उनकी अंतिम इच्छा थी कि ग्वालियर में संगीत की प्राथमिक शिक्षा लेकर आगे अध्ययन के लिए आपके पास रहूं, और पिताजी अंतिम समय 'हाटकनाथ की जय' करते हुए सदा के लिए चले गए।"

स्वामीजी ने पूछा, "तूने कभी कुलदेवता के दर्शन किये हैं?"

"नहीं स्वामीजी, एक बार जाने की इच्छा है।"

"अभी ही चला जा।"

स्वामी हरिदासजी ने उसे हाटकेश्वर का मार्ग अच्छी तरह समझा दिया।

दूसरे दिन तानसेन का घोड़ा हाटकेश्वर की राह पर था।

ग्यारह

सावन के दिन एक-एक कर बीतने लगे। शुक्ल-पक्ष समाप्त हो गया। अभिषेक-पात्र में से हाटकेश्वर पर लगातार जल टपकता रहा, किंतु वर्षा का कोई चिह्न दिखाई नहीं दिया। मेघ-मल्हार के स्वर से संयुक्त पानी लाने का ताना-रिरी का प्रयास जारी था। पर वे स्वर अभी मेघराज तक पहुंच नहीं पाये थे।

अकाल की छाया दिनों-दिन भीषण होती गई। जीवन बचाने के लिए हर संभव प्रयत्न किया जा रहा था, फिर भी अकाल ने कई प्राणों की बलि ले ली।

किसी हरे-भरे लुभावने जंगल में दावानल धधकने पर जैसी भया-

नकता दिखाई देती है, वही हालत बड़नगर की हो गई थी। शर्मिष्ठा तालाब की सूखी तली, पारा उड़े दर्पण-जैसी अशुभ और बीभत्स लगती थी।

नगर दुर्दशाग्रस्त था। दैनिक जीवन किसी तरह धक्के खाता चल रहा था। प्रकृति का प्रकोप चरम सीमा पर पहुंच चुका था।

एक शाम को मृत्युंजय अपने साथियों सहित दिल्ली दरवाजे के बाहर खड़ा था। सूर्य पश्चिम में डूब रहा था और पूर्व की क्षितिज-रेखा से पूर्णिमा का पूरा चंद्रमा ऊपर आ रहा था। इतने में उसके एक साथी की नजर उत्तर वाले रास्ते पर गई। एक घुड़सवार उसी ओर से घोड़ा दौड़ाता चला आ रहा था। यह देख साथी चिल्लाया, "जयराज, उधर देखो, कोई लुटेरा मालूम पड़ता है।"

मृत्युंजय ने आंखों पर हाथ की ओट करके ध्यान से देखा और जवाब दिया, "नहीं, वह लुटेरा नहीं है?"

"क्यों नहीं है?"

मृत्युंजय ने पुनः उस घुड़सवार की ओर देखते हुए कहा, "अरे, लुटेरा कभी अकेला नहीं आता। उनका पूरा गिरोह होता है। उस दिन इसी रास्ते से जाती हुई लुटेरों की टोली को क्या हम लोगों ने नहीं देखा था?"

"हां भाई, पूरा गिरोह था उनका और सभी के पास हथियार थे।"

मृत्युंजय ने कहा, "और वे चेहरों पर नकाब भी चढ़ाये हुए थे।"

"फिर यह आनेवाला कौन हो सकता है?"

"आने पर ही पता चलेगा, आ जाने दो।"

घोड़े पर सवार तानसेन करीब आ गया। वह बहुत दूर से आ रहा था, क्योंकि उसके कपड़े धूल से भरे हुए थे। बढ़ी हुई दाढ़ी और रास्ते की धूल-मिट्टी के कारण उसका चेहरा काला पड़ गया था।

बच्चों को देखकर तानसेन ने घोड़े की बाग खींची।

मृत्युंजय ने सामने आकर पूछा, "तुम कौन हो?"

प्रश्नकर्त्ता का स्वर इतना दबंग और रौबीला था कि तानसेन देखता ही रह गया। रूप ऐसा राजसी कि देखनेवाले की नजर बंधी ही रह जाय। मृत्युंजय के शरीर पर बढ़िया मखमली अंगरखा था और उसने रेशमी पीतांबर पहन रखा था। उसके घने काले बाल धूल-धूसरित थे। अपने साथियों के बीच वह जंगली फूलों में कश्मीरी गुलाब की तरह अलग ही दिखाई दे रहा था। तानसेन समझ गया कि यह सामान्य घर का लड़का नहीं है। उसने हँसकर कहा, "मैं एक यात्री हूं।"

"कहां से आ रहे हो ?"

"बहुत दूर वृन्दावन से।"

एक लड़के ने पूछा, "तुम हिंदू हो या यवन ?"

'वेशभूषा से क्या लगता हूं ?"

तानसेन इस समय यात्री की वेशभूषा में था। मृत्युंजय ने कहा, "वेशभूषा से आदमी को मत पहचानो। वेशभूषा और सज्जा से धोखा भी हो सकता है।"

तानसेन चकित होकर बालक की ओर देखने लगा। वह कुछ बोलता उसके पहले ही मृत्युंजय ने कहा, "यात्री, नीचे उतरो।"

तानसेन मुस्कराता हुआ नीचे उतर पड़ा। मृत्युंजय के निकट जाकर उसने कहा, "क्यों भाई, यह तुमसे किसने कहा कि वेशभूषा से आदमी को मत परखो-पहचानो।"

"हमारे दादाजी ने। पर तुम हो कौन ? सही बताओ, हिंदू हो या यवन ? यदि गलत बताया तो हम तुमको जाने नहीं देंगे, पकड़ लेंगे।"

तानसेन आश्चर्यमिश्रित प्रशंसा से हँसा और बोला, "बेटा, मैं हिंदू हूं।"

मृत्युंजय ने ध्यान से उसकी ओर देखकर कहा, "तुम्हारे कान छिदे हुए हैं ! हिंदू ही लगते हो। नाम क्या है ?"

"त्रिलोचन !"

"त्रिलोचन तो शिव का नाम है। तुम शैव हो क्या ?"

"अं....!...शैव ! हां, हां, मैं शैव हूं।"

"तब तो तुम्हें शिव-स्तोत्र याद होगा।"

"शिव-स्तोत्र !" यात्री ने कहा, "नहीं आता।"

"अच्छा तो शिवकवच ही सुनाओ ?"

छोटा-सा बालक कितनी कठोर परीक्षा ले रहा था। खासी मुसीबत में डाल दिया था उसे। किसी तरह अपना पिंड छुड़ाने के लिए तानसेन ने कहा, "तुम शैव हो क्या ?"

" हां हूं।"

"तब तो तुम्हें शिवकवच आता होगा ?"

"रोज दादाजी के सामने बोलना पड़ता है। तुम्हें सुनाऊं ?"

"हां, सुनाओ। देखूं, ठीक-ठीक पाठ आता है या नहीं।"

सुनाने के जोश में परीक्षक स्वयं ही परीक्षा देने लग गया। पूछा, "पूरा पाठ सुनाऊं ?"

"पूरा शिवस्तोत्र क्या है और कितना लंबा है, इसकी कोई कल्पना तानसेन को नहीं थी। फिर भी परीक्षक की भूमिका निभाने के लिए कहा, "पूरा नहीं, थोड़ा-सा सुनाओ।"

"तो सिर्फ मंत्रवाला भाग सुनाता हूं।" कहकर उसने प्रारंभ किया :

"ओम् नमो भगवते सदाशिवाय सकल तत्वात्मकाय
सर्वमंत्र स्वरूपाय सर्वयंत्राधिष्ठिताय......"

और सपाटे से पचास-पचपन पंक्तियां बोलकर 'त्र्यंबक सदाशिव नमस्ते नमस्ते' पर समाप्त किया।

इस संस्कृत मंत्र का पूरा मतलब तो तानसेन की समझ में नहीं आया, किंतु आठ वर्ष के छोटे-से बालक का शुद्ध उच्चारण और मंत्र-पाठ की मधुर शैली देखकर वह चकित हो गया।

"ओम् नमः शिवाय।" कहकर जब मृत्युंजय रुका तो तानसेन ने कहा, "शाबाश बेटा ! बिल्कुल शुद्ध पढ़ा तुमने। अब यह बताओ कि बड़नगर यहां से कितनी दूर है ?"

"बड़नगर ? कौन-सा बड़नगर ?"

"जहां हाटकेश का मंदिर है, वही बड़नगर।"

सुनकर सभी बालक खिलखिला उठे। मृत्युंजय ने आंखें तरेरकर उन्हें डांटते हुए कहा, "चुप रहो सब।" फिर गंभीर चेहरा बनाकर तानसेन से बोला, "वह बड़नगर तो यहां से वहुत दूर है।"

"कौन-सी दिशा में है ?"

"यह नहीं मालूम। तुम अंदर आकर ड्योढ़ी पर चंदमल्ल दादा से पूछो। वह बतायंगे।" फिर अपने साथियों की ओर देखकर बोला, "चलो रे, घर चलें। अंधेरा हो गया है।"

वह वालसेना बानरसेना की तरह कूदती-फांदती गायब हो गई।

घोड़े की लगाम थामे तानसेन दिल्ली दरवाजे के अंदर गया। ड्योढ़ी पर बूढ़ा चंदमल्ल वैठा था। अपरिचित घुड़सवार को उसने रुक जाने के लिए कहा।

तानसेन बोला, "बापा, मैं एक यात्री हूं। वहुत दूर, वृंदावन से यहां आया हूं। पहली बार ही इस प्रदेश में आ रहा हूं।"

"दिन डूब गया है। रात-वासा चाहिए तो सामनेवाले कोने में पड़ रहो। सुवह होते ही अपने रास्ते चले जाना।"

उसने घोड़े को एक ओर बांध दिया और चंदमल्ल की वगल में पसारी डालकर वैठ गया।

चंदमल्ल दरवाजा वंद करने के लिए नीचे चला गया।

बाहर खूव चांदनी फैल रही थी। तानसेन ने वैठे-वैठे ड्योढ़ी पर नजर डाली। ड्योढ़ी के दोनों पक्खों में सेर-सेर तेल के दो दीपक रखे थे, जिनमें वड़ी-वड़ी वत्तियां थीं, किंतु उन्हें अभी जलाया नहीं गया था। चांदनी छिटकी होने के कारण जरूरत नहीं पड़ी थी। दोनों ओर की कोठरियों में दीवार से लगे कमर तक की ऊंचाई के चार-पांच मिट्टी के बर्तन थे। वे कोरे किंतु धूल से सने हुए थे। उन बर्तनों पर की बूटा-कारी चांदनी में साफ दिखाई देती थी।

ड्योढ़ी की दीवार पर ढाल, तलवार, भाले आदि लटके हुए थे। विशाल दरवाजा, मजबूत ड्योढ़ी और दीवारों पर शस्त्रास्त्र आदि देखकर तानसेन को लगा कि गांव किसी राजा का होना चाहिए। ड्योढ़ी में से झांककर उसने गांव की ओर देखा। एक लंबे रास्ते के दोनों ओर दूर तक बड़ी-बड़ी हवेलियों की पांतें चली गई थीं। रात के घिरते अंधेरे में बस्ती का पूरा नक्शा साफ दिखाई नहीं दिया। केवल गांव के किसी मंदिर से उठते सायंकालीन आरती के अस्पष्ट स्वर सुनाई देते रहे।

यहां आने से पूर्व अपने गुरु वृंदावन के स्वामी हरिदासजी के मुंह से उसने सुना था कि गुजरात देश धन-धान्य से संपन्न और अत्यन्त सुंदर है। लेकिन रास्ते में उसे सर्वत्र सूखा-ही-सूखा दिखाई दिया। अकाल की आग में झुलसते इस प्रदेश में हाटकेश्वर न जाने कितनी दूर होगा?

चंदमल्ल दरवाजा बंद करके आया, अपनी गुदड़ी फैलाई और बैठ गया।

तानसेन ने कहा, "बापा, पीने के लिए थोड़ा-सा पानी मिलेगा?"

चंदमल्ल ने दीर्घ निःश्वास छोड़कर उत्तर दिया, "भई, एक यही चीज मत मांगो।"

"सच है। यहां आते समय रास्ते में देखा कि पानी अमृत से भी दुर्लभ हो गया है।"

चंदमल्ल ने अपने बिछावन की दूसरी ओर रखी गगरी को आगे खींचा और उसमें से एक प्याला पानी भरकर तानसेन को देते हुए कहा, "लो, गला थोड़ा तर कर लो।"

तानसेन ने प्याला ले लिया और आधा पानी पीकर शेष आधा यों ही रख दिया।

यह देखकर चंदमल्ल बोला, "भाई, ऐसे दिन कभी नहीं आये थे। सामने ये जो बड़े-बड़े मटके देख रहे हो, बारहों महीने पानी से भरे रहते थे; पर इस अकाल ने त्राहि-त्राहि मचा दी है। हमारे मंडलेश्वर सोमनाथ ने वर्षा के लिए अनुष्ठान शुरू कर रखा है, पर देवता अभी

तक नहीं पसीजे। भैया, बड़े गलत समय पर तुम यात्रा के लिए निकले हो। हां, तुम्हारा नाम क्या है ?"

"त्रिलोचन।"

"ब्राह्मण हो क्या ?"

"जी हां !"

"कहां की यात्रा पर जा रहे हो ? दर्भावती तो नहीं ? वहां अकाल नहीं है।"

"बापा, हाटकेश यहां से कितनी दूर है ? मुझे वहीं जाना है।"

"क्या हाटकेश के दर्शन के लिए तुम यहां आये हो ?"

"जी, बहुत दूर से आया हूं। वह स्थान कितनी ही दूर क्यों न हो, हाटकेश के दर्शन करके ही लौटूंगा।"

"तब तो यों समझो, त्रिलोचनभाई, कि तुम्हें पानी की जगह अमृत मिल गया।"

"क्या मतलब ?"

"यही कि तुम हाटकेश के द्वार पर बैठे हो।"

तानसेन मारे उत्तेजना के उठकर खड़ा हो गया। "बोला, हाटकनाथ का स्थान क्या यही है ? यही बड़नगर है ?"

"हां, यही बड़नगर है। पर इसे बड़नगर कहना सही नहीं। अकाल ने गांव का चेहरा बिल्कुल बिगाड़कर रख दिया है।"

तानसेन अपने को रोक न सका। बोला, "बापा, जाऊं, हाटकेश के दर्शन कर आऊं।"

"हां, आओ। दाहिने हाथ सीधे चले जाना। जहां रास्ता खत्म होता है, वहीं बाएं हाथ पर हाटकेश का मंदिर है।"

तानसेन फौरन चल पड़ा।

बस्ती में लोगों के रहते हुए भी गांव उजाड़ एवं जनहीन लग रहा था।

रास्ता चलते हुए उसने नीचे की ओर देखा। सूखा हुआ शर्मिष्ठा

तालाव और उसके उजड़े हुए निर्जन घाट चांदनी में साफ दिखाई दे रहे थे। उसने सोचा, स्वामी हरिदास जिस शर्मिष्ठा तालाब के बारे में बताया करते हैं, वह यही होना चाहिए।

वह आगे बढ़ा। दूर से ही हाटकेश्वर का मंदिर दिखाई देने लगा। अद्भुत अलौकिक शिल्पवाला वह गगनचुंबी मंदिर उसे ऐसा लगा मानो हिमाच्छादित शैल-शिखर पर भगवान भूत भावन ध्यानस्थ विराजमान हों।

मंदिर के विशाल प्रांगण में लोग जगह-जगह बैठे थे। कोई गप्पे हांक रहा था। कोई तालियां बजाकर भजन गा रहा था। कुछ हाथ-पांव समेटे चुपचाप बैठे थे।

उसने धीरे से अंदर प्रवेश किया। आरती अभी समाप्त हुई ही थी। मंदिर के भीतरी भाग, सभामंडप, में एक भी दीपक नहीं था, पर दोनों ओर के प्रवेश-द्वारों से चांदनी भीतर आ रही थी। उस हिस्से में बड़ी शांति थी। अंदर गर्भ-गृह में विशालकाय शिवलिंग प्रस्थापित था। शिवलिंग के ठीक ऊपर चांदी का अभिषेक-पात्र लटक रहा था। उस पात्र में से एक-एक बूंद पानी अविरल शिवलिंग पर टपक रहा था। शिवलिंग के परिपार्श्व में ध्यानमग्न बैठा एक ब्राह्मण धीरे-धीरे वेद-मंत्रों का उच्चारण कर रहा था। एक ओर नंदादीप शनैः-शनै जलकर स्निग्ध ज्योति का विकीरण कर रहा था। उसका प्रकाश इतना मंद और फीका था कि पूरा शिवलिंग स्पष्ट दिखाई भी नहीं देता था।

वह गर्भगृह के कटहरे के पास खड़ा हो गया। उस विशाल उत्तुंग शिवलिंग पर अपनी दृष्टि स्थिर कर वह सोचने लगा—यही हाटकेश हैं, अपने कुल देवता!

शिवलिंग की ओर देखते-देखते उसकी अंतर्दृष्टि में वेहट के छोटे-से शिवमंदिर का दृश्य उभर आया। गांव के बाहर घनी झाड़ियों के एकांत में पत्थर का छोटा-सा चबूतरा, उसपर खड़ा किया गया छोटा-सा देवालय और अंदर छोटा-सा शिवलिंग। उसे याद आया कि उसके

दादाजी ने वहीं अपने कुलदेवता की स्थापना की थी; वहींपर उसके पिता ने बचपन में उसे संगीत का पहला पाठ पढ़ाया था।

उसने सुन रखा था कि उसके शिवभक्त पिता को साक्षात् शंकर ने स्वप्न में आकर वरदान देते हुए कहा था, "तेरा पुत्र अपने समय का सर्वश्रेष्ठ संगीतज्ञ होगा।" इसलिए पिता ने उसे बचपन से ही संगीत की शिक्षा देना आरंभ कर दिया था। आज दिल्लीपति के दरबार में उसे संगीत-सम्राट का जो पदगौरव प्राप्त हुआ है, उसका कारण है उसके पिता का परिश्रम और शंकर का वरदान।

बहुत देर तक वहीं खड़े रहकर वह हाटकेश की प्रार्थना करता रहा और फिर बाहर निकल आया। जिस रास्ते से आया था, उसी रास्ते लौट चला।

चंद्रमा आकाश के मध्य में चढ़ आया था। शर्मिष्ठा के किनारे खड़े होकर उसने सूने घाट की ओर देखा और फिर सीढ़ियों से नीचे उतर गया। तालाब यद्यपि बहुत सूख गया था, फिर भी उसके मूल सौंदर्य को क्षति नहीं पहुंची थी। उसने अपनी भूख और प्यास दोनों ही शर्मिष्ठा के पानी से शांत की। फिर वह ड्योढ़ी पर लौटने के बजाय सामने पड़े तख्तों में से एक पर लेट गया और थोड़ी ही देर में उसे गहरी नींद आ गई।

सवेरे उसकी नींद खुली तो वह आश्चर्य-चकित एकदम उठकर बैठ गया। देर तक तो यही समझ में नहीं आया कि वह नींद में है या जाग गया है। सुबह की हल्की, धुंधली रोशनी में उसे अपने सामने घाट पर अनुपम दृश्य दिखाई दिया।

घाट पर एक-दो नहीं, दस-बारह युवतियां पानी में उतर कर अपने-अपने घड़े भर रही थीं। देर तक वह निश्चय नहीं कर पाया कि वे मानव-कन्याएं हैं या जलदेवियां या अप्सराएं!

उन युवतियों ने अपने-अपने घड़े भरे, सिर के पल्लू ठीक करते हुए सिरों पर रख और गीत गाती हुई सीढ़ियां चढ़कर चली गईं। तब उसे

खयाल आया कि रात में चंदमल्ल ने बताया था कि वर्षा के लिए हाटकेश्वर का अखंड अभिषेक किया जा रहा है। अभिषेक-पात्र को भरने के लिए ही युवतियां घड़ों में पानी लेकर जा रही हैं।

घाट फिर सूना हो गया, सर्वत्र शांति छा गई। पूर्व दिशा में लाली फैलने लगी। तानसेन ने पुनः अपनी आंखें बंद कर लीं।

तभी उसने किसी के खंखारने की आवाज सुनी और आंखें खोल दीं। सफेद दाढ़ीवाला एक लंब-तड़ंग पहरेदार हाथ में कनौतिया लाठी लिये घाट की ओर आ रहा था। उसके ठीक पीछे कमर पर घड़ा रखे २०-२२ वर्ष की दो युवतियां चल रही थीं। उनकी वेष-भूषा और पहरेदार के आदर-भाव से लगता था कि किसी बड़े घर की बहुएं या बेटियां होनी चाहिए।

युवतियां घाट पर अधिक दूर न जाकर वहीं स सीढ़ियां उतरने लगीं, जहां तानसेन बैठा था।

नीचे उतरकर दोनों ने अपने घड़े पानी में डुबोये। डूबते हुए घड़ों में पानी भरने से डुब-डुब आवाज होने लगी। प्रातःकाल के शांत समय में वह आवाज दूर तक गूंज गई।

'डुब-डुब' की आवाज कान में पड़ते ही तानसेन सतर्क होकर बैठ गया और कान लगाकर सुनने लगा। उस आवाज के साथ उसे युवतियों की बातचीत भी सुनाई दी।

वह आवाज मात्र पानी की 'डुब-डुब' नहीं थी। उस 'डुब-डुब' में से मेघ मल्हार के स्वर निकल रहे थे। दो-एक स्वर ठीक निकलते और बाद के बेसुरे हो जाते।

युवतियां बार-बार घड़ों को खाली कर पुनः भरतीं और फिर कुछ स्वर चूक जाते।

तानसेन आश्चर्यचकित देखता और कान लगाये सुनता रहा। ओह, कैसा अचरज ! पानी में से संगीत के स्वर ! किसी वाद्य-यंत्र से निकल रहे हों, वैसे स्पष्ट और मधुर !

युवतियों की बातचीत भी उसके कानों में पड़ी।

"तानाबेन, आज ऐसा क्यों हो रहा है? रोज तो बिना एक भी स्वर गड़बड़ाये घड़ा भर जाता है, आज बार-बार स्वर चूक रहा है।"

"रिरी, दिनोंदिन पानी कम हो रहा है, इसलिए कम-ज्यादा पानी अंदर जाने के कारण स्वर गड़बड़ा जाते हैं। घड़ा खाली कर, फिर भरेंगे।"

रिरी ने घड़ा खाली किया और दोनों ने पुनः घड़े डुबोये।

'डुब-डुब' 'डुब-डुब'—मेघ मल्हार के स्वर निकलने लगे; और एक स्वर बेसुरा हो गया।

ताना ने कहा, "रिरी, ओह, एकदम आखिरी स्वर गलत हो गया।"

रिरी तंग आ गई थी। बोली, "तानाबेन, ऐसा कबतक करते रहेंगे?"

ताना ने शांतिपूर्वक जवाब दिया, "जबतक सभी स्वर ठीक से नहीं निकलते। रिराबेन, कल अंतिम दिन है। इतने से के लिए प्रयत्न छोड़ना ठीक नहीं।"

"लेकिन स्वर जो नहीं जम रहे। पानी कितना कम हो गया है।"

"अंजली-भर पानी में भी सारे स्वर सही निकालने तक हमें प्रयत्न करना होगा। तपस्या का फल पाने के लिए पूरी तपस्या करनी ही होगी।"

"पर तानाबेन..."

"तू थक गई हो तो बैठ जा। मैं दोनों घड़े भर लूंगी।"

उसने अपना घड़ा डुबोया। रिरी ने भी हिम्मत नहीं हारी। पुनः कोशिश करने लगी।

तानसेन पलक झपकाये बिना उनके प्रयत्न को देखता रहा।

सूर्योदय हो गया था। सूर्य के प्रकाश में दोनों बहनें अब साफ दिखाई दे रही थीं। आस-पास किसी के न होने से उनके सिर के पल्लू कंधों पर खिसक आये थे। दोनों की अनुपम सुंदरता ने तानसेन को चकित

कर दिया। उसे जानने की उत्सुकता हुई, संगीत के असामान्य ज्ञानवाली ये दोनों दिव्य सुंदरियां कौन हैं? जिस गांव में ऐसी देवियां हों, वहां अकाल का पड़ना कितने आश्चर्य की बात है!

नाखून के अग्र भाग की टक्कर से सितार के तारों की हल्की छेड़-छाड़ की तरह ताना एकाग्र-चित्त होकर, अपने नाजुक हाथों से घड़े के मुंह को एक विशेष कोण से पानी में हल्के-हल्के डुबोती गई। 'डुब-डुब' के साथ मेघ मल्हार का एक-एक स्वर लगता गया, कोई स्वर वेसुरा नहीं हुआ, अंतिम स्वर भी लग गया।

रिरी खुशी से भर कर चिल्ला उठी, "वड़ीवेन, वड़ीवेन, सभी स्वर ठीक-ठीक लग गये, एक भी वेसुरा नहीं हुआ। अब तो हाटकेश्वर अवश्य प्रसन्न होंगे, अव जरूर वर्षा होगी।"

बहन के उतावलेपन पर ताना को हँसी आ गई। उसका घड़ा अपने हाथ में लेकर भरने के लिए पानी में उतरते हुए बोली, "रिरी, अभी व्रत का अंतिम दिन शेष है। कल आज से भी कम पानी रहेगा और हमें आज से कहीं अधिक परिश्रम करना होगा।"

"करेंगे, वड़ीवेन, खूब परिश्रम करेंगे। मुझे धैर्य नहीं रहता, पर तुम मन लगाकर कितनी शांति से जुटी रहती हो।"

ताना हँस दी, "वेन, तपस्या के बिना वरदान नहीं मिलता। सिद्धि पाने के लिए कठोर साधना करनी पड़ती है। कल की साधना बाकी है। उसके वाद जो भी हाटकनाथ को स्वीकार हो।"

ताना ने दोनों घड़े भर लिये। पहरेदार जो दूर खड़ा था, घाट की सीढ़ियां उतरकर नीचे आया। उसके हाथ में मणि-मोतियों से गुंथी हुई दो इंगुरियां थीं। उसने आदरपूर्वक दोनों इंगुरियां नीचे रख दीं। दोनों बहनों ने इंगुरियां सिर पर जमायीं और उन पर घड़े रख लिये। फिर वे घाट की सीढ़ियां चढ़कर पहरेदार के पीछे-पीछे चली गईं।

बारह

थोड़ी देर बाद जब आरती के घंटे-घड़ियाल बजने लगे तो तानसेन अपनी जगह से उठकर हाटकनाथ के मंदिर में चला गया। वहां उसने पूछताछ कर पता लगा लिया कि वे दोनों बहनें कौन हैं। उसके बाद वह बंसीकाका के वृन्दावन की ओर चल दिया।

मंदिर में बंसीधर की मूर्ति देखकर उसे लगा कि वास्तव में वृंदावन यहां साकार हो उठा है।

वह मंदिर में गया तो आरती समाप्त हुई ही थी। सामने का सभा-भवन लगभग खाली हो गया था। दो-चार भक्त खड़े-खड़े बंसीकाका से बातचीत कर रहे थे।

वैष्णव-यात्री को आया देख बंसीकाका ने प्रथा के अनुसार कहा, "जय श्रीकृष्ण !"

तानसेन ने प्रत्युत्तर दिया, "जय श्रीकृष्ण !" उसने भगवान कृष्ण की मूर्ति के सामने साष्टांग प्रणाम किया और वहीं बैठ गया।

इस बीच बंसीकाका से बातचीत करनेवाले भक्त जा चुके थे।

अब बंसीकाका तानसेन की ओर मुड़े। कृष्ण की मूर्ति के सामने भक्ति-भाव से साष्टांग प्रणाम करनेवाला यात्री शैव नहीं हो सकता, वैष्णव ही होना चाहिए। पर वह उन्हें अपना परिचित नहीं लगा। हर वर्ष यहां दूर-दूर से यात्री आते थे, पर इस यात्री को उन्होंने पहले कभी देखा नहीं था। इस प्रौढ़ यात्री के चेहरे पर विद्वत्ता का आलोक था। वह पदयात्रा करनेवाली वैष्णव-मंडलियों से संबद्ध नहीं लगता था। जरूर किसी ऊंचे, संपन्न और सुखी घराने का होना चाहिए।

बंसीकाका को याद आया कि सुबह चंदमल्ल ने आकर बताया था कि कल सायं एक यात्री आया है और शर्मिष्ठा के घाट पर ध्यान लगा-

कर बैठा है।

उन्होंने पूछा, "भक्तराज, आप कहां से पधारे हैं ?"

"बहुत दूर, मथुरा-वृन्दावन से आया हूं।"

"आपका शुभ नाम ?"

तानसेन क्षण-भर के लिये गड़बड़ा गया। बंसीधर की मूर्ति की ओर देखकर उसने सोचा, यहां असली नाम ही प्रकट करना चाहिए ; लोक में ख्यात नाम प्रकट करना ठीक नहीं। कुछ रुककर उसने कहा, "त्रिलोचन मकरंद पण्ड्या।"

"पण्ड्या ? तो आप नागर ब्राह्मण हैं ?"

"जी हां, हम नागर ब्राह्मण हैं। कहते हैं कि हम मूल गुजरात के ही है।"

"सभी नागर ब्राह्मणों का मूल निवास गुजरात है। पण्ड्या लोग मूलतः मेहता ही हैं। सदियों पहले यहां से कुछ लोग उत्तर की ओर चले गये, जिनमें आपके पिता-प्रपितामह भी रहे होंगे। इस समय आपका निवास कहां है ?"

तानसेन फिर गड़बड़ा गया। पर तुरंत संभल गया और बोला, "ग्वालियर के पास एक गांव में हमारा घर है। स्वामी हरिदासजी के आदेशानुसार मैं कुलदेवता हाटकेश के दर्शन हेतु आया हूं।"

"स्वामी हरिदासजी से आपका परिचय है ?"

"जी, वे मेरे गुरु हैं।"

"अरे, वाह !"

"संगीत का प्रारंभिक पाठ मैंने उन्हींसे सीखा है।"

वंसीकाका आनंदित होकर बोले, "तब तो त्रिलोचनभाई, हम दोनों गुरु-भाई हुए, क्योंकि अपनी तरुणावस्था में मैंने भी उन्हींसे संगीत सीखा है। स्वामी हरिदासजी मेरे परम पूज्य हैं। पहले तो दो-तीन साल के अंतर पर मैं स्वामीजी के पास जाया करता था, परन्तु अब बुढ़ापे के कारण संभव नहीं रहा।"

"उत्तर में रहने के कारण मुझे यह सौभाग्य मिलता रहता है।"

"मुझे तो यही लग रहा है कि स्वामी हरिदासजी इस समय आपका रूप धारण कर अपने इस अकिंचन शिष्य पर कृपा करने को पधारे हैं।"

"नहीं-नहीं, मेरी इतनी योग्यता कहां ? मैं तो उनका एक अत्यंत साधारण शिष्य हूं।"

"पर स्वामीजी के संपर्क में जो बार-बार आता रहता है, उसे कितना ज्ञान प्राप्त होता है, यह मैं खूब जानता हूं। संगीत-शास्त्र में आज तो स्वामीजी की टक्कर का कोई दिखाई नहीं देता। खैर, आइए, चलें।"

बोलते-बोलते बंसीकाका उठ खड़े हुए। सभा-भवन के एक ओर यात्रियों के लिए जो कमरे बने हुए थे उनमें से एक में वे तानसेन को ले गये और बोले, "अभी आप यहां आराम कीजिए। पहली बार आप यहां पधारे और हमारे दुर्भाग्य से भयंकर अकाल पड़ा है। ऐसे में जो भी आतिथ्य बन पड़ेगा, प्रेमपूर्वक स्वीकार कीजिएगा।"

"काका, अकाल के दिनों में यहां आना मैं अपना सौभाग्य समझता हूं।"

"सच है। यात्रा में जितना कष्ट होता है, उतना ही अधिक पुण्य मिलता है।"

"अपनी तीर्थयात्रा की फलश्रुति मुझे आज ही हाटकेश की इस भूमि में हो गई।"

"हां, भैया, भगवान हाटकेश अपने भक्तों को कभी निराश नहीं करते !"

तानसेन क्षणभर कुछ सोचता रहा, फिर बोला, "काका, हाटकेश आपके भी कुल-देवता हैं। इस पवित्र भूमि में आप संतपद को प्राप्त महान भक्त हैं। बहुत दूर से आये हुए इस ब्राह्मण-यात्री की आपसे एक याचना है।"

भीषण अकाल के दिन न होते, पहले जैसी समृद्धि होती तो बंसी-

काका उसी समय सोत्साह कहते, "भाई, जो भी चाहिए मुक्त मन से मांग लो, ज़रा भी संकोच मत करो। पर इस समय परिस्थिति दूसरी थी। आगंतुक यात्री से स्थिति छिपी नहीं थी, फिर भी वह याचना कर रहा था। एक क्षण यह विचार भी उनके मन में आया कि कहीं वृंदा-वन का यह यात्री उनकी परीक्षा तो नहीं ले रहा है। लेकिन सच्चे वैष्णव का यह धर्म नहीं कि याचक को 'ना' कहकर निराश करे।

बंसीकाका को विचारमग्न देखकर तानसेन ने कहा, "काका, अभी-अभी आपने कहा था कि हाटकेश की भूमि से कोई निराश नहीं लौटता।"

"सही है।"

"काका, मेरी मांग बहुत छोटी है, एकदम साधारण। कोई लंबी-चौड़ी चीज मैं नहीं मांग रहा।"

"बोलिए, क्या चाहिए ?"

"संगीत मेरा जीवन है, यह मैं आपसे पहले ही कह चुका हूं।"

"हां। और आपने यह भी कहा है कि आप स्वामी हरिदासजी के शिष्य हैं।"

"गुरु-मुख से मैंने मेघ मल्हार सुना है। उनके मेघ मल्हार गाते समय स्वच्छ आकाश में बादलों को घुमड़ते और गरजते मैंने देखा है और बर-सते भी देखा है।"

"गुरुदेव की संगीत-साधना अलौकिक है।"

"जी हां, इसमें जरा भी संदेह नहीं। पर काका, घड़े भरते समय पानी से मेघ मल्हार के स्वर निकलते हुए मैंने आज यहां पहली ही बार सुने और प्रत्यक्ष देखा भी।"

बंसीकाका ने हँसकर कहा, "वे दोनों मेरी पोतियां हैं। भक्तराज नरसी मेहता के पावन घराने से मेघ मल्हार की विरासत वे अपने साथ लायी हैं।"

"तब तो मैं धन्य हो गया। काका, मेरी बड़ी इच्छा है कि मैं उनसे मेघ मल्हार सुनूं। यही मेरी याचना है।"

"त्रिलोचनभाई, वे मेरी पोतियां जरूर हैं, पर साथ ही यहां के मंडलेश्वर घराने की बहुएं भी हैं। बाहरी आदमियों के सामने घर की बहुओं के गाने का रिवाज यहां नहीं है।"

"काका, मैं उम्र में उन लड़कियों के पिता से भी बड़ा हूं। पिता के सामने गाने में बेटियों को कैसा संकोच?"

बंसीकाका क्षण-भर चुप रहे, फिर बोले, "ठीक है। आज उनके ससुराल में धार्मिक कार्य होने के कारण वे हवेली गई हुई हैं। शाम को लौटेंगी। रात को भोजन के बाद वे गा सकेंगी।"

"मैं कृतज्ञ हुआ, काका।"

× × ×

सांयकाल की आरती हो जाने पर, भोजन के बाद, रोज के नियमों के अनुसार, नगर का प्रवेश-द्वार बंद हो गया। आज यात्री-निवास में तानसेन के अलावा और कोई यात्री नहीं था।

मंदिर के सामने चौक में दो गलीचे बिछाये गए। एक पर बंसीकाका, तानसेन और गिरधर बैठे। दूसरे पर लाभकुंवरबा, शर्मिष्ठा और उनके पीछे ताना-रिरी बैठीं। मंदिर में एक ही दीपक जल रहा था बाकी तीनों कोनों के दीपक केवल आरती के समय ही जलाये जाते थे।

मंदिर में बंसीधर की मूर्ति के सामने वाले दीपक का हल्का प्रकाश चौक में पड़ रहा था। पूर्णिमा के दूसरे दिन की रात होने से खुले चौक में चांदनी भी फैल रही थी। वातावरण शांत और नीरव था।

तानसेन ने दोनों बहनों की ओर देखा। असामान्य रूप-सौंदर्य से मंडित बंसीकाका की दोनों पोतियां मंडलेश्वर घराने की बहुओं के उपयुक्त शोभा-गरिमा से बैठी थीं। तानसेन ने मन-ही-मन प्रशंसा की,—जितना उत्कृष्ट इनका रूप, वैसी ही श्रेष्ठ इनकी संगीत-साधना भी है।

बंसीकाका ने वैसे तो तानसेन के बारे में जितना उसने बताया था, वह सब अपने परिवार वालों को बता दिया था, फिर भी इस समय औपचारिकता निभाने के लिए उन्होंने गिरधारभाई से कहा, "ये, त्रिलोचन

पंड्या, हाटकेश के दर्शन के लिए आये हैं।"

रिवाज के अनुसार गंगावा ने कहा, "जय हाटकनाथ !"

तानसेन ने हाथ जोड़कर कहा, "जय हाटकनाथ !"

फिर वंसीकाका ने अपनी पोतियों से कहा, "बेटा ताना, रिरी, अब तुम मेहमान को मेघ मल्हार सुनाओ।"

ताना ने कहा, "दादाजी, वृंदावन का संगीत हमने आजतक नहीं सुना। सुनने की हमारी बड़ी इच्छा है। उसके बाद हम दोनों मेघ मल्हार गायेंगी।"

गिरधरभाई ने कहा, "त्रिलोचनभाई, बेटियों ने बढ़िया बात कही है। वंसीधर को आपकी थोड़ी सेवा प्राप्त होगी और हमें आपके संगीत को सुनने का लाभ मिलेगा।"

तानसेन मुस्करा दिया। संगीत-प्रवीण लड़कियों पर अपने संगीत की छाप डालने का अवसर उसे अनायास मिल गया। उसने गाने के लिए बैठक साधी। गिरधरभाई ने संगत के लिए तबले की जोड़ी संभाली। तानसेन के मुंह से हल्के-हल्के स्वर उभरने लगे। दीपक-राग उस शांत नीरव वातावरण में तरंगित होने लगा :

दीपक की ज्योतिहि मिलैं,
सुर सरसुति ये अंस।
दीपावती प्रसिद्ध जग,
जग नृपे की अवतंस॥

धीरे-धीरे तानसेन दीपक-राग के विकास में मग्न हो गया। वह स्थान और समय का भान भूल गया। शहंशाह अकबर के दरबार का संगीत-सम्राट इस समय मानो दो लड़कियों के सामने सिर झुकाये परीक्षा दे रहा था। उसने अपनी सारी संगीत-साधना दांव पर लगा दी। उसे यह गर्व भी था कि उसके जैसा श्रेष्ठ गायक इस धरती पर दूसरा कोई नहीं। लोगों ने उसके अहंकार को हमेशा बढ़ावा ही दिया था, आज सवेरे शर्मिष्ठा के घाट पर उसके अहंकार का महल धराशायी हो गया था।

वह तन्मय होकर गा रहा था। वंसीकाका आंखें वंद किये 'वाह-वाह' करते झूम रहे थे। गिरधर बड़नगर का माना हुआ तबला-वादक था, किंतु आज उसकी खरी कसौटी हो रही थी। इस गायक के साथ चलना उसे भारी पड़ रहा था। वार-वार उसके मन में आता कि स्वामी हरिदासजी का यह शिष्य त्रिलोचन पंड्या तो अपने गुरु से भी सवाया है, इसकी साधना विलक्षण ही है।

संगीत की जानकार शर्मिष्ठा का मन कह रहा था कि यह कोई सामान्य गायक नहीं है। क्या वृंदावन और गोकुल के सभी गायक इतने श्रेष्ठ होते हैं ?

ताना और रिरी अपने प्राण कानों में केंद्रित किये सुन रही थीं। बचपन से लेकर अभीतक उन्होंने अनेक गायकों को सुना था, लेकिन आज का गायन अलग प्रकार का और अपूर्व ही था। जन्म-जन्मांतरों की तपस्या के वाद भी संगीत का ऐसा ज्ञान बिरलों को ही प्राप्त होता है। कहीं बंसीधर के हाथ की बांसुरी तो मानव रूप धारण कर गाने नहीं बैठ गई ? ऐसा दिव्य संगीत साधारण मनुष्य के बस का नहीं है।

वहां बैठा हर व्यक्ति उस वैष्णव-यात्री के स्वर्गीय गायन के बारे में अपने-अपने ढंग से सोच रहा था। इतने में उस चौक में दिव्य प्रकाश छा गया, मानो आकाश का चांद चौक में उतर आया हो।

वंसीकाका हाथों से ताल देते हुए झूम रहे थे। वे एकदम रुक गए। चकित होकर उन्होंने सामने देखा तो मंदिर के सभी दीपक जल उठे थे। गर्भगृह प्रकाश से जगमगा रहा था और प्रज्वलित दीप चौक को भी प्रकाश-पूरित कर रहे थे।

सभी की निगाहें मंदिर की ओर उठ गईं। तभी तानसेन का गायन समाप्त हुआ। गिरधरभाई ने आगे बढ़कर तानसेन का हाथ पकड़ लिया और आग्रहपूर्वक पूछा, "त्रिलोचनभाई, आप वास्तव में कौन हैं ?"

तानसेन की दृष्टि दीपकों के प्रकाश से आलोकित बंसीधर की मूर्ति पर लगी थी। उसने कहा, 'क्या मतलब ?"

"दीपक राग के पूर्ण विकास के द्वारा दीप जलाने की शक्ति इस दुनिया में आज केवल एक व्यक्ति में है। और मुझे इस बारे में तनिक भी संदेह नहीं कि वही व्यक्ति इस समय वंशीधर के सामने बैठा है।

तानसेन ने प्रश्न किया, "कौन व्यक्ति ?"

"ता...न से..न।"

पिता के मुंह से उच्चरित तानसेन शब्द ताना ने सुना और मन-ही-मन उछल पड़ी—तानसेन ! संगीत-सम्राट तानसेन, हमारे सामने ! जिनका गाना सुनना आकाश के चांद को छूने की तरह असंभव है, उन्हीं का गाना हमें जी भरकर सुनने को मिला। यह सच है या सपना ? सपना ही होगा। राजसी ठाठ-वाट में लोटनेवाले तानसेन साधारण यात्री के रूप में यहां क्यों आने लगे ? मेरी आंतरिक अभिलाषा के साक्षी वंशीधर ही तो उन्हें यहां नहीं खींच लाये ?

तानसेन ने हँसकर कहा, "भैया, दोनों व्यक्ति एक ही हैं। राजा-महाराजाओं का दरबारी गायक तानसेन, पर वंशीधर के दरबार का गायक केवल त्रिलोचन पंड्या।"

वंसीकाका ने प्रसन्नता से भरकर कहा, "कृष्ण-कन्हैया की कृपा से आज हमें यह सौभाग्य प्राप्त हुआ। हमारा अहोभाग्य !"

शर्मिष्ठा बोली, "आपका गाना सुनने की इच्छा इन लड़कियों को बहुत समय से थी, वह आज पूरी हो गई।"

ताना-रिरी सकपका गईं। इस समय तक पल्लू कंधे पर लिये निःसंकोच भाव से बैठी थीं। अब तानसेन को सामने बैठा जान फौरन पल्लू माथे पर खींच लिये।

लाभकुंवरबा एकदम गंभीर हो गईं। शाही दरबार का भ्रष्ट तान-सेन इस पवित्र मंदिर में ? गंधर्वों-जैसा गाता है, और साक्षात् गंधर्व भी हुआ तो क्या ? अपनी पोतियों को घर के अंदर जाने को कहकर वे एक-दम उठीं और भीतर चली गईं।

ताना-रिरी ने दादी का आदेश जैसे सुना ही नहीं; वैसी ही बैठी

रहीं। ताना तानसेन की ओर देख नहीं रही थी। देखने-सुनने से परे वह गायक के स्वर्गिक गान की लहरों में डूब-उतरा रही थी।

लाभकुंवरबा के इस तरह चले जाने से वातावरण थोड़ा गंभीर हो गया। तानसेन को कारण समझते देर न लगी। बंसीकाका ने स्थिति को संभालने की कोशिश की, "लड़कियों की दादी छुआछूत और स्पृश्यता-अस्पृश्यता के मामले में बहुत कट्टर हैं।"

दिल्ली से चलते समय तानसेन ने फैसला कर लिया था कि अपना असली परिचय किसी को न देगा। वह जानता था कि मुगल दरबार में रहने के कारण उसके रहन-सहन और धर्म को लेकर विरोधियों ने कई झूठी अफवाहें फैला रखी हैं; हिन्दू धर्म छोड़कर वह मुसलमान बन गया, इसीलिए अम्बर ने उसे संगीत-सम्राट की पदवी दी और शाही संगीत-सभा का प्रधान नियुक्त किया। यह अफवाह इस गांव में भी पहुंची और उसका प्रत्यक्ष प्रमाण भी मिल गया। अपने संगीत-प्रेम के कारण ही तानसेन असली परिचय देने की गलती कर बैठा था। इस गलतफहमी को दूर करना और दोनों लड़कियों का गाना भी उसे सुनना था।

थोड़ी देर असमंजस की स्थिति में बैठे रहने के बाद उसने विनम्रता-पूर्वक कहा, "काका, आपका अभिप्राय मेरी समझ में आ गया। परंतु विश्वास कीजिए, इस समय हाटकनाथ की, अपने कुलदेवता की भूमि पर, साक्षात् गिरधारी के सामने बैठा हूं और सच कहता हूं कि मैं किसी भी रूप में भ्रष्ट नहीं हुआ हूं। मैंने न अपना धर्म छोड़ा है और न परायाधर्म अंगीकार किया है। अंतरमन से मैं वैष्णव हूं और हमेशा वैष्णव रहूंगा। मेरे बारे में जो भी लोकापवाद आपने सुना है, वह असत्य है।"

बंसीकाका ने कहा, "तुम्हारे मुंह से सचाई सुनकर हमारे सारे संदेह दूर हो गए।"

"कृतज्ञ हुआ। फिर तो बा का मन भी साफ हो जाना चाहिए।"

बंसीकाका ने भीतर जाकर असलियत समझा दी और थोड़ी ही देर में लाभकुंवरबा बाहर आ गईं। तानसेन को पूरी तरह आश्वस्त करने के

विचार से बंसीकाका ने कहा, "ताना बेटी, जिनके दर्शन के लिए बचपन से लालायित थी, वे तानसेन स्वयं यहां पधारे और उनका गाना भी सुनने को मिला। अब तुम उनकी इच्छा पूरी करो। उन्हें अपना गाना सुनाओ।"

ताना ने सकुचाकर कहा, "दादाजी, जिनका गाना सुनकर कान तृप्त हो गये उनके बाद मेरे गाने की क्या बिसात ! कहां सूरज, कहां दीया?"

बंसीकाका मुस्करा दिये। बोले, "प्रश्न दीपक और सूर्य की बराबरी का नहीं है, और न तुझे अपने संगीत-ज्ञान की परीक्षा देनी है । हमारा सौभाग्य कि तानसेन-जैसे सर्वश्रेष्ठ गायक यहां पधारे । उनके आदेश का तो पालन करना ही होगा।"

जब इतने पर भी ताना का संकोच दूर नहीं हुआ तो तानसेन ने उसे आश्वस्त करते हुए कहा, "बेन, मैं उम्र में तुम्हारे पिता से बड़ा हूं। मेरी बेटी वीणा तुमसे भी बड़ी है। पिता के सामने गाने में बेटी को किसी तरह का संकोच नहीं होना चाहिए।"

ताना धीरे से बोली, "हमारा ज्ञान ही कितना है! अपनी अल्पज्ञता के कारण संकोच होता है।"

"ज्ञान की परख ज्ञानी करते हैं। तुम्हारी परख हो भी गई। अब चलो, शुरू करो।"

ताना उठी। उसके पीछे रिरी भी उठी। ताना ने सोचा भला-बुरा जैसा भी आये, गाकर आज नहीं सुनाया तो ऐसा अवसर इस जन्म में दुबारा नहीं मिलेगा । रूखीबेन के ससुर ने हमें गाना सिखाया और अक्सर कहते रहे कि तानसेन को यहां बुलाकर तुम्हारा गाना सुनाना चाहिए। अगर आज वे होते तो उन्हें कितनी प्रसन्नता होती और कितने गर्व से वे तानसेनजी से हमारी प्रशंसा करते। वे आज नहीं हैं तो उनकी इच्छा हमें पूरी करनी चाहिए।

दोनों बहनें आगे आकर बैठ गईं। गिरधरभाई तबला ठीक करने लगे। तानसेन आगे खिसक आया और तंबूरा हाथ में लेकर हंसते-हंसते बोला, "काका, यह घर्मपिता तंबूरे पर संगत करेगा।" और तंबूरा

मिलाने लगे।

ताना ने माथे का पल्लू ठीक करते हुए देखा कि जिसकी संगत के लिए कलाकारों के दल तरसते हैं, वही संगीत-सम्राट साधारण साजिंदे की तरह उसकी संगत के लिए बैठा है। वह कृतज्ञ हो गई।

तबला ठीक हो गया। तंबूरे के स्वर मिल गये। पिता और धर्मपिता उसकी संगत के लिए तैयार थे। उसने मन-ही-मन वंशीधर से प्रार्थना की, "हे गिरधारी, जिस प्रकार तूने मीरा की लाज रखी, उसी प्रकार आज मेरी भी रखना। इस संगीत-सम्राट के सामने मेरी किरकिरी न होने देना।"

गिरधारी में ध्यान लगाकर उसने प्रारंभ किया। रिरी जुगलबंदी के लिए थी ही। दोनों की आवाजें एक-जैसी, तैयारी भी एक-जैसी। इसलिए कहीं कोई अंतर दिखाई नहीं देता था। हां, साधना में ताना इक्कीस पड़ती थी।

मेघ मल्हार के स्वर हवा में लहराने लगे। धीरे-धीरे शब्द प्रकट हुए :

> नाचत चपल चंचल गति
> घन मृदंग रस भेद सौं बाजत।
> कोकिल अलापत, पपैया उरप लेत
> मोर सुघर सुर साजत॥
> दादर तार धार धुनि सुनियत,
> रुन-झुन धुनि पर बाजत
> 'तानसेन' के प्रभु बहुनायक
> कुंज महल दोऊ राजत॥

ताना और रिरी दोनों मन-प्राण से गा रही थीं। बीच-बीच में ताना रिरी की ओर क्षणभर स्थिरदृष्टि से देख लेती थी, मानो कह रही हो, "रिरी, हम संगीत-सम्राट के सामने गा रही हैं। ध्यान रखना। परीक्षा की कठिन घड़ी है। प्रशंसा तो होगी ही; पर हमें केवल प्रशंसा

नहीं चाहिए, अंतर की कला का उद्‌घाटन भी होना चाहिए। ध्यान रखना बेन! यह समय दुबारा नहीं आयगा। जो भी करना है, वह आज और इसी समय करना होगा।"

रिरी बहन के दृष्टि-संकेत को ग्रहण करती, उसके मूक भावों को पढ़ लेती और उसके स्वर का आवेग द्विगुणित हो जाता। इससे ताना का उत्साह और बढ़ता और वह अपने सारे गान-कौशल को दांव पर लगा देती।

तानसेन चकित होकर सुन रहा था। इन लड़कियों की तैयारियां तो जिंदगी-भर रियाज करनेवाले अच्छे-अच्छे गायकों को भी मात कर देती थीं।

लेकिन नहीं, यह रियाज़ वाली तैयारी नहीं थी। घर-गृहस्थी में व्यस्त रहनेवाली लड़कियों को तैयारी के लिए समय ही कहां मिलता होगा! यह तो इन रूपवती लड़कियों को भगवान का दिया हुआ वर-दान है। नरसी मेहता के कुल में जन्म लेनेवाली ये शायद गंधर्व कन्याएं ही हैं।

वंसीकाका की खुशी का पारावार न रहा। उन्हें आश्चर्य भी कम न हुआ। अपनी पोतियों की इतनी उच्चकोटि की संगीत-प्रवीणता की उन्होंने कल्पना नहीं की थी। लग रहा था, जैसे आज उनमें साक्षात् संगीत की देवी संचरित हो रही हो।

वास्तव में हुआ भी यही था। ताना-रिरी तन-वदन का भान भूल कर गा रही थीं। ताना की नजर अब सामने वंशीधर की मूर्ति पर टिकी हुई थी।

गिरधारी मेरी लाज रखना। सुनती आई हूं कि जब मेरे बड़े नाना-जी मेघ मल्हार गाते थे तो पानी बरसने लगता था। हम दोनों बहनें उस वंश से हैं। हमारी नस-नस में वही खून बह रहा है। उस खून की एक-एक बूंद से हमने पूरे एक महीने तक मेघ मल्हार को जगाया है, सिद्ध किया है। हाटकनाथ, तेरे मस्तक पर मेघ मल्हार का जल अभि-

सिंचित किया है। मेघ मल्हार... मेघ मल्हार....!

....नांचत चपल चंचल गति...

...घन मृदंग...घन मृदंग ..

ताना-रिरी के स्वर वातावरण में भरते गए। शब्दनाद से आकाश गूंज उठा। शब्द निनादित होकर शक्ति का निर्माण करने लगे। उस शक्ति को गति मिली। उस गति ने उन शब्दों को वेद-मंत्रों की सामर्थ्य प्रदान की। शब्द-सामर्थ्य की तेजस्विता भास्वर होती गई...

देखते-देखते शांत स्थिर आकाश कांप उठा, आलोड़ित हो गया। सहसा हवा चलने लगी। धूल भरी हवा के झोंके गवाक्षों की राह अंदर घुस आये। मंदिर में दीपक राग के प्रभाव से जो दिये जल उठे थे वे बुझ गए। केवल कोने वाले दरवाजे की ओट में जलता हुआ अखंड नंदा-दीप वैसा ही मंद-मंद टिमटिमाता रहा। चौक में ऊपर से आती चांदनी लुप्त हो गई। चारों ओर अंधेरा छा गया। बादल गरजने लगे, बिज-लियां कड़कने लगीं। निमिष-भर में चौक के अंदर ऊपर आसमान से पानी की बूंदें टपाटप गिरने लगीं।

अमृत बिंदु-जैसी पानी की ठंडी बूंदें जब वदन पर गिरीं तो ताना को होश आया।

"वर्षा-वर्षा..."

वह रोमांचित हो गई। गिरधारी ने उसकी लाज रख ली थी।

सभी लोग वर्षा से भीगने लगे।

तानसेन ने एक बार पहले भी अपने गुरु स्वामी हरिदासजी के मेघ-मल्हार गाने पर बरसात होते देखी थी। पर इस समय का उसका अनु-भव अलग ही तरह का था। ऐसी दिव्यता और धन्यता का अनुभव उसे पहले नहीं हुआ था। ये मानवी कदापि नहीं हो सकतीं, शापभ्रष्ट गंधर्व कन्याएं ही हैं। वह गद्गद् होकर बोला, "धन्य हो बहनो, तुम धन्य हो!"

वंसीकाका विस्मित होकर अपनी पोतियों की ओर देखते ही रह

गए थे। काफी देर बाद ही कह सके, "तानसेन, धन्यवाद के अधिकारी तो आप हैं। मेरी ये पोतियां इतना बढ़िया आपके प्रभाव के ही कारण गा सकी हैं।"

"नहीं काका...."

"तानसेनजी, आपके जिस दीपक राग ने मंदिर के दियों को जलाया उसीने इन कन्याओं के भीतर के संगीत-तेज को भी प्रज्वलित कर दिया। आज का दिन हमारे जीवन का सबसे सौभाग्यशाली दिन है।

बातचीत में सवेरा हो गया। लगातार दो घंटों से जो जोरदार वर्षा हो रही थी, अब उसके वेग में थोड़ी कमी आ गई थी।

तानसेन ने लौटने की तैयारी करते हुए कहा, "काका, मुझे जिन्दगी-भर जो नहीं मिला, वह यहां गुजरात में, हाटकेश के पवित्र स्थान में, आकर प्राप्त हो गया।"

"यह कुलदेवता की ही कृपा है।"

"अब मुझे जाने की आज्ञा दीजिए।"

गिरधारी ने कहा, "अभी, इस समय ?"

"जी हां। सूर्योदय के पहले ही मैं निकल जाना चाहता हूं।"

तानसेन ने सबसे विदा ली। ताना निर्निमेष, किंतु प्रसन्न और संतुष्ट उसे देखती रही।

बंसीकाका तानसेन को विदा करने के लिए उसके साथ बाहर आये।

बाहर अभी अंधेरा था। आकाश बादलों से घिरा था। वर्षा इस समय थम गई थी, किंतु कभी भी फिर झड़ी लग सकती थी। पानी काफी बरस चुका था। अकाल की मारी प्यासी धरती पानी पीकर तृप्त और शांत हो गई थी। राह में जगह-जगह पानी भर गया था। आसपास की नालियां उमड़कर बह रही थीं। हवा में ठंडक आ गई थी। सवेरा सुहावना लग रहा था।

चलते-चलते तानसेन ने कहा, "काका, लोगों को सिर्फ इतना ही मालूम हो कि त्रिलोचन पंड्या नाम का कोई यात्री हाटकेश के दर्शन के

लिए आया था और लौट गया। तानसेन के नाम का कहीं उल्लेख भी नहीं होना चाहिए।"

वंसीकाका ने कहा, "ठीक है, भाई। जैसा तुम चाहते हो, वही होगा। लेकिन तुम भी एक वात का ध्यान रखना, ताना-रिरी के संगीत की चर्चा राज-दरवार में या दूसरे कहीं भी न हो। वे मंडलेश्वर के घर की वहुएं हैं। उनका नाखून भी कोई देख नहीं सकता। आज केवल तुम्हारे ही लिए उन्होंने गाया है।"

"काका, आप निश्चित रहें। अकवर वादशाह की राक्षसी महत्वाकांक्षा का मुझे खूब अनुभव है।"

"उसकी इस राक्षसी महत्वाकांक्षा के कारण अनेक राज्य धूल में मिल गये। नागरिक जीवन नष्ट-भ्रष्ट हो गया। अब भी यही सुनने में आता है कि अकवर वादशाह की इच्छा-आकांक्षा का कोई ओर-छोर नहीं।"

"काका, आपको वचन देता हूं कि मेरे पास से यह वात कभी भी वाहर नहीं जायगी।"

थोड़ी देर वाद तानसेन दिल्ली के रास्ते पर था।

तेरह

वादलों की गरज, विजली की चमक, कौंधे की कड़क और उसके वाद होनेवाली भारी वर्षा की झड़ी से लोगों की नींद खुल गई। जो वाहर खुले में सोये थे उस शीतल जलधारा से भीग गए। वे नींद से तो जागे, पर खुशी से वेहोश हो गए। आखिरकार हाटकेश्वर प्रसन्न हुए। पानी गिरा। अकाल गया। दीन-हीन गुजरात की भूमि के दिन लौटे। इतने दिन वाद भारी विपत्ति के कारण लोगों की नींद गायव थी, अब अत्यधिक हर्ष के कारण गायव हो गई। रात के पिछले पहर की वर्षा

शुभ होती है। यह पिछले पहर की पहली वर्षा थी—भयंकर अकाल के बाद की पहली वर्षा। परंपरागत मान्यता के अनुसार ऐसी वर्षा बहुत शुभ मानी जाती है। मान्यता थी कि स्वयं वरुण देवता अपने हाथ से जल के कलश भरकर आकाश-मार्ग से पृथ्वी पर उंडेलते हैं, इसलिए यह वर्षा शुभशकुन के अमृतकलश की वर्षा है। मेघ राजा की वर्षा इसके बाद ही शुरू होती है।

वर्षा की झड़ी लगते ही घरों में सोये हुए लोग बाहर आ गये। वे बरसते पानी में खड़े हो गये और नाचने लगे। चातक की तरह मुंह खोल कर अमृत-वर्षा की बूंदों को पीने लगे।

सूर्योदय हुआ। चारों ओर का दृश्य उजागर हो उठा। अब बरसात रुक गई थी। गड्ढे पानी से भर गए थे। दूर-दूर तक सारी धरती गीली हो गई थी। उस भीगी काली जमीन की ओर लोग भीगी नजरों से देख रहे थे।

इतने दिन घरों में कुछ नहीं था, इसलिए चूल्हे नहीं जलते थे, और आज आनंदातिरेक के कारण चूल्हे जलाने की किसी को सुध नहीं थी।

रास्ते में, दुकानों पर, चौराहों पर लोगों के झुंड-के-झुंड दिखाई दे रहे थे। वे बादलों से भरे आकाश की ओर देखते हुए आनंद से गप्पें लगा रहे थे। अकाल के समय के सारे दुःख वे भूल गए थे। पिछली रात की शुभ बरसात ने नगर की सारी चिंता, सारे दुःख, को धो दिया था। पहला पानी प्यासी धरती के रोम-रोम में समा गया था। उसे अमृत-धारा की संजीवनी मिल गई थी। सूखी धरती फिर रसयुक्त हो उठी थी। लोगों के मन प्रसन्न थे। उनमें उत्साह भरने लगा था।

हाटकेश के मंदिर में तिल रखने को जगह नहीं थी। "जय हाट-केश!" "जय हाटकेश!" के स्वर गूंज रहे थे। आरती के समय मंदिर में नागरिकों की जैसे बाढ़ ही आ गई थी। झांझ, मंजीरे, घंटे, घड़ियाल, नगाड़े और तालियों के समवेत स्वर ने दिगंत को गुंजारित कर दिया। भक्तजन गले की पूरी आवाज से आरती गा रहे थे। हाटकेश के प्रति

भक्तिभाव उनके मन में समा नहीं रहा था। यह स्वाभाविक भी था। अभी तक उन्होंने केवल सुना ही था कि हाटकेश जागृत देवता हैं, आज प्रत्यक्ष अनुभव हो गया।

शिवभक्त कहते, सोमनाथ के मंदिर में मंडलेश्वर नीलकंठराय ने अकाल को दूर करने के लिए हाटकेश का स्मरण करते हुए जो पूजा प्रारंभ की, उससे यहां हाटकेश प्रसन्न हुए और पानी बरसा।

वैष्णव कहते, यह तो वही बात हुई कि उत्तराखंड में सूर्य निकला और दक्षिणाखंड में प्रकाश हुआ। यह केवल शैवों का अहंकार है। कौन स्वीकार करेगा इसे ? पानी बरसने का असली कारण है, वंसीकाका की दोनों पोतियों का पुण्य। उन्होंने बड़े कठोर व्रत का पालन किया। हाटकेश्वर के मस्तक पर रोज मेघ मल्हार के स्वरों से युक्त जल का अभिषेक होता था। इस प्रकार संगीत-जल से तो कोरे पत्थर में भी देवत्व आ जाता है। वे प्रसन्न हो गये तो कौन बड़ी बात है ? हिमालय के सबसे ऊंचे शिखर पर विराजमान शंकर ही मेघ मल्हार हैं। जलभरे मेघों को वही तो खींचकर लाते हैं।

शैव-वैष्णवों में इस प्रकार की छींटाकशी होती रहती थी। लेकिन यह कोई नहीं जानता था कि पिछली रात में किसी भी प्रकार के आसार न होते हुए भी अचानक वर्षा कैसे हुई ! जो घटना आधी रात में एक अद्भुत स्वप्न की तरह हुई, वह ठीक स्वप्न की ही तरह गायब भी हो गई। कोई जान न पाया। सिर्फ वह सच्चा सपना ताना-रिरी की आंखों के आगे से हटता न था। सारा दृश्य बार-बार मस्तिष्क में घूम जाता था। निरंतर यह खयाल बना रहता कि जीवन धन्य हो गया। पर किसीसे कह नहीं सकती थीं। वंसीकाका ने सारी बात को गुप्त रखने की कड़ी ताकीद कर दी थी। शायद इसी रहस्यात्मकता के कारण वह और भी रोमांचक हो गई थी।

जो मंदिर में आता, वही मुक्त मन ताना-रिरी की प्रशंसा करने लगता, "वंसीकाका, आपकी पोतियों ने नरसी मेहता का नाम रख लिया।

वे अपने नाना से भी सवाई निकलीं।"

वंसीकाका हँसकर कहते, "सवाई क्या और ढाई क्या? पुण्य-प्रताप तो सारा उस महात्मा का ही है।"

"जी हां, पुण्याई तो बेशक उन्हींकी है; किंतु आपकी पोतियों में दैवी अंश हुए बिना क्या यह संभव था।"

दोपहर में ताना की सहेलियां आ जुटतीं और कहतीं, "तानाबेन, पानी में घड़ा डुबा कर मेघ मल्हार के स्वर निकालना हमें भी सिखा दो।"

यदि रूखीबेन वहां होती तो तपाक से कहती, "उन स्वरों को पैदा करने के लिए वैसा ही पुण्य चाहिए। यह सीखने-सिखाने की बात नहीं है। ताना-रिरी को तो भगवान का वरदान है।"

"सच है। नरसी मेहता को मेघ मल्हार का वरदान था। उन्होंने एक वार इसका प्रमाण भी दिया था।"

"रूखीबेन, नरसी मेहता के मेघ मल्हार गाने पर वर्षा हुई थी, जब-कि ताना-रिरी के घड़े भरने के स्वरों को सुनकर ही मेघराज दौड़े आये। इसे पुण्याई तो कहना ही होगा।"

ताना-रिरी इस प्रकार की चर्चा में भाग नहीं लेती थीं। जब सखी-सहेलियां लौट जातीं और दोनों अकेली रह जातीं तो ताना कहती, "रिरी, वर्षा हुई है केवल..."

रिरी बीच में ही बोल उठती, "तानसेन के कारण।"

"हां, वे न आते तो यह कभी संभव न था। तानसेन ने दिखा दिया कि संगीत में कितनी शक्ति है। जब वे गा रहे थे तभी मुझे लगा था कि उनका संगीत सामान्य से भिन्न है। और जब दीये जल उठे तो मुझे विश्वास हो गया कि गानेवाले तानसेन ही हैं।"

"तानाबेन, उनके दीपक राग से प्रज्वलित दीयों का प्रकाश दिव्य-शक्ति बनकर हमारे कंठमें पैठ गया, इसीलिए पानी बरसा, नहीं तो क्या हमने इसके पहले मेघ मल्हार नहीं गाया था, तब तो पानी बरसा नहीं।"

"रिरी, संगीत साक्षात् सामवेद है और वेद परम शक्ति संपन्न हैं।

तानसेन के दीपक राग ने हमारी सोयी हुई शक्ति को जगा दिया। सूर्य-किरण से सूर्य-कमल के खिलने जैसी बात हुई।" कहते-कहते ताना का चेहरा सूर्य-कमल की भांति खिल गया।

रिरी ने कहा, "बड़ीबेन, तानसेन के आने और उनके गाने का जब मैं विचार करती हूं तो बड़ा अद्भुत लगता है। देखो न, हमारे इधर के भू-भाग में क्या कभी ऐसा अकाल पड़ा था? हमने पहली बार मेघ मल्हार का व्रत लिया और तानसेन देवदूत की तरह आ गये। सबकुछ परियों की कहानी-जैसा लगता है।"

ताना हँसी, "रिरी जब संकट सीमा को पार कर जाता है तो ऐन वक्त पर कोई दैविक शक्ति मानव के सहायतार्थ संकट-मोचन के लिए उपस्थित हो जाती है।"

"शायद इसीलिए तानसेन को ऐसे समय यहां आने की प्रेरणा हुई।"

"यही प्रतीत होता है, नहीं तो कुल देवता के दर्शन करने के लिए इसके पहले यहां आने की इच्छा उन्हें क्यों नहीं हुई?"

ईश्वर की लीला और प्रकृति के नियम हम मनुष्यों के लिए अगम्य ही हैं। पर बड़ीबेन, तानसेन आये छद्मवेश में..."

"छद्मवेश में क्यों री? हाटकेश के दर्शनार्थ यात्री-वेश में आये थे।"

"यात्री बनकर ही क्यों न आये हों, थे तो संगीत-सम्राट तानसेन ही!"

"नहीं, तानसेन नहीं! उन्होंने दादाजी से जो कहा, वह क्या तूने नहीं सुना?"

रिरी क्षणभर चुप रही, फिर बोली, "बड़ीबेन, तानसेन का प्रत्येक शब्द तू अपने मन-प्राण को एकाग्र कर सुन रही थी। मेरा ध्यान तो बीच-बीच में भटक जाता था।"

ताना हँस दी। जी में आया कि कहे, मन-प्राण की एकाग्रता से ही नहीं सुन रही थी री, रोम-रोम में कान उग आये थे। पर जब्त कर गई और कुछ देर बाद बोली, "तानसेन यहां अकबर के दरबारी संगी-

तज्ञ, शाही संगीत-सभा के प्रमुख, संगीत-सम्राट के रूप में नहीं आये थे। सारा मान-सम्मान और प्रशंसा रामगढ़ के राजा रामचंद्र द्वारा प्रदत्त तानसेन की पदवी आदि सभी कुछ दिल्ली के महल में रखकर, हाटकेश का भक्त, एक नागर ब्राह्मण, त्रिलोचन पण्ड्या यहां आया था। उसके लिए यात्री का वेश ही उचित था।"

रिरी ने हंसकर कहा, "वड़ीवेन, क्या तुम यह कहना चाहती हो कि जिस यात्री ने यहां दीपक राग गाकर मंदिर के दीये जलाये, वह केवल त्रिलोचन पण्ड्या था ?"

ताना की प्रसन्नता का पार न रहा। वहन की ठोड़ी हिलाकर बोली, "रिरी, तूने सच ही कहा है। फूल की विशेषता उसका रंग नहीं सुगंध है। नाम गुप्त रखने का एक कारण और भी है।"

"वह क्या ?"

"यदि अहमदाबाद के सुल्तान को पता चल जाता कि वे यहां आये हैं तो उसे जरूर राजनीति की गंध आती। सभी जानते हैं कि अकबर गुजरात को जीतना चाहता है।"

"सच है। सुल्तान यही समझता कि अकबर ने गुप्तचरी के लिए तानसेन को यात्रा पर भेजा है। कुछ भी हो, तुम्हारी तो बचपन की इच्छा पूरी हो गई।"

"हां, तानसेन का संगीत सुना। दीपक राग के एकमेव गायक के मुंह से दीपक राग सुना। मैं धन्य हो गई। कुछ रुककर आगे बोली, "रिरी, उस महान गायक के सामने हम मेघ मल्हार गा रही थीं। स्वर-साधना के सर्वोच्च विंदु पर पहुंचने के वाद जब पानी की बूंदें गिरने लगीं तो ऐसा लगा...सच कह रही हूं रिरी, उस समय ऐसा लगा..."

वोलते-वोलते उसने आंखें बंद कर लीं और एक गहरी सांस ली। फिर उसकी सांस रुक गई, वह स्तब्ध हो गई, मानो समाधि लग गई हो।

रिरी अपलक भाव-समाधि में तल्लीन वड़ी वहन की ओर देखती रही। उसे खयाल आया, संगीत की कैसी लगन है इसमें। जैसे उनमें प्राण

ही बसते हों...”

ताना ने धीरे-धीरे आंखें खोलीं। एक प्रसन्न मुस्कराहट उसके चेहरे पर फैल गई। समाधि अवस्था में आंखें मूंदे हुए जो देखा था, उसीको अधखुली आंखों से देखने लगी।

तानसेन सबसे विदा ले रहे थे। ताना भी प्रणाम करने के लिए आगे आई। वह उनकी ओर इस प्रकार देखने लगी, जैसे वंशीधर की मूर्ति को देख रही हो। हठात् एक विचार उसके मन में कौंध गया — मीरा को पूर्व जन्म में भगवान कृष्ण जिस प्रकार भिन्न-भिन्न स्वरूप में मिले थे, क्या उसी तरह इस संगीत मूर्ति से मेरी भी भेंट पूर्व जन्म में किसी रूप में हो चुकी है? इस विचार के आते ही वह एक क्षण के लिए स्तंभित खड़ी रह गई थी तो बंसीकाका ने कहा था, “ताना बेटा, तानसेन-जी को प्रणाम करो, उन्हें देर हो रही है,” तब होश में आकर उसने प्रणाम किया था··।”

उसे खयाल आया कि बात उसकी अधूरी रह गई है और रिरी प्रतीक्षा कर रही है। बोली, “रिरी, उस समय ऐसा लगा कि मेरे पांचों प्राण मेघ मल्हार में समा जायं।”

रिरी ने फौरन बहन के मुंह पर हाथ रख दिया. “छिः, ऐसा अशुभ नहीं बोला करते। अलाय-बलाय टले तुम्हारी।”

ताना हँस दी, “मृत्यु अशुभ नहीं होती, री!”

रिरी ने रोषपूर्वक कहा, “चुप भी रहोगी। तब से अशुभ बोले जा रही हो।”

ताना ने समझाने की कोशिश की, “मृत्यु ही क्यों, जन्म भी शुभ-अशुभ होता है। शुभ मुहूर्त में जन्म, अशुभ नक्षत्र में जन्म, होता है न?”

“हां, जन्म शुभ-अशुभ होता है; पर मृत्यु तो केवल अशुभ ही होती है।”

ताना ने बहन के गले में हाथ डालकर कहा, “नहीं पगली, मनुष्य

के लिए जीवन में ग्रहण करने को कुछ न रहे और देने-जैसा कुछ न बचे तो परम तृप्ति के उस क्षण की दिव्य मृत्यु शुभ होती है।"

रिरी कुछ बोल न सकी। उसकी आंखों में आंसू उमड़ आये।

चौदह

तानसेन दिल्ली की ओर बढ़ रहा था। हाटकेश्वर मंदिर तथा वर्षा से भीगा बड़नगर बहुत पीछे छूट गए थे; किंतु कल्पना में वह नगर बराबर उसके साथ बना रहा। हाटकेश का अद्वितीय शिल्पवाला मंदिर, शर्मिष्ठा घाट, सभी उसकी आंखों में समाये हुए थे। जहां उसने संगीत का रस-पान किया था, वह बंसीकाका का वृंदावन तो उनके मन पर अंकित हो गया था। वहां सुने हुए हवा में लहराते, मेघ मल्हार के स्वर साथी बनकर उसके साथ चल रहे थे। वे स्वर उसके पंचप्राणों में समा जाना चाहते थे।

वह सोच रहा था, कैसा आश्चर्य है यह! दुनिया के एक कोने में स्थित छोटी-सी नगरी! मानो जादू-नगरी ही हो! हां, जादू-नगरी ही तो थी। मेरा सारा जन्म संगीत की साधना में बीता। कई जगह आया-गया। सर्वश्रेष्ठ गुरुओं से संगीत की शिक्षा प्राप्त की। दुनिया में सबसे महान दिल्लीपति के दरबार पहुंचा। वहां बड़े-बड़े गान-विशारदों की महफिलें देखीं-सुनीं। पर ऐसा संगीत कभी सुनने में नहीं आया। इस संगीत में सुरों की स्पर्धाजन्य अनावश्यक खींच-तान नहीं थी। स्वर के व्यर्थ विस्तार का नीरस पसारा नहीं था, और न पांडित्य-प्रदर्शन ही था। हम तो केवल नाम के संगीत-सम्राट! श्रोताओं को चमत्कृत करने लिए, प्रतिद्वंद्वियों को पछाड़ने के लिए और अपनी प्रतिष्ठा बढ़ाने के लिए स्वरों के शाही महल खड़े किया करते हैं! लेकिन पिछली रात जो संगीत सुना वह प्राण-ज्योति-जैसा दिव्य था। उसमें प्रतिस्पर्धा की गंध नहीं थी, स्वार्थ

का अंश नहीं था, प्रतिष्ठा की भूख नहीं थी। उस स्वर की रिण-किण सरस्वती की वीणा की झंकार-जैसी थी। ताना साक्षात् सरस्वती ही है।

मंडलेश्वर की इन बहुओं ने संगीत की साधना के लिए अवसर ही कहां पाया होगा? फिर भी मेरे-जैसा संगीत-सम्राट आज उनके सामने पराजित और नत-मस्तक हो गया। अकबर के दरबार में वाद्य-यंत्रों की कमी नहीं, दुनिया के सारे साज-बाज वहां मौजूद हैं। शाही महफिलों में वादकों की परस्पर होड़ लगी रहती है। हर तरह के बाजे सुरताल से एक साथ बज उठते हैं; किंतु पानी में घड़ों को डुबो कर किसी राग के सातों स्वरों का निकालना आश्चर्यजनक ही है। दैवी वरदान के बिना ऐसा कदापि संभव नहीं। ताना पर अवश्य ईश्वरीय कृपा है।

सहसा विदा-वेला का दृश्य तानसेन की आंखों में मूर्त्त हो गया।

विदा के समय प्रणाम करने से पहले ताना मेरी ओर निहारती खड़ी रह गई थी। उस समय उसकी बड़ी-बड़ी तेजस्वी आंखों में भक्त का आर्त भाव एकदम स्पष्ट हो उठा था। नहीं बेटी, नहीं, तू भक्त नहीं है। इस संगीत-सम्राट तानसेन के अहंकार का नाश करनेवाली तू मेरी गुरु है। तूने मेरा दिव्य संगीत से साक्षात्कार कराया। ताना, तू साक्षात् शारदा है। यह भक्त तेरी स्तुति करता है:

महावाक्वादिनी, सनमुख हूजै हो।
याही तैं त्रिभुवन मानी, यातैं तूं भवानी ।।
जो जाके मन इच्छा
सोई सो पुजै हो ।।
रूप की निधानी, इंद्रानी सिंहलानी।
जगज्जननी गुणनिधानी ।।

इन विचारों में तल्लीन तानसेन को पता ही नहीं चला कि कब उसकी वापसी समाप्त हो गई।

वह दिल्ली की सीमा पर पहुंच गया था। उसका शानदार महल

आगरा में था; किंतु वहां न जाकर वह दिल्ली आ गया था।

उसकी लाड़ली बेटी दिल्ली में रहती थी। बेटे उसके पांच थे। मन में बेटी की चाह थी। पर कई वर्षों तक बेटी का मुंह देखना नसीब न हुआ। हर बार सेवक पुत्र-जन्म के शुभ समाचार उसे सुनाते। सुनकर वह खुश होता, नौकरों को इनाम देता, सभी को मिठाई बांटता; पर मन उसका थोड़ा खिन्न हो जाता था। अंत में बेटी के लिए उसने शारदा की आराधना की और वर्ष के अंदर-अंदर शुभ दिन और शुभ नक्षत्र में उसके यहां कन्यारत्न का जन्म हुआ।

बेटी के जन्मोत्सव की खुशी में उसने खुले हाथों मिठाई बांटी। संगीत की महफिलें कीं। शारदा की कृपा से कन्या हुई तो उसे लगा, मानो सरस्वती ने प्रसन्न होकर अपनी वीणा ही मुझे दे दी। इसलिए उसने बेटी का नाम 'वीणा' रखा।

पिता से संगीत इस पुत्री को विरासत में मिला था। वीणा को वीणा-वादन का शौक बचपन से ही था। तानसेन ने बेटी के इस शौक को बढ़ावा दिया और वीणा सिखाने का विधिवत प्रबंध कर दिया। आठ-नौ बरस की गौर बालिका हाथ में वीणा लेकर बजाने बैठती तो लगता था मानो साक्षात् शारदा कन्या का रूप धारण किए बैठी हो। बड़ी जल्दी वह वीणा-वादन में प्रवीण हो गई। अब वीणा ही वीणा का प्राण थी। तानसेन ने बहुत पहले ही निश्चय कर लिया था कि अपनी वीणा का विवाह वह ऐसे घर में करेगा, जहां रोज वीणा-वादन होता हो और उसकी बेटी के इस शौक पर रोक-टोक न लगाई जाय। शाही दरबार का तरुण वीणावादक सदारंग उसके ध्यान में था ही। अकबरी दरबार के कुशल वीणावादक के रूप में उसकी ख्याति थी। वह वीणा के लिए हर प्रकार उपयुक्त वर था। जैसे ही वीणा विवाह योग्य हुई, तानसेन ने सदारंग को अपना जमाई बना लिया।

तानसेन कभी-कभी दिल्ली अपनी बेटी के यहां आ जाया करता था—उसके कुशल समाचार पूछने और उसकी वीणा सुनने। वीणा का

वीणा-वादन सुनकर उसे बहुत खुशी होती थी। वीणा की भी अपने पिता पर अपार श्रद्धा थी।

जिस समय तानसेन बेटी के घर पहुंचा, सूर्यास्त हो चुका था। वीणा पिता को देखकर खिल गई, स्वागत करते हुए बोली, "पिताजी, आप तो ऐसे लग रहे हैं, मानो मथुरा की वैष्णव-यात्रा का कोई यात्री गलती से हमारी दिल्ली में आ गया हो।"

तानसेन हँस दिया और उसने सिर हिलाकर जवाब दिया, "बिल्कुल ठीक कहती हो, बेटी। मथुरा से चले एक वैष्णव यात्री-संघ के साथ ही आया हूं।"

"पिताजी, इस वेश में यदि आप बादशाह के दरबार में जायं..."

"बेटी, यात्री वेश में देव-मंदिर जाया जाता है, राजा के दरबार में नहीं।"

"पिताजी, आप वृंदावन गये थे न ?"

"हां बेटी, गुरुवर्य हरिदासजी के चरण ही सबसे पावन यात्रा है।"

"इस पावन यात्रा से मेरे लिए खूब प्रसाद लाये होंगे !"

"अवश्य लाया हूं। इस बार तेरे लिए खूब सारा प्रसाद लाया हूं; इसीलिए आगरा न जाकर सीधा तेरे पास दिल्ली चला आया हूं।"

वीणा फूली न समाई। वह जानती थी कि उसके पिता उससे कितना प्यार करते हैं। इतना प्यार शायद ही कोई पिता अपनी पुत्री से करता होगा। बोली, "पिताजी, पहले आप जलपान कर लीजिए। तबतक मैं आपके स्नान-भोजन की व्यवस्था करती हूं। प्रसाद भोजन के बाद देंगे तो हर्ज नहीं।"

"बेटी, मुझे जल्दी नहीं है। सदारंग को आ जाने दो, साथ ही भोजन करेंगे।"

"आपके जमाई यहां नहीं हैं, पिताजी। आगरा सरफुद्दीन के पास गये हैं, कल सवेरे लौटेंगे।"

भोजन के बाद तानसेन ने उसके सामने एक सुंदर टोकरी रख दी

और कहा, "वीणा, यह लो वंसीधर का प्रसाद।"

वीणा ने टोकरी का ढक्कन खोला और चकित होकर बोली, "पिताजी, यह मोहनथाल, यह सुखड़ी, यह ठोर—वाह, कितना बढ़िया प्रसाद है। आप हर बार वृंदावन से प्रसाद लाते हैं, किंतु ऐसा प्रसाद कभी नहीं लाये।"

तानसेन ने हँसकर कहा, "बेटी, ऐसा प्रसाद देनेवाला आजतक कोई मिला नहीं था।"

"इस बार कौन मिल गया ? मुझे तो लगता है कि आपके संगीत पर प्रसन्न होकर साक्षात् वंशीधर ने अपने आगे रखा हुआ भोग का पूरा थाल आपको दे दिया।"

"हां बेटी, इस बार वंशीधर बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने और भी जो दिया है उसे देखो।" यह कहकर तानसेन ने बारीक नक्काशी के काम वाली चंदन की डेढ़ बालिश्त आयताकार पेटी उसके आगे रख दी।

वीणा ने विस्मित होकर पूछा, "यह किसने दी ?"

"खोलकर तो देख।"

धीरे से ढक्कन खोला तो सफाई से तहाई हुई नीबू के रंग की साड़ी देखकर वीणा उछल पड़ी, "पिताजी, यह तो पटोला है, पाटण का नामी पटोला।"

"तूने कैसे जाना ?"

"वेहट में दादी के पास नीले रंग का ऐसा ही एक बहुत पुराना पटोला है। किंतु वह इतना कीमती नहीं। दादाजी हाटकेश की यात्रा पर गये थे, तब दादी के लिए लाये थे।"

"ओह, इसीलिए पहचान गई।"

"पिताजी, आप हाटकेश की यात्रा पर गये थे ?"

"हां !"

"वहीं से यह पटोला मेरे लिए लाये हैं ?"

"तेरी दो बहनों ने तुझे सौगात भेजी है।"

वीणा ने साड़ी हाथ में ली और दबाई तो आसानी से मुट्ठी में भर गई। बोली, "वाह, कितनी सुंदर और मुलायम ! पिताजी मेरी ये बहनें कौन हैं ?"

"बहुत बड़े घर की बेटियां और उतने ही बड़े घर की बहुएं भी हैं।"

"नाम क्या हैं ?"

वीणा की बहनों का नाम और क्या होगा ? एक का सारंगी, और दूसरी का सितार।" तानसेन ने हँसते हुए कहा।

वीणा ने भी हँसकर पूछा, "मेरी ये बहनें सितार और सारंगी बजाने में भी पटु होंगी ?"

तानसेन ने मुस्कराकर बात टाल दी। बोला, "वीणावादन में तेरे समान प्रवीण नहीं हैं।"

तभी बाहर के आंगन में किसी के पैरों की आहट हुई। तानसेन बोलता-बोलता एकदम रुक गया।

पैरों की आवाज सुनकर वीणा ने हँसते हुए कहा, "पिताजी, आपके जमाई लौट आये हैं। अच्छा ही हुआ कि जल्दी आ गये। अब ससुर जमाई की मुलाकात हो जायगी, नहीं तो कल सवेरे वे यहां होते और आप आगरा के रास्ते। दो-एक दिन रुक जाइए न पिताजी, आराम कर लीजिए। जरूरी हो तो..."

"नहीं बेटी, आगरा छोड़े बहुत दिन हो गए। रुक नहीं सकता।"

इतने में सदारंग अंदर आ गया। तानसेन दरवाजे की ओर पीठ किये बैठा था। यात्री-वेश में अपने ससुर को वह पहचान नहीं पाया। दिल्ली में जैसी बड़ी मस्जिदें थीं, वैसे ही भव्य मंदिर भी थे। अकबर बादशाह की ओर से दिल्ली और आगरा दोनों नगरों में साधु-फकीर यात्रियों के लिए विश्राम का सुंदर प्रबंध था। यमुना-किनारे साधुओं के अनेक आश्रम थे। साधु-यात्रियों का आवागमन होता रहता था। राजा की ही तरह प्रजा के द्वारे आये हुए साधु-फकीर यात्रियों को निराश नहीं होना पड़ता था। सदारंग का घर भी इसका अपवाद नहीं था।

प्रवेश-द्वार में घुसते ही एक बड़ा चौक था। कोई भी यात्री-याचक उस चौक की सीमा से आगे नहीं जाता था। दान-पात्र में कुछ डाले जाने तक वह उसी चौक में एक पत्थर की चौकी पर बैठा रहता। इन याचकों के के लिए वहां पानी का एक मटका भी रखा था। भिक्षा पाकर याचक लौट जाता था। लेकिन इस समय रात्रि में चौक की सीमा के पार अंदर के दालान में एक यात्री को निश्चित होकर वीणा से बात करते देखा तो सदारंग का पारा गरम हो गया। आंखें तरेरकर उसने वीणा की ओर देखा।

वीणा को हँसी आ गई। अपने चेहरे पर भक्ति का पुट लगाकर उसने पूछा, "इनको आपने पहचाना नहीं ?"

सदारंग आगे बढ़कर यात्री के सामने आया, फिर जोर से हँसकर बोला, "पिताजी, आप कब आये ?" उसने झुककर ससुर को प्रणाम किया और पूछा, "आपकी यात्रा कैसी रही ?"

"बहुत अच्छी, खूब आनंददायी।"

सदारंग ने वीणा की ओर देखते हुए कहा, "मेरे साथ सरफुद्दीन भी आया है। बाहर बैठा है। उसको अंदर बुलाता हूं। हम दोनों साथ ही भोजन करेंगे।"

"ठीक है, मैं भोजन की व्यवस्था करवाती हूं। तबतक आप दोनों पिताजी का लाया हुआ प्रसाद लें।" वीणा पटोले की पेटी और प्रसाद की टोकरी लेकर अंदर चली गई।

सदारंग वहीं से चिल्लाया, "अरे सरफुद्दीन, अंदर आ जा भाई!"

सरफुद्दीन जैसे ही भीतर आया, सदारंग ने उससे कहा, "सरदार, वृंदावन से बहुत बड़े साधु आये हैं। उनका आशीर्वाद ग्रहण कर। तेरे मन की इच्छा पूरी होगी।"

साधु पर नजर पड़ते ही सरफुद्दीन को हँसी आ गई। मस्तक टिका-कर बोला, "चाचाजी का आशीर्वाद तो हमेशा मेरे साथ है। मगर चाचाजी, इस वक्त आपको पहचानने के लिए शर्त ही बदनी होगी।

आपकी रोजमर्रा की जरीदार दरबारी पोशाक..."

तानसेन ने बात काटकर हँसते हुए कहा, "बेटा, आदमी को एक बार इन कपड़ों की लगन लग जाती है तो शाही दरबार की जरीदार पोशाक फीकी मालूम पड़ने लगती है।"

दोनों मित्र तानसेन के पास बैठ गए और उसकी यात्रा का वर्णन सुनने लगे। बातों ही बातों में सरफुद्दीन ने कहा, "मुझे भी अब सफर का मौका मिलनेवाला है। हम जल्दी ही गुजरात की ओर कूच करेंगे।"

"क्यों ? क्या बादशाह सलामत तुम्हें फौज के साथ भेज रहे हैं ?"

"जी हां, मगर यह मुहिम जंग की नहीं है। मेरे बड़े अब्वाजान खानखाना साहब गुजरात के पाटण में इंतकाल फरमा गए।"

सदारंग ने पूछा, "अरे, कैसे ? तुमने कुछ बताया नहीं।"

"बताता कहां से ? मौका ही नहीं मिला। दाने अब्बा मक्का शरीफ जाने के लिए खंभात की तरफ तशरीफ ले गए थे। मगर वहां पहुंचने के पहले ही पाटण के करीब अल्लाह को प्यारे हो गए। बादशाह आलम को उन्होंने पेट के बच्चे की तरह पाला था।"

तानसेन ने कहा, "हां-हां, तेरे मिर्जा चाचा से हम इस बारे में सुन चुके हैं।"

"चाचा बहुत चाहते थे कि जहां अब्बाजान को दफनाया गया, वहां एक शानदार मकबरा तामीर किया जाय। मगर बादशाह सलामत लगातार किसी-न-किसी मुहीम पर रहे, इस सबब से बात टलती रही। चाचा ने बादशाह सलामत के रूबरू दो-तीन बार अपनी ख्वाहिश जाहिर भी की। अब कहीं जाकर मौका आया है। पिछले दिनों खुद हुजूर बादशाह ने चचीजान को खिदमत में बुलाया और मकबरा तामीर करने का मुबारक हुक्म फरमाया। इस सिलसिले में गुजरात के सुल्तान मुजफ्फरखान के पास शाही खरीता भी भेज दिया गया है। वहां से जवाब आते ही मैं यहाँ से आदमी, मेमार वगैरह को लेकर निकलूंगा। गुजरात की खूबसूरती की बड़ी तारीफ सुनी है। एक बार अपनी आंखों उस इलाके

को देखने की तमन्ना थी। अब इंशाअल्लाह वह पूरी होगी।"

सरफुद्दीन संगीत का शौकीन था। इसीलिए सदारंग से उसकी मैत्री हुई थी। जितना संगीत का शौकीन उससे कहीं ज्यादा सौंदर्य-लोलुप था। स्वयं भी सुंदर था।

उसके परिवार का बादशाह के घराने से निकट संबंध था। अकबर को उन्नति के शिखर पर पहुंचानेवाले बहरामखान का पोता होने के कारण शाही महलों में भी उसका आना-जाना था। अंबर की राजकन्या अकबर की बड़ी बेगम बनकर जब शाही हरम में दाखिल हुई तो कई यवन सरदारों के मन में हिन्दू-राजकन्याओं से विवाह करने की इच्छा जाग उठी। सरफुद्दीन इसी कोटि के यवन सरदारों में से था।

थोड़ी देर बाद सदारंग के साथ वह भोजन करने चला गया।

दूसरे दिन तानसेन ने आगरा के लिए प्रस्थान किया। जाने से पहले उसने वीणा को एक ओर ले जाकर धीरे से कहा, "बेटी, पाटोला भेजने वाली अपनी दोनों बहनों की बात मन-की-मन में रखना, किसी से कहना मत।"

पंद्रह

सोमनाथ और काशी-विश्वेश्वर की यात्रा पर गये हुए नीलकंठराय और उनके साथी आज सवेरे लौट रहे थे। शुभ मुहूत में जिस यात्रा का प्रारंभ हुआ था, उसकी समाप्ति भी शुभ मुहूर्त में होने जा रही थी। वैसे तो यात्री-दल एक दिन पहले दोपहर में ही लौट आया था, किन्तु नगर-प्रवेश शुभ मुहूर्त में ही होना चाहिए, इसलिए वे लोग एक कोस दूर धर्मशाला में ठहर गये थे। मंडलेश्वर के कुल पुरोहित वहां पहुंच गए और उन्होंने बताया कि कल सवेरे शुभ मुहूर्त है, उसी समय नगर-प्रवेश करना उचित होगा।

खूब वर्षा होने के कारण नगर के आसपास के प्रदेश में दूर तक हरियाली छायी हुई थी। शर्मिष्ठा तालाब लबालब भर गया था। जो लोग गांव छोड़कर चले गए थे, उनमें से कई लौट आये थे, कई धीरे-धीरे लौट रहे थे। खाली घर लोगों से आबाद हो गए थे। दूध-दही, सब्जियां, फल आदि की प्रचुरता हो गई थी। उजड़े हुए बाजारों में धीरे-धीरे रौनक छाने लगी थी। मंडियों में माल के ढेर दिखाई देने लगे थे। अकाल के समय का अस्तव्यस्त जीवन पुनः व्यवस्थित हो चला था।

नगर में मंडलेश्वर नीलकंठराय के स्वागत की तैयारियां जोरों पर थीं। बस्ती में स्थान-स्थान पर स्वागत-द्वार बनाये गए थे। दरवाजों के तोरण हवा के झोंके में झूम रहे थे। नगर के सभी रास्तों की सफाई और सजावट का काम चल रहा था। महिलाओं ने अपने-अपने दरवाजों पर रांगोली मांड़ी थी। घर-घर आरती के लिए दिये तैयार कर लिये गए थे। मंगलकलश निकाल कर साफ किये गए और पुनः चित्रकारी कर उन्हें स्थापित कर दिया गया।

हाटकेश के मंदिर में आधी रात से ही अभिषेक शुरू हो गया था। शहनाईवाले सुबह बहुत जल्दी आकर दिल्ली दरवाजे की ड्योढ़ी पर बैठ गए थे और मंगल स्वर छेड़ रहे थे।

मंडलेश्वर की हवेली पर सबसे ज्यादा धूमधाम थी। सास-ससुर और पति-देवर लौट रहे थे, इसलिए ताना और रिरी चार दिन पहले ही ससुराल आ गई थीं। नौकर-चाकर दिन-रात का खयाल किये बिना काम में लगे थे। पिछले पांच-छः महीनों से सोयी पड़ी हवेली जाग उठी थी। खूब चहल-पहल हो रही थी। घर का हर व्यक्ति और सभी नौकर-चाकर जानते थे कि मंडलेश्वर नीलकंठराय बड़े अनुशासन-प्रिय हैं। वास्तव में वे कठोर शासक नहीं थे, दयालु और सहिष्णु थे। परंतु उन्हें कामचोरी अच्छी नहीं लगती थी और न वे किसी पर अन्याय किया जाना ही बर्दाश्त कर सकते थे। इसलिए सब नौकर खूब मन लगाकर और स्फूर्ति से काम कर रहे थे।

ताना-रिरी ने अपने-अपने प्रकोष्ठ सुंदरता से सजाये थे। शुभागमन के दिन सवेरे जल्दी उठकर दोनों बहनें तैयार हो गईं। दादा के स्वागतार्थ जाने की उत्सुकता में मृत्युंजय बड़े सवेरे उठ गया था। ताना उसे कपड़े पहना रही थी। वह ठुनककर बोला, "बड़ीबेन, यह जरी का अंगरखा और मखमली टोपीवाली दरबारी पोशाक मुझे नहीं चाहिए।"

"तो क्या पहनेगा ? दादाजी के स्वागत के लिए नहीं जाना है?"

"जाना क्यों नहीं है ! इसीलिए तो कह रहा हूं कि ये कपड़े मुझे नहीं चाहिए।"

"फिर कौन से कपड़े चाहिए ?"

"मैं तो वीर-वेश धारण करूंगा।"

"पागल हुआ है ? वीर-वेश इस समय ?" ताना ने आश्चर्य से कहा।

"मैं तो दादाजी का स्वागत करने वीर-वेश में ही जाऊंगा।"

ताना को उसकी हठ माननी पड़ी। मृत्युंजय ने तुरंत आवाज दी, "कानजी भा !"

मृत्युंजय की टहल करनेवाला सेवक कानजी कमरे के बाहर अदब से खड़ा था। उसका मजबूत सीधा शरीर इस हवेली की नौकरी में ही झुक गया था। कानजी ने लोकेश को भी बचपन में गोद खिलाया था। अब वह मंडलेश्वर के भावी उत्तराधिकारी की टहल में था। मृत्युंजय पर वह प्राण छिड़कता था। बुढ़ापे के कारण वात्सल्य भाव में एक प्रकार के पागलपन का समावेश हो जाता है। कानजी मृत्युंजय को एक क्षण भी अपने से अलग नहीं करता था। 'जयराम' तो भक्त के भगवन्नाम की तरह चौबीसों घंटे उसके मुह में बसा रहता।

"होकम !" कानजी दरवाजे में दौड़ा आया। जब उसे अधिक प्यार उमड़ता तो वह मृत्युंजय को 'होकम' कहकर संबोधित करता था।

"पेटी में से मेरी पोशाक लाओ।"

कानजी भागा गया और कपड़ों की पेटी ही उठा लाया। उसे ताना के सामने रखकर ढक्कन खोल दिया और फिर अदब से दूर खड़ा हो गया।

ताना ने पेटी में से मृत्युंजय के कपड़े निकाले। उसे चूड़ीदार पाजामा और जरी के बूटोंवाली जामुनी रंग की फतूरी पहनाई। ऊपर शरबती रंग का अंगरखा चढ़ा दिया। कमर में गुलाबी रंग का दुपट्टा लपेटा। सिर पर आसमानी रंग का रेशमी साफा बांधा। पांव में जरी के काम की जूतियां पहनाईं। मृत्युंजय ने रत्नजड़ित मूंठ वाली अपनी छोटी-सी कटार कमर में खोंसी और तनकर खड़ा हो गया।

ताना ने प्रशंसा-भरी निगाहों से उसे देखा। वह हूबहू लोकेश-जैसा दिखाई दे रहा था, मानो लोकेश की छोटी मूर्ति ही हो। वह बोली, "खूब जंच रहा है रे! मैं बलैयां जाऊं, पाटण की गद्दी पर शोभा पाने-जैसा लग रहा है। क्या इसी ठाठ से दादाजी का स्वागत करने जायगा?"

"हां, सबसे आगे रहूंगा। दादाजी के सामने जाकर इस तरह मुजरा करूंगा और कहूंगा, "पधारो महामंडलेश्वर, यह छोटा मंडलेश्वर आपका स्वागत करता है!"

कानजी की ओर देखता हुआ वह बिना रुके पूरा वाक्य बोल गया तो ताना समझ गई कि सब कानजी की सिखावन है।

वात्सल्य से भरकर उसने उसे पास खींच लिया, बलैया लीं और दोनों मुट्ठियां उसकी कनपटियों पर दबाकर बोली, "अला-बला टले, तुझे किसी की नजर न लगे।"

नीलकंठराय ने बड़नगर के भयंकर अकाल, बेहिसाब मवेशियों के दम तोड़ने, लोगों के नगर छोड़कर जाने आदि समाचार सोमनाथ में ही सुन लिये थे। वर्षा के लिए उन्होंने सोमनाथ में अनुष्ठान भी किया था और वर्षा होने के समाचार उन्हें जूनागढ़ से रवाना होने के पूर्व ही मिल गए थे।

कल जब वे अपने काफिले के साथ बड़नगर से पांच कोस की दूरी पर पहुंचे तो वर्षा से भीगे सारे इलाके के खेतों में गीत गाते हुए काम कर रहे किसानों और मिलने के लिए आये हुए लोगों के प्रसन्न चेहरों ने उन्हें

आश्वस्त कर दिया कि अकाल का संकट समाप्त हो गया। नगर के बाहर एक कोस पर बनी हुई धर्मशाला में उनके ठहरने की व्यवस्था की गई थी। वंसीकाका ने मंडलेश्वर के पद-गौरव के उपयुक्त सारा प्रवंध वहां कर दिया था। नगर के कुछ पुराने और परिचित लोगों को भी रात में साथ देने के लिए वहां भेज दिया गया था।

नीलकंठराय रात देर तक उनसे बातें करते रहे। अकाल के बारे में उनसे पूरी जानकारी ली और अकाल दूर करने के उपायों के बारे में पूछताछ भी की। सभी ने विभिन्न उपायों का विस्तार से वर्णन किया। वताते समय शैवों और वैष्णवों में होड़-सी लग गई। शैवों में विशेषरूप से वड़ा जोश था। वे सप्रमाण जोर देते रहे कि उन्हींके उपायों से हाटकेश प्रसन्न हुए। मंडलेश्वर स्वयं भी शैव थे, इसीलिए शैवों का पलड़ा भारी पड़ रहा था। उस समय वहां शैवों का संख्यावल भी अधिक था।

वैष्णवों ने भी हाटकेश्वर को प्रसन्न करने के लिए जो प्रयत्न किये थे, उनका ब्यौरा मंडलेश्वर के सामने प्रस्तुत किया, लेकिन दवी जवान से ही। जोर से कहते तो भी संदेह तो था ही कि सोमनाथ की यात्रा से लौटे शिवभक्त मंडलेश्वर के कानों में उनकी वात शायद ही पहुंच पाती। वहुओं ने इंद्र देवता के आह्वान के लिए जो व्रत किया था, उसकी बात भी एक उत्साही शैव ने मंडलेश्वर को बता दी। इस तरह सारी रात बातें होती रहीं।

अंदर के दालान में मायागौरी को घेरकर नगर की महिलाओं का दरबार लगा था। उनमें भी यही बातें हो रही थीं। ताना-रिरी और नगर की अन्य कन्याओं ने जिस लगन से हाटकेश्वर का अभिषेक-जल भरा था उसका उल्लेख यहां भी हुआ। सुनकर एक महिला यह टिप्पणी किये बिना न रह सकी, "दूसरी लड़कियों के और ताना-रिरी के व्रतों में बड़ा अंतर था।"

इसपर एक अन्य महिला ने कहा, "अंतर तो होगा ही। कहा है न कि गढ़ों में चित्तौड़गढ़ बाकी सब गढ़ैया। सच, गौरीबेन, यों इस तरह

के व्रत तो अपने गांव में होते ही रहते हैं, पर ताना-रिरी ने जैसा व्रत किया उसकी कोई तुलना नहीं।"

बूढ़ी समरथकाकी ने समर्थन किया, "सच ही कह रही हैं मंगूबेन। मेरी उम्र अस्सी की हुई, किंतु आज तक किसी को ऐसा व्रत करते नहीं देखा।"

मायागौरी को उत्सुकता हुई। पूछा, "मेरी बहुओं के व्रत में ऐसी क्या विशेषता थी ?"

"सुनो, बताती हूं। बहुत बरस पहले सौराष्ट्र में ऐसा ही भयंकर सूखा पड़ा था। सर्वत्र त्राहि-त्राहि मच गई थी, उस समय जूनागढ़ के राय को स्वप्न में आदेश हुआ कि महान वैष्णव-भक्त नरसी मेहता द्वारा मेघ-मल्हार के स्वरों से अभिमंत्रित जल लाकर उससे सोमनाथ का अखंड अभिषेक करो। राय ने नरसी भक्त को बुलाकर सपने की बात कही। भक्तराज ने हँसकर कहा, जय राधाकृष्ण ! शिव और विष्णु की भेंट का योग आ रहा है। बड़े भाग्य की बात है। और दूसरे ही दिन से नरसी मेहता ने नदी के जल में घड़े डुबोकर मेघ मल्हार के स्वर निकालना आरंभ कर दिया। ग्राम-कन्याएं उन घड़ों को सोमनाथ के अभिषेक-पात्र में खाली करने लगीं। सात दिन तक यह क्रम चला। आठवें दिन मूसला-धार वर्षा हुई।"

मायागौरी ने हँसकर कहा, "यह तो मैंने भी सुना है; पर मेरी बहुओं के व्रत का इससे क्या संबंध ? मुझे तो यह बताओ कि उनका व्रत क्या था ?"

"वही व्रत तो उनका भी था, मेघ मल्हार का व्रत ! अपने शर्मिष्ठा तालाब के जल में रोज सवेरे घड़े डुबोकर सातों दिन वे मेघ मल्हार के स्वर पैदा करती रहीं।"

मायागौरी और उनके साथवाली महिलाएं साश्चर्य सुनती रहीं। सभी जानती थीं कि मंडलेश्वर घराने की दोनों बहुएं संगीत में प्रवीण हैं, पर संगीत के ऐसे अद्भुत चमत्कार की बात उन्होंने इससे पहले कभी

देखी-सुनी नहीं थी।

"मायावेन, अकाल खत्म हुआ, सुख के दिन आये, यह मंडलेश्वर घराने की पुण्याई और तुम्हारी दोनों वहुओं के व्रत का ही प्रताप है। ताना-रिरी की कठिन तपस्या से ही भोलानाथ प्रसन्न हुए।" मंजुबेन ने अपनी वात समाप्त की।

वाहर पुरुष-मंडली में मंजुवेन का पति जेठालाल भी वार-वार यही वात दोहरा रहा था। लोकेश और महेश वहीं वैठे थे। अपनी पत्नियों के चमत्कार का वर्णन सुनकर दोनों भाइयों के सीने फूले न समा रहे थे। वार-वार उनके मन में आता रहा, प्रकृति की अंध-शक्तियों को चुनौती देनेवाली नारियों की भक्ति कितनी दृढ़, उदात्त और विलक्षण होती है।

× × ×

दूसरे दिन सवेरे सारा बड़नगर यात्रा-मंडली के स्वागत के लिए दिल्ली दरवाजे पर जमा हुआ। चारों ओर की शोभा और सजावट को मुग्ध दृष्टि से देखते हुए नीलकंठराय सहयात्रियों के साथ नगर-द्वार पर पहुंचे। मंगलवाद्य बजने लगे। शहनाई गूंज उठी। चित्रालेखित जलकलश सिर पर रखे कुमारियां और सुहागिनें मंगल गीत गाने लगीं। हाथों में पंच-आरती लिये फाटक के वाहर खड़ी प्रौढ़ा सुहागिनें सन्नद्ध हो गईं।

जैसे ही नीलकंठराय पास आये, वंसीकाका ने आगे बढ़कर हाथ जोड़े और अभिवादन किया, "जय हाटकेश!"

नीलकंठराय ने उनका आलिंगन करते हुए कहा, "जय हाटकेश! जय राधा-कृष्ण!"

सुननेवालों को अपने कानों पर विश्वास नहीं हुआ। सोचने लगे, कहीं गलत तो नहीं सुन लिया?

वंसीकाका किलक उठे, "जय राधाकृष्ण!"

तभी अपने नाना के पीछे खड़ा नन्हा मृत्युंजय आगे आया। वीर-वेश में सज्जित उस राजसी बालक की ओर सभी की टकटकी लग गई।

उसे देखकर नीलकंठराय का वात्सल्य उमड़ पड़ा। दो कदम आगे

आकर वे गोद में लेने के लिए झुक ही रहे थे कि मृत्युंजय बोल उठा, "ठहरिए दादाजी।" इतना कहने के बाद पहले तनकर खड़ा रहा, फिर आदर से झुककर उसने नीलकंठराय का मुजरा किया और बोला, "पधारो महामंडलेश्वर ! यह छोटा मंडलेश्वर आपका स्वागत करता है।"

उसके ये ठाठ देखकर सभी मुस्करा दिये। नीलकंठराय के हृदय में वात्सल्य हिलोरें लेने लगा। उन्होंने पोते को उठाकर छाती से लगा लिया और बोले, "अमर हो बेटा।" फिर प्रसन्न स्वर में लोगों से कहा, "अब मुझे वानप्रस्थ स्वीकार करने में कोई आपत्ति नहीं।"

लोकेश ने हँसकर पुत्र से कहा, "छोटे मंडलेश्वरजी, यह वीर-वेश पहनने के बाद तो युद्ध करना पड़ता है।"

"युद्ध तो करूंगा ही।"

"किससे युद्ध करोगे ?"

"आक्रमणकारी यवनों से। यों कटारी निकालकर लड़ूंगा।" कमर से कटार खींचकर हवा में घुमाते हुए उसने कहा।

नीलकंठराय ने सोचा कि जिस कार्य के लिए यात्रा को निमित्त बनाकर गये थे, उसका शुभारंभ होता दिखाई देता है।

वहां से वे आगे बढ़े। सभी ने उनका स्वागत किया। मधुर स्वरों में मंगलवाद्य बजने लगे। मंगलकलशों के जल से वरीयता और सम्मानानुक्रम से यात्रियों के पांव पखारे गए। सुहागिनियों ने आरती उतारी। तीर्थयात्रियों के पांव छूने के लिए नागरिक स्त्री-पुरुषों में होड़ लग गई। सभी की यह मान्यता थी कि जो काशी नहीं गये वे काशी-यात्रा से लौटे तीर्थयात्रियों के पांव पूजकर काशी जाने का पुण्यार्जन कर लेते हैं।

थोड़ी ही देर में यात्री-दल बिखर गया। सब अपने-अपने घर चले गए।

नीलकंठराय अपने कुटुम्बियों के साथ हवेली में आये। हवेली के प्रवेशद्वार पर पुनः वे सब औपचारिकताएं दुहराईं। जो लोग घर तक पहुंचाने के लिए साथ आये थे, उन्हें उन्होंने प्रवेशद्वार पर विदा दी।

× × ×

लोकेश और महेश अपने-अपने निवास कक्षों की ओर चले गए। लोकेश जैसे ही द्वार पर पहुंचा, ताना पंच-आरती ले आई और उसने उसकी आरती उतारी। पत्नी के हाथ से पंच-आरती का थाल लेकर कक्ष के अंदर जाते हुए लोकेश ने हँसकर कहा, "तानादेवी, पुरुष लड़ाई के मैदान में वीरता दिखाकर विजयी होकर लौटते हैं तब महिलाएं आरती उतारकर उनका स्वागत करती हैं। मैं कौन-सा पराक्रम करके लौटा हूं, जो तुम मेरी आरती उतार रही हो ?"

ताना के अधरों पर हँसी खेल गई। बोली, "आरती केवल पराक्रम करके लौटनेवालों की ही नहीं उतारी जाती, आरती तो .."

लोकेश ने बात काट दी, "हां, यह पंच-आरती तो वास्तव में घर पर रहकर रणभूमि से भी बड़ा पराक्रम कर दिखानेवाली वीरांगना के के लिए है। जिस देवी ने अनुपम चमत्कार कर दिखाया, उसकी आरती उतारने का परम सौभाग्य आज मुझे प्राप्त हुआ है।"

यों कहते हुए लोकेश ताना की आरती उतारने लगा। आरती के पंचदीपों के मंजुल प्रकाश से आलोकित रक्ताभायुक्त उसके सुंदर चेहरे पर लोकेश की दृष्टि स्थिर होकर रह गई। विस्फारित नयनों से वह उसे देखता ही रहा। सदा के परिचित चेहरे का सौंदर्य आज कुछ विलक्षण ही लग रहा था। सौंदर्य की ऐसी अनुपम छटा तो उसने पहले कभी नहीं देखी थी। आंतरिक तृप्ति से उद्भासित तेजस्विता उस मुखमंडल को एक अनोखी सौंदर्य-श्री से मंडित किये हुए थी। वह रूप किसी मानवी का नहीं, देवी का लग रहा था। अकाल-ग्रस्त नगर का कल्याण करनेवाली देवी के आत्मसंतोष और परमानंद की दिव्य छटा का प्रतिबिंबन सुकुमार नारी-सौंदर्य को गरिमामंडित कर रहा था।

पति की उस अपलक दृष्टि से मुग्ध ताना क्षणार्ध में ही संकुचित हो उठी। उसके लाल कपोल लज्जा की अरुणिमा से और भी रक्ताभ हो गए। गर्दन झुकाकर उसने फौरन पति के हाथ से आरती का पात्र ले

लिया और भीतर चली गई। लोकेश ने उसका अनुसरण किया और अपने लिए सजाये हुए झूले पर बैठ गया। आरती का थाल देवालय में रखकर वह लौट आई और पति की बगल में बैठती हुई बोली, "काफी तीर्थाटन करके लौटे हो, जगह-जगह देवी-देवताओं के दर्शन किये हैं, क्या इसीलिए साधारण मनुष्यों में भी तुम्हें देवता के दर्शन होने लगे हैं ?"

"तुम सच ही कह रही हो, ताना ! जानती हो देवता किसे कहते हैं ?"

हँसकर उसने कहा, "आप यात्रा करके लौटे हैं। आप ही अधिकार-पूर्वक बता सकते हैं। मैं भला क्या बता सकूंगी।"

लोकेश ने ताना की ठुड्डी उठाकर उसकी आंखों में देखते हुए कहा, "जिस सामान्य जन में अलौकिक देवत्व दिखाई दे, उसीको देवता कहते हैं।"

ताना का गोरा, सुंदर चेहरा प्रसन्न मुस्कराहट से दीप्त हो गया। उसे पता चल गया था कि दोनों बहनों के मेघ मल्हार-संयुक्त जल के घड़ों की कथा सभी तीर्थयात्रियों को नगर-प्रवेश के पहले ही सुनने को मिल चुकी है।

लोकेश ने आगे कहा, "मैं तीर्थयात्रा पर न गया होता तो रोज सवेरे उस मंगल बेला में शर्मिष्ठा के घाट पर बैठा घड़ा भरते समय के तुम्हारे सुर-चमत्कार को अपने कानों से सुनकर धन्य होता। यात्रा पर चले जाने से उस दिव्य अनुभव से वंचित रह जाना पड़ा।

दिव्यानुभव के स्वर्गिक क्षण ! ताना की आंखों के सामने आधी रात की वह संगीत गोष्ठी मूर्त्तिमंत हो गई। स्वयं तानसेन उस गोष्ठी में उपस्थित थे। बड़नगर में किसीको उसकी भनक भी नहीं पड़ने दी गई। बंसीकाका ने सबसे छिपाकर रखा था। ड्योढ़ी के पहरेदार को सिर्फ इतना ही मालूम था कि मथुरा-वृंदावन की ओर से कोई यात्री हाटकेश के दर्शनों के लिए आया था और दूसरे ही दिन सुबह लौट गया। वृंदा-वन का वह यात्री कौन था, यह किसी को भी मालूम नहीं हो सका था।

सोलह

सर्दियां शुरू होते ही सरफुद्दीन गुजरात जाने की तैयारियों में लग गया। मकबरा बनने में आठ-दस महीने से कम वक्त तो लगना नहीं था, इसलिए अगले साल की बरसातें खत्म होने तक उसे गुजरात में रहना होगा, इस बात को ध्यान में रखकर ही सारी तैयारियां की जा रही थीं। बादशाह के स्थपति मेमारे आज़म ने मकबरे का नक्शा तैयार कर दिया था। शाही खजाने से खर्च की व्यवस्था हो गई थी। कारीगर, इंतजाम-कार और नौकर-चाकर मिलाकर पच्चीस लोगों का काफिला था। उनमें से कुछ लोग काम पूरा हो जाने के बाद वहीं से खंभात के समुद्री रास्ते हज पर जानेवाले थे। सरफुद्दीन के साथ उसका हमउम्र ममेरा भाई जलालुद्दीन भी था।

यात्रा पर रवाना होने से पहले सरफुद्दीन बादशाह से मिलने के लिए गया। बादशाह ने कहा, "सरफ़ुद्दीन, हमने सुना है कि गुजरात का इलाका बहुत सरसब्ज और मालदार है।"

"जी, खुदावंद। जितना जरख़ेज़ और मालदार, उतना ही खूबसूरत भी है। हुजूर के हुक्मे इनायत से खादिम को वहां जाने का मौका मिला, इसे वह अपनी खुशकिस्मती और बादशाह सलामत का रहमोकरम मानता है।"

अकबर हँस दिया।

कुछ रुककर सरफुद्दीन ने आगे कहा, "बंदापरवर, गुस्ताखी माफ। गुलाम यह अर्ज किये बिना नहीं रह सकता कि इतना मालदार और खूबसूरत इलाका शाही तख्तोताज की मातहती में रहना चाहिए। हुजूर के इकबाल का परचम ठेठ खंभात के समंदर तक लहराना चाहिए।"

अकबर खिल उठा, हँसकर बोला, "बरखुरदार, धीरज रखो। यह

भी होकर रहेगा। अगले साल अकबरी रिसाला गुजरात पर कूच बोलेगा।"

"गरीबपरवर, हुजूर का यह खादिम गुजरात जा रहा है। वहां इसके लायक कोई खिदमत..."

अकबर क्षणभर उसकी ओर देखता रहा। फिर हँसकर बोला, "अहमदाबाद में इस वक्त अंदरूनी गड़बड़ चालू है। वहां के असली हालात और वारदात पर बारीकी से निगाहें रखना और सही-सही जानकारी हासिल करते रहना।"

"जहांपनाह का हुक्म सिर-माथे। गुलाम इस काम को बाखूबी अंजाम देगा।"

निजी कौटुम्बिक काम के साथ जासूसी करने का राजकीय काम हाथ में लेकर सरफुद्दीन गुजरात के लिए रवाना हुआ। इस नये सरकारी काम के कारण जहां उसके अधिकार बढ़े, वहीं ज़िम्मेदारी भी बढ़ गई थी।

मंजिलों पर मंजिलें तय करता वह गुजरात पहुंचा। उसके पास बादशाह का खरीता और अहमदाबाद के सुल्तान का परवाना होने के कारण किसी तरह की दिक्कत नहीं हुई।

× × ×

माघ का महीना शुरू हुआ और वह गुजरात की सीमा पर पहुंच गया। तेज ठंड पड़ने लगी थी। अब दोपहर की धूप में भी उतनी तेजी नहीं थी—वह शरीर को कोमल और आरामदायक लगने लगी थी। रास्ते में जगह-जगह छोटे-छोटे गांव पड़ते। दोनों ओर दूर-दूर तक हरे-हरे खेत और फल-फूलों से भरे बगीचे दिखाई देते। चूड़ीदार पाजामे और सलवटदार अंगिया पहने, सिर पर साफा बांधे गुजराती किसान और रंग-बिरंगे वस्त्रों में सजी हुई उनकी औरतें खेतों में काम करती हुई दिखाई देतीं।

दिनभर की मंजिल के बाद, शाम को किसी गांव के करीब पेड़ के

नीचे सरफुद्दीन तंबू लगाकर मुकाम करता। उसके पड़ाव को देखते ही गांव में हलचल मच जाती कि अहमदाबाद के मुजफ्फरशाह की फौज आई है। तर्क-वितर्क शुरू हो जाते। दो-चार साहसी वीर घोड़े दौड़ाते हुए पड़ाव के तंबुओं के पास जाते, सही बात मालूम कर आराम की सांस लेते और शांति के साथ लौट जाते। खुद सरफुद्दीन उनके साथ गांव में जाता और मुखिया से भेंट करता।

अकबर के पराक्रम की ख्याति चारों ओर फैली हुई थी। चित्तौड़ की लड़ाई और वहां के नर-संहार ने दूर-दूर तक लोगों के मन में दहशत पैदा कर दी थी। लोगों के दिलों में अकबर के नाम का आतंक बैठ गया था। शाम को खेतों का काम पूरा करके लोग अलाव के पास गप्पें मारने बैठते तो अकबर के पराक्रम की सही-गलत कहानियां और दंत-कथाओं की चर्चा भी जरूर होती। उत्तराखंड के तीर्थों की यात्रा पर गांव का कोई-न-कोई जाता ही रहता था। लौटकर वह दिल्ली और आगरा के वैभव का अतिरंजित वर्णन कई-कई दिनों तक सुनाया करता।

अब उसी अकबर बादशाह का एक सरदार गुजरात देश देखने के लिए अहमदाबाद के मुजफ्फरशाह का मेहमान बनकर आया है, यह बात गांव में चारों ओर फैल जाती। शानदार अरबी घोड़े पर सवार सुंदर तरुण सरदार को देखने के लिए गांववालों की भीड़ उमड़ पड़ती। लड़के उसकी ओर अचरज से देखते। तरुण-मंडली इकट्ठा होते ही सरफुद्दीन हँसकर उनका स्वागत करता और गप्पें मारने लगता। बुजुर्गों के साथ वह अदब से पेश आता।

उसके इस व्यवहार से खुश होकर मुखिया गांववालों को हुक्म देता, "खानसाहब का मुकाम रहने तक उन्हें किसी तरह की तकलीफ नहीं होनी चाहिए।" फिर तो खान साहब के तंबू में दूध की गगरी, सब्जियों की टोकरी, चावल-आटा आदि तमाम जरूरी चीजें बिना मांगे ही पहुंचने लगतीं।

सरफुद्दीन खुश होकर अपने भाई से कहता, "जलालभाई, गुजरात की इस धरती की तरह यहां के लोग भी कितने जिंदादिल और पुर-मुहब्बत हैं। राहगीरों को भी इनके दान की खैरात मिलती है।"

जलालुद्दीन भी अपनी खुशी प्रकट करता, "वाकई इतने अच्छे-भले और भोले लोग दूसरी जगह कम ही दिखाई देते हैं।"

रात को बावर्चीखाने में तैयार तरह-तरह के भोज्य-पदार्थों पर हाथ साफ कर भरे पेट वे तंबू के बाहर अलाव जलाकर बैठ जाते। दूर गांव के दिये टिम-टिमाते हुए दिखाई देते। यहां-वहां जलते अलावों का प्रकाश आंख-मिचौनी-सी खेलता रहता। झांझ और करतालों की आवाज और गरवा-गीतों के स्पष्ट-अस्पष्ट स्वर रात्रि के उस शांत-गंभीर वातावरण में हवा पर तैरते हुए आते और मन-प्राणों पर छा जाते। उन्हें लगता, मानो वास्तविक संसार छोड़कर परियों के लोक में आ गए हों।

× × ×

हर पड़ाव के साथ सरफुद्दीन गुजरात की भूमि में आगे बढ़ता गया। एक शाम उसने सोमपुरा गांव के नजदीक मुकाम किया। यह गांव बीरम-गाम राज्य की जागीर में था। वहां के जागीरदार अपने को मंडलेश्वर कहते और उसी ठाठ से रहते थे। सत्ता के लोभ में गुजरात के जो छोटे-बड़े सरदार-जागीरदार घर के भेदिये बने और जिनके देशद्रोह के कारण गुजरात में यवनों की सल्तनत कायम हुई, उन राष्ट्रघातियों में सोमपुरा का जागीरदार सोमनाथराय भी था। मूलतः वह और नीलकंठराय एक ही घराने से थे। गुजरात के राजा ने जब नीलकंठराय के पूर्वज को बड़-नगर का मंडलेश्वर नियुक्त किया तो उसी घराने का एक चचेरा भाई सोमनाथराय ईर्ष्या से जल उठा। हाटकनाथ की भूमि और धन-धान्य से परिपूर्ण बड़नगर के मंडलेश्वर-पद पर राय घराने के बड़े भाई का बड़ा लड़का होने के नाते वह अपना अधिकार समझता था। उसने यह पद प्राप्त करने के लिए अच्छे-बुरे सभी रास्ते अपना देखे, लेकिन उन दिनों गुजरात का राजा बीरधवल जितना गुणग्राही था, उतना ही त्यागी भी था,

इसलिए सोमनाथराय की सारी कोशिशें बेकार हो गईं। अब तो उस स्वार्थी देशद्रोही ने बनावटी राजभक्ति का मुलम्मा उतार फेंका और सीधे वीरमगाम के बीरमराय की शरण में चला गया। घर का एक भेदिया दूसरे से जा मिला। बीरमराय बहुत खुश हुआ और उसने सोमनाथ को अपने राज्य में वीरमगाम के समीप एक छोटी-सी जागीर दे दी। सोमनाथराय ने उस गांव का नाम अपने ही नाम पर सोमपुरा रखा, उसका विकास किया और अपने को वहां का मंडलेश्वर कहने लगा।

उसीका वंशज रमणलाल इस समय वहां का जागीरदार था। उसके छोटे भाई का नाम कंचन था। कंचन का विवाह वड़नगर की रसीला से हुआ था। वह कभी-कभार अपनी ससुराल चला जाता। उसके भाई-बंद भी कभी-कभी हाटकेश के दर्शनार्थ वड़नगर पहुंच जाते थे। वहां नील-कंठराय की सत्ता और प्रभाव उसकी आंखों में कांटे की तरह चुभता था। यद्यपि कई पीढ़ियां गुजर गई थीं, सुलतानी शासन शुरू हो गया था, पुराने अधिकार छिनकर विदेशी गुलामी की मार पड़ रही थी, फिर भी रमणलाल की ईर्ष्याग्नि शांत नहीं हुई थी। रसीला के वहू बनकर आने के बाद तो पारस्परिक कटुता और द्वेष में और भी वृद्धि होती जाती थी। जब भी किसी उत्सव या समारोह में भाग लेने के लिए कंचन वड़नगर आता और वहां का वैभव देखता तो उसकी छाती पर सांप लोटने लगता। वड़नगर के मुकाबले उसे अपना सोमपुरा अति तुच्छ और नगण्य लगता। उसकी अपनी ही आंखों में अपना मंडलेश्वर-पद हास्यास्पद हो उठता। असत्य और द्वेष पर आधारित वह वैकुंठराय के घराने के कथित अन्याय का दंश उसे व्यथित कर देता और ईर्ष्या की आग हजार-हजार लपटों से जलने लगती।

वैसे दोनों घरानों में अब किसी प्रकार का संबंध नहीं रह गया था। यदि वड़नगर की लड़की सोमपुरा में न दी गई होती तो कंचन का बार-बार वड़नगर आना-जाना भी न होता। रसीला के मां-बाप की बड़ी इच्छा थी कि वड़नगर का भावी मंडलेश्वर उनका दामाद बने। परिवार

उनका भी सम्पन्न था। हर्षदराय का रेशमी कपड़े और हीरे, माणिक आदि रत्नों का पीढ़ियों से जमा हुआ अच्छा-खासा व्यापार था। रसीला बड़े घर की बेटी होने के कारण थोड़ी उद्धत, पर सुंदरी थी। अधिकांश को विश्वास था कि मंडलेश्वर की बड़ी बहू के रूप में उसीको पसंद किया जायगा। लेकिन जिस दिन गांव में यह सुना गया कि मंडलेश्वर की माता भक्तिबा ने खुद बंसीधर के यहां जाकर उनकी दोनों पोतियों को अपने पोतों के लिए मांगा है, रसीला की आशा भंग हो गई। अपमान के तीखे डंक ने उसके अहंकारी मन को लहूलुहान कर दिया। उसके थोड़े ही दिनों बाद वह सोमपुरा के जागीरदार के घर वहां के मंडलेश्वर की बहू बनकर चली गई।

रमणलाल के जासूसों ने उसे बताया कि गांव के बाहर यवनों की एक टुकड़ी ठहरी हुई है और दिल्ली से गुजरात के सुलतान के पास अहमदाबाद जा रही है।

उस समय गुजरात में चारों ओर गड़बड़ी मची हुई थी। राज्य टुकड़े-टुकड़े हो गया था और कई सरदार अलग-अलग अपना कब्जा जमाये बैठे थे। गुजरात के सुल्तान की सत्ता उलटने का समय आ गया था। खुद सुलतान को अपनी गद्दी कायम रहने का भरोसा नहीं था।

रमणलाल ने सोचा कि शायद परिस्थिति से मजबूर होकर सुल्तान दिल्लीपति से सांठ-गांठ कर रहा है और इसीलिए दिल्ली से यवनों की टुकड़ी आई है। सुल्तान के एक सेवक के नाते और अपनी जागीर को कायम रखने के खयाल से भी मेहमान की खातिरदारी करना उसने उचित समझा। इस संबंध में उस रात कंचन से उसकी बातचीत भी हुई।

× × ×

दूसरे दिन सुबह सरफुद्दीन अपने तंबू के बाहर खड़ा था। सामने दूर सोमपुरा दिखाई दे रहा था। अभी तक जो गांव रास्ते में पड़े थे उनसे यह गांव अलग ही मालूम पड़ता था। बाहर चारों ओर पत्थर का ऊंचा

परकोटा था, इसलिए अंदर का गांव दिखाई नहीं देता था। फिर भी विस्तार से यही लगता था कि जरूर कोई बड़ा गांव होना चाहिए। होगा किसी राजा का गांव। उसे गांव से कोई मतलब भी नहीं था, इसलिए पूछताछ की कोई आवश्यकता नहीं समझी। पिछले मुकाम पर खाने-पीने की काफी चीजें मिल गई थीं। बावर्ची नाश्ता बनाने में लगे थे और बाकी लोग अपना-अपना सामान संभालने में। सूरज निकल आया था। चारों ओर प्रकाश भरता जा रहा था। झाड़ियों में पक्षियों की चहचहाट शुरू हो गई थी। बीच में मोर की कर्कश आवाज सुनाई दे जाती थी। आकाश में बगुलों के दल-के-दल उड़े जा रहे थे। वह खड़ा चारों ओर की शोभा देख रहा था। तभी उसे गांव की ओर से तीन घुड़सवार सरपट आते दिखाई दिये। बीच वाला घुड़सवार, जो शानदार राजपूती वीर-वेश में था, उनका सरदार मालूम पड़ता था। उसकी कमर से तलवार लटक रही थी। उसके दोनों साथियों के हाथ में भाले थे। वे उसके सेवक लग रहे थे। जलालुद्दीन ने भी अपने तंबू से उनको देखा। वह भागा सरफुद्दीन के पास आया और बोला, "जरा सामने देखो, मामला कुछ गड़बड़ दिखाई देता है।"

"गड़बड़ क्यों ? हम यहां न मुल्क फतह करने आए हैं और न किसी खूबसूरत पद्मनी को उड़ाने।"

सुनकर जलाल हँस दिया। बोला, "बात तो ठीक है, सरफू ! मगर जब से इस इलाके में पैर रखा, यहां की बला की खूबसूरत नाज़नीनों को देखा, खासकर सुबह की सुनहरी धूप और शाम के रंगारंग उजाले में तालाब के किनारे सिर पर घड़े रखकर इठलाती हुई गांव की गोरियों को, तो हर बार यही लगा, मानो जन्नत की हूरें धरती पर उतर आई हैं। अगर ऐसी किसी हूर या परीज़ाद को उड़ा ले जाने की ख्वाहिश दिल में जाग उठे तो मैं नहीं समझता कि वह कोई गुनाह है।"

सरफुद्दीन ने हँसकर समर्थन किया, "बेशक, गुनाह नहीं है, बल्कि खूबसूरती की कद्र-अफजाई और सवाब ही है।" कहते-कहते सुरमा लगी

उसकी आंखें चमक उठीं।

जलाल कुछ कहने ही जा रहा था कि तीनों घुड़सवार धूल उड़ाते सामने आ गए। जलाल अपनी तलवार लाने के लिए तंबू की ओर लपकने को हुआ तो सरफुद्दीन ने आंखों के इशारे से उसे रोका और कहा, "ठहर, राजपूत कभी निहत्थों पर हमला नहीं करते।" और वह घुड़सवारों की तरफ बढ़ गया।

बीचवाले तरुण घुड़सवार ने जो सरदार मालूम पड़ता था, हाथ की चमकती तलवार को म्यान में रखा और पूछा, "तुम कौन हो ? यहां किस मतलब से आये हो ? मित्र हुए तो यथायोग्य स्वागत किया जायगा। शत्रु हुए तो कठोर सजा दी जायगी।" और उसने तलवार की मूंठ पर हाथ रखा।

सरफुद्दीन ने उस जवान की ओर देखा। गोरे चेहरे पर खानदानी तेज चमक रहा था। मूंछों की नोंकें उमेठी हुई थीं और उनकी उमेठन से शूरता टपकती थी।

सरफुद्दीन ने हंसकर कहा, "क्या आपके इलाके में दुश्मनों के अलावा कोई होता ही नहीं कि वगैर हथियार वांधे जा सके।"

उस युवक ने सरफुद्दीन की ओर देखा और विना वताए ही समझ गया कि जो सामने खड़ा है, वह उच्चकुलोत्पन्न निडर व्यक्ति है। बोला, "आप दिल्लीपति का कोई संदेश लेकर सुल्तान के पास जा रहे हैं, यह समाचार हमें जासूसों ने दिये हैं। फिर भी सावधानी और सुरक्षा के लिए शस्त्र पास में रखना अच्छा होता है।"

सरफुद्दीन ने जलाल की ओर अर्थपूर्ण दृष्टि डाली और हंसते हुए उस तरुण से कहा, "मतलब यह कि मौजूदा हालात इतने वदतर हो गए हैं कि हमेशा होशियार और चौकन्ना रहना जरूरी है!" फिर उसने दोनों हाथ फैलाकर स्वागत करते हुए आदर के साथ कहा, "आइए, तशरीफ लाइए। मेरे तंबू में तो इस वक्त कोई खतरा या धोखा नहीं है।"

वह युवक सरफुद्दीन के साथ उसके तंबू में गया। अंदर का ठाठ देख-

कर उसकी आंखें फटी रह गईं। फर्श पर मोटे-मोटे लाल गलीचे बिछे थे। गद्दियों और गाव-तकियों की बैठक थी। एक ओर सुनहरी मीना-कारी का हुक्का रखा था। सुरापान के लिए चांदी के पात्र थे। एक साधारण सरदार के भी यात्रा में ये ठाठ हैं तो दिल्ली में उसके घर की कितनी शान होगी! राजपूत राजे-रजवाड़ों ने दिल्लीपति से यों ही प्रेम नहीं किया है। आगंतुक युवक को आदरपूर्वक अपने समीप बिठाकर सर-फुद्दीन ने पूछा, "जनाब का इस्म शरीफ ?"

"कंचनराय। सोमपुरा, जो सामने दीख रहा है, उसी सोमपुरा के मंडलेश्वर का मैं छोटा भाई हूं।" फिर उसने अपनी चार पीढ़ियों का इतिहास और पराक्रम गाथा बढ़ा-चढ़ा कर सुना दी। चतुर सरफ़ुद्दीन इतने में ही गुजरात के वास्तविक इतिहास और वर्तमान परिस्थिति को समझ गया। उसे पता चल गया कि गुजरात में सब कहीं धमाचौकड़ी मची हुई है। सुलतान के मातहत सरदार उसे टके को भी नहीं पूछते। सभी सत्ता हथियाने के षड्यंत्रों में लगे हैं।

सरफ़ुद्दीन ने गुजरात आने का अपना उद्देश्य बताया। सुनकर कंचन ने साश्चर्य कहा, "अरे, आप खानखाना बहरामखांसाहब के पोते हैं! मतलब यह कि शाही परिवार से ही हुए। वाह! हमारा सौभाग्य कि आपसे परिचय हुआ।"

सरफुद्दीन सिर झुकाकर हंस दिया। इतने में एक सेवक तश्तरी में बादाम, पिस्ता आदि सूखे मेवे और शरबत के प्याले ले आया। कंचन ने हंसकर कहा, "खां बहादुर, यह कैसी उल्टी रीत! अपने प्रदेश में तो हमींको आपका स्वागत करना चाहिए।"

सरफुद्दीन बात काटकर बोला, "कंचनराय, आपके इलाके में कदम रखते ही क़ुदरत अपनी तमाम रंगीनियों और खूबसूरतियों के साथ इस कदर मेहमानवाज़ी करती है कि इंसानी मेहमानवाज़ी की दरकार ही नहीं रह जाती। गुजरात की यह सरजमीं बड़ी खूबसूरत है। फसलों से लह-लहाते खेत चारों तरफ फैले हैं। पंख फैलाये मस्ती से झूमते मोर हमने

यहीं देखे हैं।"

जलालुद्दीन ने कहा, "और शाम को तालियां वजातीं, घूमर लेतीं, मीठी आवाज में वेझिझक गातीं, वला की खूवसूरत औरतें भी हमने यहीं देखीं।"

कंचन हंसकर बोला, "गरवा नृत्य तो हमारे गुजरात प्रांत की विशेषता है।"

"क्या गरवा नाच आपके यहां वारहों महीने होता है ?"

"हां, करीव-करीव कोयल का कंठ खुलने से पहले ही हमारे यहां की स्त्रियों के कंठ खुल जाते हैं। उनके कंठ लगभग वारहों महीने खुले रहते हैं। हमारे गांव में इस समय भी उत्सव हो रहा है।"

"जश्न ? अच्छा, कैसा जश्न ?"

"हमारे कुल-देवता हाटकेश्वर का जन्मोत्सव। इसलिए आज आप लोग हमारा आतिथ्य स्वीकार करें।"

सरफुद्दीन ने वड़ी खुशी से निमंत्रण स्वीकार कर लिया।

सत्रह

कंचनराय घर लौट आया।

अकबर के परिवार का एक सरदार, जो सुल्तान के पास जा रहा है, आज हमारी हवेली में आयगा, यह जानकारी जव रसीला को मिली तो वह प्रसूति में थी। वच्चा हुए लगभग पंद्रह दिन हुए थे। अभी भी वह कोठरी से वाहर नहीं निकलती थी। उसने यह भी सुना कि दिल्ली का यह सरदार संगीत-प्रेमी, सौंदर्य-लोलुप, रसिक और रंगीला है। उसकी जेठानी ने यह भी वताया कि रमणराय के कहने पर ही कंचनराय ने उत्सव देखने के लिए उसे हवेली में आमंत्रित किया है।

हर साल हाटकेश्वर के उत्सव के समय वह अपने पीहर वडनगर

जाती और दो एक महीने रह आती थी। उत्सव के दिनों पीढ़ियों से चली आ रही प्रथा के अनुसार, परिवार का भी कोई-न-कोई पुरुष हाटकेश्वर की सेवा में हाजिरी वजा आता था। इस वर्ष हाटकनाथ का सात दिन का उत्सव काफी वड़े पैमाने पर होने जा रहा था। वड़नगर में मंडलेश्वर नीलकंठराय तीर्थ-यात्रा संपन्नकर आनंदपूर्वक घर लौटे थे। जहां अकाल का संकट था, वहां अब विशेष रौनक छा गई थी। मंडलेश्वर पद पर नीलकंठराय ने पच्चीस वर्ष पूरे कर लिये थे। स्थान-स्थान के नागर-मंडलों को उत्सव में आने हेतु नीलकंठराय ने निमंत्रण भेजे थे। रमणराय को भी निमंत्रण मिला था। जागीर के जरूरी कामों में व्यस्त रहने के कारण उनका जाना तो संमव नहीं था, इसलिए उन्होंने कंचनराय को भेजने का निश्चय किया।

खाट पर लेटी हुई रसीला की आंखों में पीहर के गांव-घर घूम गए। उत्सव के दिन याद आने लगे। हर साल शिवरात्रि के पर्व पर हाटकेश्वर के सामने के चौक में गरबा होता है। खाली गरवा ही नहीं गरबों की प्रतिस्पर्धा ही होती है। सर्वश्रेष्ठ गरबे को चांदी की कोई बड़ी चीज पुरस्कार में दी जाती है। हर साल गरवा गीत मैं ही शुरू करती हूं। लड़कियां गीत के बोल झेलती और साथ देती हैं। पिछले साल गरवा नृत्य में मुझे चांदी का पानदान इनाम में मिला था। ताना-रिरी मंडलेश्वर की बहुएं होने के कारण गरवे में भाग नहीं ले पातीं। उन्हें इसकी इजाजत नहीं। मेरा तो वहां पीहर है। उस गांव में मेरा ससुराल नहीं। गरबा-प्रतियोगिता में यदि ताना-रिरी भाग लें तो इनाम शायद उन्हीं को मिले।

वहां के धीरू तेली की वहू जीवी पीहर आई तो एक दिन रसीला से मिलने आई थी। वह बता रही थी कि इस बार का उत्सव ऐसा होगा, जैसा पहले कभी नहीं हुआ। दो-तीन महीनों से तैयारी हो रही है। शास्त्रोक्त विधि से गंगा-पूजन के लिए काशी से पंडित आये हैं।

और हां, जीवी बता रही थी कि इस बार हाटकेश के मंदिर के

आगे बहुत बड़ा सभामंडप तैयार किया गया है। बाहर के गायक भी बुलाये गए हैं। सात दिन तक भक्ति-गीतों का जलसा होगा। अगर इस समय मैं वहां होती तो कितना अच्छा होता।

जीवी यह भी बता रही थी कि इस बार ताना-रिरी भी उत्सव में भाग लेंगी और भजन सुनावेंगी। आश्चर्य है! मंडलेश्वर ने अपनी बहुओं को उत्सव में गाने की आज्ञा दे दी। उत्तरापथ की यात्रा के बाद लगता है कि मंडलेश्वर सुधारवादी हो गए हैं।

ताना-रिरी का नाम आते ही उसे और भी कई बातें याद हो आईं। एक बात उसके मन में टूटे कांटे की तरह खटक रही थी। उस दिन मैंने यों ही व्यंग्य में कह दिया था, "तेरा यह स्वर्गिक संगीत दिल्ली के बादशाह कभी सुन लें तो खुश हो जायं।" तब वह कितना चिढ़ गई थी। उसने मुझे घसीटकर छुटभैया राजपूतों की पंक्ति में बिठा दिया था और उलटकर कहा था, अपनी बेटी को तू बादशाह के जनानखाने में डाल देना। वह घटना जब भी याद आती, रसीला का सारा शरीर बदले की भावना से जल उठता था। अभी भी अपमान और प्रतिशोध-भावना से उसकी देह फुंकने लगी। मन षड्यंत्रों का जाल बुनने लगा।

दोपहर के समय कंचन उसके कमरे में आया तो उसने पूछा, "क्या दिल्ली के कोई सरदार आये हैं?"

"हां।" उसने बताया कि सरफुद्दीन कौन है और यह भी कहा कि वे शाम को अपनी हवेली में आयंगे और पुरुषों के डांडिया रास का मेहमानों के लिए आयोजन किया गया है। वह बोला, "अपने गुजरात की विशेषता और वैभव मेहमानों को दिखाना भी चाहिए।"

रसीला ने हामी भरी, "जरूर दिखाना चाहिए। बादशाह के बड़े सरदार को खुश कर लिया तो आगे चलकर अकबर की अमलदारी में कोई बड़ी जागीर मिल सकती है।"

कंचन हँसा, "वैभव और प्रतिष्ठा कौन नहीं चाहता! देखो न, छोटे-छोटे राजा भी आज उसके राज्य में संपन्नता के शिखर पर पहुंच गए।"

रसीला ने कहा, "तब तो तुम मेहमानों को बड़नगर का महोत्सव भी जरूर दिखाओ। इस बार वहां गरबे और गीत का समारोह बड़े पैमाने पर होगा। गुजरात की सारी कला, सारी सुंदरता वहां एकत्र होगी।

पत्नी की बात सुनकर कंचन उछल पड़ा। सिर हिलाकर बोला, "वाह, क्या ही बढ़िया बात कही है! योग भी अच्छा मिल गया। मैं परसों ही वहां जा रहा हूं।" तभी उसे एक बात याद आ गई। रसीला से कहा, "पर यह बढ़िया योजना सफल होती नहीं दीखती।"

"क्यों?"

"इसलिए कि बड़नगर की चहारदीवारी के अंदर तो बाहर की चिड़िया भी पंख नहीं मार सकती, जबकि सरफुद्दीन तो यवन है। उसे कभी अंदर नहीं जाने दिया जायगा।"

रसीला हँस दी, "मैं इसमें भला क्या कर सकती हूं? औरतों की अक्ल ही कितनी? टेढ़े मामलों में सलाह-सुझाव देना अपने बूते का नहीं। मन में जो बात आयी तुम्हें बता दी।"

कंचन जब वहां से चला तो रसीला की बात उसके मन में जड़ जमा चुकी थी; परन्तु मुसलमान मेहमान को बड़नगर के किले में ले जाने की कोई तरकीब उसकी समझ में नहीं आ रही थी।

शाम को रमणराय की मेहमानवाज़ी कबूल करने के लिए सरफुद्दीन और जलालुद्दीन हवेली में आये। कंचन उनकी आव-भगत में लग गया। भोजन में विविध प्रकार के गुजराती पदार्थ देख और चखकर दोनों यवन खुश हो गए। पुरुषों का डांडिया रास देखकर उनके अचरज की सीमा न रही। औरतों का गरबा देखा तो दोनों उछल पड़े। बार-बार सिर हिलाकर 'उफ्-उफ्' करने लगे। कंचन उनके पास ही बैठा था। सरफुद्दीन ने उससे कहा, "आगरा में बड़ी बेगम के महलों की दीवार पर गरबे की ऐसी ही तस्वीर बनी हुई है। वाह-वाह! ऐसा नाच हमने तो कभी नहीं देखा।"

कंचन ने जवाब दिया, "खानखाना, यह तो कुछ भी नहीं है। वड़-नगर में हमारे कुल-देवता हैं। इस समय वहां उनका बहुत वड़ा उत्सव हो रहा है। गरवा, नाच, भजन, कीर्तनम—मानो इंद्र का अखाड़ा ही सजा हो। सारे गुजरात की विशेषताएं वहां सिमट आई हैं।"

सामने नाच देखते हुए कंचन के शब्द सरफुद्दीन के कानों में बजते रहे और उसकी सौंदर्य-प्यासी आंखों में इंद्रलोक की अप्सराओं का अखाड़ा घूमता रहा। थोड़ी देर बाद उसने जोश के साथ कहा, "सरदार, फिर तो हमें वह जलसा देखना ही होगा।"

"मगर है बहुत कठिन।"

"कैसे ?" पूछते समय गर्विष्ठ सरफुद्दीन के माथे पर बल पड़ गये और उसकी आवाज में तीखापन आ गया था।

"वड़नगर का मंडलेश्वर राजपूत-जैसा कट्टर नागर ब्राह्मण है। उसके गांव के चारों ओर मजबूत परकोटा है। अपरिचित हिन्दू तक को अंदर जाने की इजाजत लेनी पड़ती है। फिर यह धार्मिक उत्सव है, इसलिए..."

सरफुद्दीन ने हँसकर कहा, "यानी हमारे-जैसे मुगल मंदर में दाखिल नहीं हो सकते, यही न ?"

"जी हां, क्योंकि सारे कार्यक्रम देवमूर्ति के सामने मंदिर के सभागृह में होते हैं।"

"खैर, कोई बात नहीं, हम मसले पर गौर करेंगे।"

आतिथ्य ग्रहण कर वह जलाल के साथ अपने डेरे पर लौट गया।

दूसरे दिन सुबह कंचन उसके मुकाम पर गया तो सरफुद्दीन ने हँस कर कहा, "आइए मंडलेश्वर कंचनराय, तशरीफ रखिए।"

कंचनराय ने तंबू में प्रवेश करते हुए देखा कि डेरा उठाने की तैया-रियां हो रही हैं। उसे लगा, वड़नगर का महोत्सव देखने का विचार सरफुद्दीन के मन से निकल गया। चलो, अच्छा ही हुआ। लेकिन दूसरे ही क्षण उसके मन में विचार आया, नहीं, यह अच्छा नहीं हो रहा है।

इस यवन सरदार को वड़नगर के अंदर ले जाना ही होगा। मजबूत किले में वंद वहां के वैभव और कला-संपदा पर इस सरदार की निगाहें पड़नी ही चाहिए। चकाचौंध पैदा करनेवाला महोत्सव यह भी तो देखे। मगर देखेगा कैसे? आसान नहीं है। शायद इसीलिए इसने विचार छोड़ दिया है। अच्छा ही हुआ, मुसीवत टली। थोड़ी देर इन विचारों में खोये रहने के वाद उसने हठात् कहा, "सरदार, अवसर मिला तो हम दिल्ली आयंगे। हमें भूल मत जाना।"

सरफुद्दीन ने हँसकर जवाब दिया, "जरूर-जरूर!" फिर कुछ रुककर उसने कहा, "कंचनराय, आपके वड़नगर चलने का हमारा ख्याल मुकम्मिल हो गया।"

कंचन घवराकर वोला, "मगर सरदार, वहां प्रवेश करना आसान नहीं है।"

सरफुद्दीन हँस दिया, "गैर मजहववालों का दाखिला नहीं हो सकता, मगर आपके हिंदू दोस्तों के लिए तो कोई रोक-टोक नहीं है। हम अपना डेरा यहां से उठा रहे हैं। आप अगले मुकाम पर आकर हमसे मुलाकात कीजिए। वहां से हम लोग सांथ चलेंगे। तय रहा?"

सरफुद्दीन से सारी योजना सुन-समझकर कंचन अपने घर लौट गया।

अठारह

वड़नगर के लिए माघ महीने का विशेष महत्त्व था। माघ लगते ही वहां का सारा वातावरण बदल जाता था। स्त्रियां सवेरे जल्दी उठकर काम में लग जातीं। उत्साह के कारण दांत किटकिटाती सर्दी भी उन्हें महसूस नहीं होती थी। झाड़-पोंछकर मकानों की सफाई की जाती। दरवाजों पर रंग-रोगन चढ़ाया जाता। पोती हुई दीवारों पर तांवाई रंग के

बेल-बूटे और तरह-तरह की चित्रकारी की जाती। आंगन लीप-पोतकर चमका दिये जाते। घर में सजाकर रखी हुई तांबे, पीतल और चांदी के बरतनों की उथरेड़ें नीबू, शिकाकाई अथवा रीठे से मांज-धोकर उजलाई जातीं। घर-भर के कपड़े और बिस्तरे धो-सुखाकर साफ किये जाते। नदी और तालाबों पर औरतों की भीड़ लग जाती। सारे गुजरात में वर्ष में एक बार इन्हीं दिनों सफाई और सजावट के काम किये जाते थे। वड़-नगर-निवासियों में शीतकालीन इन कामों को करने का एक विशेष चाव था। हर कोई यही चाहता था कि हाटकेश का उत्सव शुरू होने से पहले उसका अपना मकान मंदिर के समान स्वच्छ, शोभायुक्त और अलंकृत हो ही जाना चाहिए।

लोकमान्यता थी कि माघ शुरू होते ही हाटकेश सारे गांव में घूमना शुरू कर देते हैं। किसी के भी दरवाजे उनके श्रीचरण कभी भी पहुंच सकते थे। घरवालों को पता भी न चलता कि हाटकेश कब और कौन-सा रूप धरकर उनके घर आये अथवा आनेवाले हैं। लोगों का यह विश्वास था कि हाटकेश कभी बच्चे, कभी बूढ़े या अतिथि का रूप धारण करके आ जाते हैं और आतिथ्य स्वीकार करके लौट जाते हैं।

इसलिए पूरे महीने घर के आगे तोरण बांधे जाते थे। सवेरे-सवेरे संपूर्ण विधि से रांगोली पूरी जाती थी। मंगलकलश भरकर दरवाजों पर रखे जाते थे। देवघरों में अहर्निश नंदादीप जलते रहते थे। घर में कोई-न-कोई शुभ कार्य होता ही रहता था। शिव के नाम का जप तो आठों ही पहर चलता रहता। तीनों समय हाटकेश के दर्शन का नियम शुरू हो जाता। दूसरे व्रत-नियमों का सिलसिला भी रहता। स्त्रियां सफेद वस्त्र और पुरुष गेरुए वस्त्र धारण कर महीने भर संन्यासी धर्म का पालन करते थे। कोई महीने भर तक हाटकेश पर बिल्वपत्र चढ़ाने का, तो कोई तिल और पान चढ़ाने का व्रत लेता था।

शिवरात्रि का दिन निकट आने के साथ-साथ सभी का ध्यान हाट-केश्वर मंदिर की ओर लग जाता था। वहां उत्सव शुरू हो जाता। शिव-

चरित्र का अखंडपाठ होता और भजन-कीर्तन चलते रहते। झांझ, मजीरों और मृदंग की आवाज से वातावरण गूंज उठता। 'जय हाटकेश', 'जयशंकर', 'जय गिरिजेश' आदि के द्वारा शंकर का सतत जय-जयकार होने लगता।

हर वर्ष की अपेक्षा इस वर्ष के उत्सव का कुछ अधिक ही महत्त्व था। न कभी ऐसा सूखा पड़ा था, न कभी इतना पानी बरसा था और न कभी ऐसी फसलें ही हुई थीं। गुजरात की भूमि उपजाऊ है, मेहनत का पूरा फल देती है; लेकिन इस बार तो फसल की कोई नाप-जोख संभव नहीं थी। दुगुनी, तिगुनी, चौगुनी, अठगुनी — अनुमान लगाना ही मुश्किल हो गया था। 'दाने डालो और मोती चुनो' की उक्ति अक्षरशः चरितार्थ हो रही थी। जिन पेड़ों ने कभी फल नहीं दिये थे वे भी फलों से लद गये थे। सारे प्रदेश को संपन्नता और परिपूर्णता ने दिव्य रूप प्रदान कर दिया था।

खलिहानों में पड़ा अनाज भंडारों में समा नहीं रहा था। नजर लगने लायक बड़े-बड़े दाने हुए थे। सुख-समृद्धि की सीमा नहीं रही थी। इस सीमातीत सुख से आशंकित वृद्ध जन मन-ही-मन आतंकित होने लगे थे, किसी भी बात की अति अच्छी नहीं होती। कहा भी है, जहां अति वहीं दुर्गति। अति समृद्धि के पांव कई बार कमजोर होते हैं।

लेकिन कुल मिलाकर इस अनुपम समृद्धि से लोग सुखी ही अधिक हुए थे। हाटकेश के कृपा-प्रसाद से सब प्रसन्न थे। इसीलिए तो इस वर्ष माघ महीने में हाटकेश का उत्सव बड़ी धूमधाम से आरंभ हुआ था। हाटकेश के भंडारों में घर-घर से प्रचुर मात्रा में अनाज पहुंच गया था। रोज सवेरे साग-सब्जी के ढेर लग जाते। हाटकेश-मंदिर के प्रांगण से लगे हुए मैदान में बड़े-बड़े मंडप बनाये गए थे। एक मंडप में रसोई की व्यवस्था की गई थी। वहां बड़े-बड़े बर्तनों में भोजन पकता रहता। षट्रस व्यंजन तैयार होते रहते। उसके पासवाले भोजन-मंडप में गांव के सारे लोग और यात्री पत्तलों में भोजन करते।

इस वर्ष दूर-दूर के प्रांतों से तमाम लोग आये थे। भिक्षुओं की तो

भीड़ ही लग गई थी। आगंतुकों से शर्मिष्ठा के दूसरे किनारे का बड़ा मैदान और गांव की तमाम धर्मशालाएं भर गई थीं। कई यात्रियों के लिए शर्मिष्ठा के इस किनारे के मैदान में तंबू लगाने पड़े थे।

सभी ओर रात-भर भजन-कीर्तन होता रहता, उसमें भाग लेने के लिए पांच कोस तक के गांवों से भक्तजन आते। वैसे तो प्रति वर्ष इस उत्सव के लिए दर्भावती और भृगुकच्छ आदि प्रदेशों से भक्त-मंडलियां आती थीं, किंतु इस बार नीलकंठराय ने जूनागढ़, वृंदावन, मथुरा, काशी आदि की यात्राओं के कारण वहां के भक्तों को हाटकेश्वर के उत्सव में सम्मिलित होने के निमंत्रण दिये थे। वड़नगर की समृद्धि की बातें उन्होंने सुनी थीं। नीलकंठराय की दानशीलता का प्रत्यक्ष अनुभव वे कर चुके थे। भरपूर दक्षिणा और गुजरात की पवित्र उपजाऊ भूमि के दर्शन का पूरा लाभ उठाने के हेतु से इन स्थानों की अनेक भक्त-मंडलियां वड़नगर पहुंच गई थीं।

वड़नगर जिस प्रकार श्रद्धावानों का तीर्थस्थल था उसी प्रकार कलाकारों की भी पूज्य भूमि थी। नागरों और नायकों का तो यह मूलस्थान ही था। यहां की नाटक-मंडली दूर-दूर तक प्रसिद्ध थी। बाहर की अनेक नाटक-मंडलियां इस उत्सव के समय अपने नृत्य, संगीत और अभिनय-कौशल का प्रदर्शन करने के लिए हाटकेश्वर आ जाती थीं। माघ महीना शुरू होते ही नाटक होने लगते और पूरे महीने चालू रहते। इस बार तो ऐसी नाटक-मडलियां भी वड़नगर में आई थीं, जो पहले कभी नहीं आई थीं। रोज नाटक खेले जाते। भक्तों की भजनों में तथा रसिकों की नाटकों में भीड़ उमड़ पड़ती थी।

इसके अतिरिक्त घर-घर में स्त्रियों के गरबे होते। वड़े सवेरे से देर रात तक महिलाओं को दम मारने की भी फुरसत नहीं मिलती थी, फिर भी दिनों-दिन उनका उत्साह वढ़ता ही जा रहा था।

× × ×

जल-घड़ी के मेघ मल्हारी सुरों के कारण ताना और रिरी सभी के

आदर एवं प्रशंसा की पात्र बनी हुई थीं। घर-घर, द्वारे-द्वारे सबकी जबान पर उनकी तारीफ-ही-तारीफ थी। नगर के प्रमुख लोगों का विशेष आग्रह था कि जिनकी भक्ति ने नगर की रक्षा की, उनके भजन इस बार हाटकेश के सामने होने ही चाहिए।

नीलकंठराय ने आपत्ति की, "वल्लभभाई, आप तो जानते हैं कि मंडलेश्वर की बहुएं मंदिर में जाकर गावें ऐसा हमारे यहां का रिवाज नहीं है।"

वल्लभभाई वृद्ध थे—गंभीर प्रकृति के आदरणीय गृहस्थ। गांव में ही नहीं, मंडलेश्वर की हवेली में भी उनकी बात का वजन पड़ता और मान होता था। उन्होंने कहा, "राय, ताना-रिरी मंडलेश्वर के घर की बहुएं हैं, तो इसी गांव की बेटियां भी तो हैं। हाटकेश हमारे कुल-देवता हैं। उनके आगे भजन गाने से न मर्यादा भंग होती है और न मंडलेश्वर की प्रतिष्ठा को क्षति पहुंचती है।"

बात मायागौरी की समझ में आ गई। वे बोलीं, "स्त्रियों के गरबे वाले दिन तो मंदिर में सब स्त्रियां ही होती हैं। उस दिन तो मंदिर के प्रांगण में पुरुष भी नहीं आ सकते। उन्हें प्रांगण से भी बहुत दूर रखा जाता है। फिर इस वर्ष के यात्रियों में स्त्रियों की संख्या ही अधिक है। इसलिए ताना-रिरी के भजन गाने पर कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए।"

मायागौरी को आपत्ति नहीं तो फिर हवेली में भला किसे आपत्ति हो सकती थी?

आज रात प्रार्थना के गरबे के बाद ताना-रिरी हाटकेश के सामने भजन गायंगी, यह खबर बिना कहे ही चारों ओर फैल गई।

नीलकंठराय के आदेश से मंदिर के सामने के बड़े प्रांगण के चारों ओर मोटे पर्दे लगा दिये गए। आज वहां केवल स्त्रियां ही जा सकती थीं।

हाटकेश की आज की रोशनी भी अपूर्व थी। जगमगाते दीयों में

जागृत देवता हाटकेश प्रसन्न-मुख बैठे थे।

प्रार्थना का गरबा शुरू हुआ। तभी मंडलेश्वर के घर की दो पालकियां वहां आकर रुकीं। एक पालकी में से मायागौरी और उनकी जिठानी उतरीं; दूसरी में से ताना-रिरी बाहर निकलीं। दोनों खाली पालकियां मंडलेश्वर परिवार की अन्य महिलाओं को लाने के लिए हवेली की ओर लौट गईं।

नीलकंठराय की पत्नी और उनकी बहुओं का बड़े उत्साह से स्वागत हुआ। मायागौरी ने ताना-रिरी के साथ हाटकेश के मंदिर में प्रवेश किया। उन्होंने हाटकेश के दर्शन किये और गर्भगृह के सामने वाले लंबे सभा-मंडप में अपने लिए निर्धारित स्थान पर जाकर बैठ गईं। सभा-मंडप नगर की प्रतिष्ठित महिलाओं एवं नव-युवतियों से भर गया था। सभा-मंडप के सामनेवाला प्रांगण तो शाम से ही नगर की महिलाओं से खचाखच भर गया था। उनके रंग-बिरंगे वस्त्र और आभूषण दीपक के प्रकाश में चमक रहे थे। सभी की निगाहें ताना-रिरी पर टिकी हुई थीं।

ताना ने जरी के बूटोंवाली आसमानी रंग की साड़ी पहन रखी थी। ठोड़ी तक खींचे घूंघट में चेहरा ढका होने के बावजूद नीले वस्त्र की नीलिमा में से उसका अनुपम सौंदर्य झलकियां मार रहा था। शरीर पर के हीरों के गहने दीयों के प्रकाश में जगमगा रहे थे। रिरी के बदन पर भी वैसी ही नीबू के रंग की पीली साड़ी थी।

गरबा हो रहा था। गर्भदीप को बीच में रखे नागर बहू-बेटियां घेरा बनाये गोल-गोल नाचती हुई गरबा-गीत गा रही थीं। एक सुंदरी सुहागिन सबका नेतृत्व करती हुई गीत के बोल, अबीर-गुलाल और चंदन अक्षत की तरह, रात के शांत-स्तब्ध वातावरण में बिखेर रही थी। गोले की बाकी सब उसके शब्द, स्वर और लय-ताल को झेलतीं, उसका अनुसरण करतीं, गरबा-नृत्य को प्राणपूरित किये दे रही थीं। गीत के बोल देनेवाली महिला का स्वर बड़ा ही मधुर, आह्लादक और लयपूर्ण था।

वह गा रही थी :

जी रे आजनी घड़ी ते रळिया मणी रे,
मारो वालोजी आव्यानी वधामणी रे ।।
जीरे तरिया-तोरण ते वंधाविया रे
म्हारा वालोजी ने मोतीडे वधाविया रे ।।
जी रे आजनी...

—ओ सखि, यह क्षण बड़ा ही सुंदर और शुभ है । मेरे प्रियतम के शुभागमन की वधाई की मंगल घड़ी है । प्रियतम के स्वागत में तोरण बंदनवार वांधे हैं । अपने प्रियतम को मोतियों से नवाजा है । ओ सखि आज की घड़ी....!

—कुंकुम और केसर के गारे से चौक लीपो, उसपर कस्तूरी का चौकड़ा बनाओ, हरे-पीले वांस कटवाकर मंगवाओ, मेरे प्रियतम के लिए सुंदर मंडप बनाओ री सखि !

—सुहागिनों ने स्वस्तिक बना दिया, पियूजी हाथी के हौदे पर सवार मुस्कराता आ गया। अपने प्रियतम के पांव पखारने को गंगा-जमुना का नीर मंगवाया री सखि !

—सोने-चांदी की थाली मंगवाई, उसमें चमचमाता प्रज्वलित दीप रखा री सखि ! तन-मन न्यौछावर कर दिया, प्यारे प्रियतम की आरती उतारी री सखि !

—रसभरा, रस बढ़ा, रस अमृत हो गया री सखि, मेहता नर-शैया को स्वामी के दर्शन हो गए री सखि ! ओ सखि, आज की घड़ी...

गरबा समाप्त हुआ ।

नित्य नियमपूर्वक भजन गानेवाला महिला-दल एक ओर बैठा था। प्रौढ़ा प्रसन्नवेन उनकी प्रमुख थी । उसने पहला भजन गाया। कुछ महिलाओं ने उसके स्वर में स्वर मिलाकर थोड़ा-बहुत साथ दिया। भजन की खिलावट चरमोत्कर्ष पर पहुंचकर क्रमशः उसका तिरोहण हुआ।

अब रूखीवेन ने तवले पर से कपड़ा हटाया। किसी ने ताना-रिरी के सामने तानपूरा लाकर रख दिया। उन्होंने तार मिलाये। रूखीवेन ने तवला ठीक-ठाककर तानपूरे के स्वर से मिला लिया। उसके वाद ताना ने शुरू किया—

मोगरा माळे शुं मोही रह्यो मोहना ?
हार आये तो तारी ख्यात वधे....

—हाटकेश शिवरूप, विष्णु-कृष्ण-कन्हैया, अरे अपने कंठ में पड़ी मोगरे की माला से इतना मोह क्यों करता है ? वह माला मुझे दे दे, तेरी दानशूरता की तारीफ ही होगी। कहां तक और कितनी प्रार्थना करूं, रे ! दिव्य स्वरों के कोमल हार पिरो-पिरो कर तेरे चरणों पर चढ़ा रही हूं। अपने गले का हार उतारकर मुझे दे दे ! ओ कन्हैया...ओ हठीले ! तेरी खुशामद करते-करते सारी रात बीत गई। दीपक की ज्योति मंद पड़ गई, मेरा कंठ सूख गया। ओ केशव, अपनी यह माला प्रेम से नरसैया के गले में पहना दे...तेरी बड़ी ख्याति होगी...

ताना का स्वर आसमान की वुलंदियों को छू रहा था—

मोगरा माळे शुं मोही रह्यो ..

उसके स्वरों में मोगरे की कलियां खिल रही थीं। उनकी सुगंध दसों दिशाओं में व्याप्त हो रही थी।

इसी समय सभा-मंडप के दाहिने कोने में हो-हल्ला और गड़बड़ शुरू हो गई। उधर बैठी हुई औरतें उठने लगीं। भगदड़ मच गई। वार-वार एक ही शोर उठ रहा था :

"धोखा !" "धोखा !" "वे भागे !"

"भेस वदलकर यहां आदमी बैठे थे !"

"पकड़ो !" "पकड़ो !" "वे भागे जा रहे हैं !"

"चोर तो नहीं थे ?" "कौन जाने .."

"मगर औरतों के भेस में आदमी क्यों ? क्या हेतु हो सकता है ?"

"हमारे आगे ही तो बैठे थे !"

औरतों के भेस में कुछ पुरुष सभा-मंडप में घुस आये थे । यह बात हवा की तरह चारों ओर फैल गई । शोर मच गया । अब गाना सुनने का ध्यान किसे रहता ? हो-हल्ले में ताना की गान-समाधि भंग हो गई । उसने गाना बंद कर दिया ।

मधुमक्खियों की भनभनाहट की तरह औरतों की भुनभुनाहट शुरू हो गई । दीये लटकाकर सभा-मंडप में प्रकाश की व्यवस्था की गई थी, जो शांति के समय पर्याप्त लगती थी, परंतु इस समय अशांति हो जाने से कम प्रतीत हो रही थी । कौन कहां है, किसी को दिखाई नहीं दे रहा था । उसी चिल्ल-पों और अव्यवस्था की स्थिति में नीलकंठ राय सभा-मंडप में आये । उन्हें देखते ही औरतों ने हड़बड़ाकर पल्लू माथे पर खींच लिये । एकदम शांति छा गई । शोरगुल और चीखना-पुकारना एकबारगी बंद हो गया । नीलकंठराय ने जिधर उनका परिवार बैठा था, उधर देखते हुए कहा, "बाहर पालकियां तैयार हैं । लड़कियों को लेकर फौरन हवेली चली जाओ ।"

मायागौरी बहुओं को लेकर मंदिर से बाहर आईं और वे सब पालकियों में बैठकर हवेली की ओर चल दीं ।

दूसरी स्त्रियां भी रवाना होने लगीं; लेकिन कुछ वहीं मंडरातीं, गप्पें लड़ाती रहीं ।

नीलकंठराय सभामंडप के उस कोने में गये, जहां कुछ स्त्रियां अभी भी खड़ी बातचीत कर रही थीं ।

बंसीकाका ने जांच-पड़ताल के सिलसिले में पूछा, "सविता, यह कैसे पता चला कि औरत के वेश में आदमी था ?"

सविता ने जवाब दिया, "काका, हम देर से मंडप में पहुंचीं, इसलिए किसी तरह अपने लिए जगह बनाकर सिकुड़कर यहां बैठ गईं । हमारे ठीक आगे इस जगह वे दोनों बैठी थीं । गांव की सभी बहुओं को मैं पहचानती हूं । पर वे पहचानी हुई नहीं लगीं । उधर काशीबेन बैठी थीं । मैंने सोचा, उनके घर उत्सव देखने के लिए आये मेहमानों में से होंगी

कोई।"

इतना बोलकर वह चुप हो गई तो नीलकंठराय ने कहा, "फिर क्या हुआ ?"

"तानावेन का गाना शुरू हुआ। हम सब मगन होकर सुन रही थीं। वे दोनों भी दूसरों की तरह झूमने लगीं। इतने में उनमें से एक वोल उठी, वाह-वाह, क्या बला की खूबसूरती है! क्या ही मीठी आवाज है? दूसरी ने उसे दवाकर घुड़का, चुप! वे दोनों ही आवाजें मर्दानी थीं। उनके पास बैठी संतोषीकाकी ने ध्यान से उनकी ओर देखा और झटके से एक का घूंघट उठा दिया। फौरन दोनों उठे और पलक झपकते सभा-मंडप के बाहर निकलकर अंधेरे में न जाने कहां गायब हो गए। चाहे तो संतोषीकाकी से पूछ देखिए।"

पास में खड़ी संतोषीकाकी ने भी ठीक वही वात दुहरा दी, "चेहरा तो साफ-साफ दिखाई नहीं दिया, इसलिए पहचाना न जा सका, पर वे दोनों पुरुष थे, इसमें कोई संदेह नहीं।"

जिस तरह वादल उमड़ते, गरजते और थोड़ी देर में शांत हो जाते हैं, उसी तरह रात के अंधकार में उठे शोरगुल और गड़बड़ शांत हो गये। सभी स्त्रियां अपने-अपने घर चली गईं। उसके वाद पुरुष-भक्तों का भजन-कीर्तन शुरू हुआ।

× × ×

घटना घटित होने के तुरंत बाद नीलकंठराय ने रातोंरात चारों ओर गुप्तचर दौड़ा दिये थे। एक पहर दिन चढ़ने तक वे लौट भी आये।

नीलकंठराय अभी तक शयनकक्ष से बाहर नहीं आये थे। रात-भर उनकी आंख नहीं लगी थी। इस घटना ने उन्हें बेचैन कर दिया था। आजतक बड़नगर में ऐसा कांड नहीं हुआ था। स्त्री-वेश में स्त्रियों के बीच घुसकर, उनसे सट कर बैठना निकृष्ट कोटि का दुस्साहस था। बड़नगर में हाटकेश्वर के समक्ष नारी-जाति का ऐसा अपमान कभी नहीं हुआ था।

जैसे ही गुप्तचरों के लौटने की खबर मिली, वे कचहरी के दालान में निकल आये और पूछा, "क्यों रे मंगल, कुछ पता चला ?"

"जी रायजी, शत्रु का पीछा किया। जाते समय खोजी को साथ ले गए थे। शर्मिष्ठा के उत्तर की ओर पांवों के निशान मिले। बीचवाले ववूल वन से ठेठ पाटन के रास्ते की ओर, खोज मिलते चले गये। शत्रु वहीं से पाटण की ओर गये होंगे।"

"पाटण की ओर गये ? इसका अर्थ यह हुआ कि अहमदशाह के जासूस थे ?"

नीलकंठराय का चेहरा गंभीर हो गया। उस ओर खड़े लोकेश से उन्होंने कहा, "सुलतान ने पाटण-जैसा अनमोल रत्न हड़प लिया। अन्य राज्यों को भी निगल गया। अव वह अपनी टेड़ी नजर वड़नगर पर डाल रहा है, जवकि हम उसका कर ठीक समय पर पहुंचा देते हैं। आज-तक तो हमसे कोई गलती हुई नहीं है।"

"पिताजी, ईर्ष्यावश शायद उसने जानवूझकर खुराफ़ात की हो !"

"ईर्ष्या ? अहमदावाद का तख्त मंडलेश्वर की जर्जर गादी से ईर्ष्या करे, समझ में नहीं आता।"

"पिताजी, सोचने की बात है। सारा गुजरात पिछले अकाल में बुरी तरह तवाह हो गया है। उस वर्ष में हमारे प्रदेश की वर्तमान समृद्धि आस-पास के लोगों को ही नहीं, स्वयं अपने गांववालों को भी चमत्कार लगती है। ऐसे में जव मित्रों को ईर्ष्या हो सकती है तो शत्रु को ईर्ष्या होना कौन वड़ी बात है !"

नीलकंठराय स्तब्ध रह गए। तभी मंगलसिंह ने विनयपूर्वक कहा, "रायजी, वे सुलतान के लोग नहीं थे।"

"सुलतान के नहीं थे तो किसके थे ?"

"दिल्ली के अकवर वादशाह के लोग थे।"

नीलकंठराय विस्मय-विमूढ़ होकर मंगल की ओर देखते रह गए। लोकेश को भी बड़ा आश्चर्य हुआ। उसने पूछा, "अकवर के लोग हमारे

प्रदेश में कहां से आये और इस नगर में उनके आने का क्या प्रयोजन था ?"

मंगल ने जवाब दिया, "बबूल-वन के पार जहां से पाटण जाने के लिए रास्ता फूटता है, वहां तक पावों के निशान थे। उसके आगे वे घोड़ों पर सवार होकर पाटण की ओर चले गए। खोजी ने खोदों की जांच करके बताया कि वे घोड़े इस प्रदेश के नहीं, उत्तर के होने चाहिए। फिर सुमों के निशानों के सहारे हम आगे बढ़ते गए। पाटण के रास्ते पांच कोस दूर एक जगह तंबू दिखाई दिये। वहां के गांव में हमने पूछताछ की तो पता चला कि अकबर बादशाह के किसी रिश्तेदार और वजीर का बाप कई बरस पहले पाटण में मर गया था। पोता उसका मकबरा बनवाने पाटण जा रहा है। उसके साथ कारीगरों, शिल्पकारों और सिपाहियों का बड़ा काफिला है।"

लोकेश ने कहा, "इतना तो ठीक है, पर पाटण का सीधा रास्ता छोड़कर नारी-वेश में यहां आने का उसका उद्देश्य क्या हो सकता है ?"

नीलकंठराय बोले, "जरूर कोई गहरी चाल होनी चाहिए। अच्छा मंगल, तुम अब जाओ और पूरा पता लगाकर हमें बताओ।"

प्रणाम करके मंगल चला गया।

थोड़ी देर में सारे गांव में खबर फैल गई कि रात में औरत के भेस में मंदिर में जो दो आदमी घुस आये थे वे अकबर बादशाह के सरदार थे, और शाही फौज की एक टुकड़ी लेकर गुजरात आये हैं। अकबर का इरादा गुजरात को जीतने का है। इसलिए जासूसी के उद्देश्य से उसने अपनी एक छोटी फौजी टुकड़ी भेजी है।

इस खबर पर घर-घर और चौराहे-चौराहे चर्चा और बहस शुरू हो गई। कोई कहता, सुल्तान अकबर को गुजरात का एक हिस्सा देकर अपनी सल्तनत को और मजबूत कर लेना चाहता है। इस तरह हजारों अनुमान लगाये जा रहे थे। एक अनुमान यह भी था कि बड़नगर और उसके अधीनस्थ प्रदेश पर अकबर कब्जा करना चाहता है।

नगर और हाटकेश के मंदिर में उत्सव यथावत चालू थे। आज

उत्सव का समापन-दिवस था। अंतिम दिन यों भी बड़ी धूमधाम रहती है, पर रात वाली घटना के कारण रंग में भंग हो गया था, खासकर महिलाओं के मन में बड़ा डर बैठ गया था।

× × ×

सरफुद्दीन अपने तंबू में हुक्के की नली पकड़े बैठा था। बाहर सवेरे का उजाला फैलने लगा था। सूर्य की कोमल सुनहरी किरणें तंबू के दरवाजे राह अदर आ रही थीं। पक्षी पेड़ों पर चहचहा रहे थे। परंतु सरफुद्दीन इस सब ओर से बेखबर था। उसकी नजरों में नीले घूंघट में झिलमिलाता सुंदर चेहरा घूम रहा था। वैसा ही एक और सुंदर चेहरा नीबू के रंग की पतली रेशमी साड़ी से ढका था। दिल्ली-आगरा में नारी-सौंदर्य की कमी नहीं थी। उपभोग के लिए वह सौंदर्य आसानी से उपलब्ध भी था। किसी भी प्रकार की बाधा अथवा बंधन वहां नहीं था। लेकिन पिछली रात दीपक के मद प्रकाश में नारी-मुख के जिस अनुपम सौंदर्य को देखा, वह इस धरती का नहीं लगता था, और उसके किन्नर कंठ से निकले स्वर...

सम्राट अकबर के दरबार में देश-देशांतर के मशहूर गवैये आते, गाना सुनाते और थालियां भरकर मोहरें पुरस्कार-स्वरूप ले जाते हैं। तानसेन तो संगीत-सम्राट ही है। उसे यह अभिमान भी है कि उसके-जैसा गायक कोई नहीं। लेकिन अगर वह एक बार इन दोनों सुंदरियों का गाना सुनले तो अपना सम्राट-पद इन्हींको सौंप दे। अगर बादशाह सलामत इनका गाना सुनलें तो अपना सारा खजाना लुटा दें और हमारे भाग्य भी खुल जायं! काश, ऐसी खूबसूरत परी अपने जनानखाने में....

"हुजूर, आज डेरा-तंबू उठाने की तैयारी की जाय?" सेवक ने आकर पूछा। पिछले तीन दिनों से उनका मुकाम यहीं था। आज चौथे दिन भी पड़ाव उठाने का हुक्म नौकरों को नहीं मिला था।

सेवक के प्रश्न ने सरफुद्दीन की विचार-तंद्रा भंग कर दी। बोला, "नहीं, मुकाम आज यही रहेगा।"

सेवक कोर्निस बजाकर उल्टे पांवों लौट गया।

थोड़ी देर बाद जलालुद्दीन भीतर आया। उसने कहा, "सरफू, अब यहां से आगे बढ़ना वाजिब होगा, जितना जल्दी हो सके।"

हुक्के का कश लेते हुए सरफुद्दीन लापरवाही से हँसा, "जल्दी क्या है ?"

"तुम हँस रहे हो ! अरे मियां, जल्दी से डेरे-तंबू समेट कर पाटण पहुंच जाओ, वरना मुसीबत में पड़ जायंगे। खुदा का शुक्र कि रात में सहीसलामत लौट आये।"

सरफुद्दीन खिलखिला पड़ा, "वाकई शुक्र है खुदा का कि उसके रहमोकरम से वह नज्जारा देखने को मिला कि जिसका ख्वाबोखयाल भी न था। अहा, महसूस होता था गोया जन्नत में पहुंच गये हों।"

"खैर मनाओ कि भाग निकले, वरना वाकई जन्नत रसीद हो जाते।"

"अरे यार, जान जोखिम में डाले बिना कभी कोई नायाब चीज़ हासिल हुई भी है !"

"दुरुस्त है, मगर पड़ाव उठाना है या नहीं, यह बताओ ?"

"नहीं-नहीं, कतई नहीं। एक कदम भी चलने की ताव मुझमें नहीं है। बैठो, मेरी बात सुनो।"

जलाल वहीं बैठ गया।

सरफुद्दीन ने पूछा, "बताओ, कंचनलाल कब आने को कह गया है ? दुपहर में आने की बात है न ?"

"अब हमारे पाटण पहुंचने पर ही वह वहां मिलने आयगा। उसका यहां जाहिरा तौर पर मिलने आना खतरे से खाली नहीं है, बल्कि इसी-लिए हमें भी यहां से अपना मुकाम जल्दी हटा लेना चाहिए।

उसकी बात को अनसुनी कर सरफुद्दीन ने कहा, "जलाल मियां, शहंशाह को इन दोनों का गाना एक बार जरूर सुनाना चाहिए। तुम्हें याद होगा, कंचनलाल बता रहा था कि पानी में घड़े डुबोकर मेघ मल्हार के स्वर निकालती हैं वे कम्बख्त ! यकीन नहीं होता। मगर जो देखा

क्या वही काबिले यकीन है ? ख्वाब ही ख्वाब मालूम देता है । अगर कहीं जमना के पानी से मेघमल्हार के स्वर उठें तो खुदा कसम, जमना थरथरा जायगी । ओह, जैसा अनोखा गला वैसा ही बेमिसाल रूप पाया है उन्होंने ।"

जलाल ने हँसकर कहा, "भाईजान, गाने से ज्यादा तुम उनके रूप पर दीवाने हुए हो ! वाकई रूप की वह लपट किसी को भी दीवाना बना सकती है ।"

"दुरुस्त कह रहे हो । उनकी खूबसूरती के आगे बहिश्त की हूरें सूरज के सामने टिमटिमाने दीयों की तरह हैं । जलाल भाई..."

"हां ।"

"दुनिया की हर बेहतरीन चीज़ अपने पास रखने का शौक बादशाह सलामत को है ।"

जलालुद्दीन उसका अभिप्राय समझ गया । उस नागर-सौंदर्य ने मोहित तो उसे भी किया था, परंतु वह सरफुद्दीन-जैसा दुस्साहसी नहीं था । मन-चाही वस्तु प्राप्त करने के लिए प्राण हथेली पर लेने जितनी न निडरता उसमें थी और न धृष्टता ही । उसने कहा, "मगर सरफू, बादशाह के हुक्म के बगैर कुछ करना..."

सरफुद्दीन बीच में ही ठठाकर हँस पड़ा, "यार माफ करना, तुम निरे गावदू ही रहे । लाखों के मोल की ऐसी नायाब चीज़ बादशाह सलामत को पेश करने में हुक्म की क्या जरूरत है ? जैसे भी हो, खूबसूरती का यह खजाना, हूरों की यह मल्का दिल्ली दाखिल होना ही चाहिए ।"

"क्या जंग का इरादा है ?"

"अगर जरूरी हुआ तो वह भी ।"

"ऐसा कोई भी कदम एकदम गलत होगा । बादशाह सलामत ने तुम्हें जिस काम पर भेजा है, उसे मत भूल जाओ ।"

"वह काम भी होगा, मगर थोड़ा ठहर कर ।"

जलालुद्दीन जानता था कि सरफू से बहस करना बेकार है । शाही

घराने में परवरिश होने के कारण सरफुद्दीन बड़ा ही हेकड़ और ज़िद्दी हो गया था। अपनी किसी भी बात का विरोध उसे सह्य नहीं था। इस लिए जलाल अधिक बहस के चक्कर में न पड़कर उठ खड़ा हुआ।

सरफुद्दीन ने कहा, "जलाल रुको। जाओ मत। आगे जो कदम उठाने जा रहा हूं उसमें तुम्हारी इमदाद चाहिए।"

"रात में जनाना कपड़े पहनाये, अब कौनसा स्वांग रचाने को कहते हो?"

"अब वैसी कोई बात नहीं है। जो भी करना है, खुले आम शाही रौबदौब और इतमीनान से किया जायगा।" और वह जलाल को विस्तार से अपनी योजना समझाने लगा।

उन्नीस

रात की घटना पर विचार करने तथा आगे की योजना बनाने के लिए नगर के प्रमुख नागरिकों की सभा हवेली में हो रही थी। नील-कंठराय अध्यक्ष थे। लोकेश और महेश भी अपने उचित स्थानों पर बैठे थे।

विचार-विमर्श हो रहा था। उसी समय एक सेवक अंदर आया और प्रणाम करके बोला, "रायजी, दिल्ली दरवाजे पर एक यवन घुड़सवार आया है। कहता है कि वह दिल्ली के शहंशाह अकबर का खरीता लाया है। हमारे द्वार-रक्षक ने उसे ड्यौढ़ी पर ही रोक रखा है।"

नीलकंठराय ने सभासदों पर एक निगाह डाली, फिर गंभीरता से कहा, "अच्छा, उसे यहां ले आओ।"

सेवक लौट गया। सभासदों में से कइयों के चेहरों पर चिंता उभर आई। कल छद्मवेश में जासूसी और आज खरीता! लक्षण अच्छे नहीं दिखाई देते।

नीलकंठराय भी मन में यही सोच रहे थे। यात्रा से लौटते समय आबू के राजा से उन्हें पता चला था कि सुलतान के जुल्मों से तंग आकर उसके सरदार गुप्त रूप से दिल्लीपति से सांठ-गांठ कर रहे हैं। अकबर की निगाह भी गुजरात पर लगी थी। शायद इसीलिए मकबरा बनाने के बहाने उसने इस प्रदेश की जानकारी लेने हेतु अपनी एक टुकड़ी भेजी हो। सुल्तान के विरोधी हिन्दू राजाओं को चुपचाप अपनी ओर मिलाने का बादशाह का उद्देश्य हो सकता है। पर इसके लिए इस प्रकार छिप-कर जासूसी करने की क्या आवश्यकता थी ?

थोड़ी ही देर में सेवक यवन सवार को लेकर सभा-भवन में आया।

सवार ने अदब के साथ मंडलेश्वर को कोर्निस की। सेवक ने उसके हाथ से खरीता लेकर नीलकंठराय को दिया।

नीलकंठराय पत्र पढ़ रहे थे, इधर इस बीच लोकेश ने उस दूत का सिर से पैर तक निरीक्षण कर डाला।

पत्र पढ़ते-पढ़ते मंडलेश्वर का चेहरा रोषाविष्ट हो गया।

पिता के चेहरे का भाव-परिवर्तन लोकेश और महेश देख रहे थे। उनके तमतमाये चेहरे को देखकर सभासद बेचैन हो उठे।

नीलकंठराय ने पत्र लोकेश के हाथ में थमा दिया और गंभीर स्वर में यवन सवार से कहा, "बादशाह के इस खरीते को हम अपना घोर अपमान समझते हैं। नागर सब-कुछ सह सकता है, पर नारी का अप-मान उसके लिए असह्य है। दिल्ली के बादशाह के सरदार औरतों का वेश धरने वाले कायर भी हो सकते हैं, इसकी हमें स्वप्न में भी कल्पना नहीं थी। ऐसे लोगों को हम कानी-कौड़ी जितना भी महत्त्व नहीं देते। चले जाओ !"

पत्र पढ़कर लोकेश का सुंदर गौरवर्ण चेहरा लाल-गुलाल हो गया। आंखों में रोष उतर आया और दोनों ओठ भिंच गए। दीवार पर लटकी हुई तलवारों में से एक उसने झटके से खींच ली। महेश लपककर आड़े आ गया। लोकेश ने क्रोध से कांपते हुए कहा, "अपने ही हाथों अपनी

कुल-कन्याओं की इज्जत लुटानेवाले सत्तालोलुप, राष्ट्रघाती राजा और कहीं होंगे, गुजरात के राजे-रजवाड़ों को तो चित्तौड़गढ़ की आन है। अपने सतीत्व की रक्षा के लिए जौहर करनेवाली राजपूत-रमणियों से नागर-कन्या किसी भी तरह भिन्न नहीं हैं—जाकर कह देना अपने बादशाह से।"

सवार चला गया। सभासद स्तंभित बैठे रहे। उनकी समझ में नहीं आया कि नारी का, नागर-कन्या का, अपमान करने-जैसी कौन-सी बात बादशाह के पत्र में लिखी थी !

थोड़ी देर बाद सन्नाटा तोड़ा ताना के दादा बंसीकाका ने। बोले, "रायजी, आपने और लोकेश ने जो कुछ कहा उससे यही अनुमान होता है कि दिल्ली के बादशाह का पत्र कुटिलतापूर्ण है। सभा के सामने यदि उस पत्र को रखा जाय तो आगे की योजना बनाना संभव होगा।"

नीलकंठराय ने वह पत्र बंसीकाका के हाथ में दे दिया। उन्होंने सभी सभासद सुन सकें, इतनी ऊंची आवाज में पढ़ना शुरू किया :

"वड़नगर नगराधिपति मंडलेश्वर, हमारा एक वजीर हमारे हुक्म से आपकी गुर्जर भूमि में आ रहा है। आपकी दो बहुओं के बेमिसाल गाने की शोहरत यहां इतनी दूर तक पहुंच गई है। उन दोनों का गाना सुनने की हमारी बड़ी ख्वाहिश है। हम उन्हें दिल्ली दरबार में आने की दावत देते हैं। उन्हें पूरी हिफाजत और मान-मरतबे के साथ दिल्ली लाने और कद्रदानी के बाद उसी तरह वापस पहुंचाने का मुकम्मिल बंदोबस्त होगा। यह इंतजाम भी किया जायगा कि उनकी इज्जत को किसी प्रकार का धक्का न लगे …"

"बस-बस, काका, आगे मत पढ़ो !" एक सभासद चिल्ला उठा और पत्र का पढ़ा जाना वहीं रुक गया।

"ताना-रिरी ने तो कभी चार आदमियों के बीच गाना नहीं गाया, फिर उनके गाने की ख्याति दिल्ली तक कैसे पहुंच गई ?"

"खुराफात के लिए कोई बहाना तो चाहिए।"

"वहाना ही बनाना होता तो यवन सरदार गाना सुनने के लिए छद्मवेश में क्यों आता ?"

वहुत देर तक इसी प्रकार बे सिर-पैर की बातें होती रहीं। हां, इतना जरूर निश्चित हो गया कि नगर पर भारी संकट आया है और उसके प्रतिकार के लिए पूरी तरह तैयार रहना चाहिए।

अंत में सर्वसम्मति से तय किया गया कि नगर के तीन दरवाजे हमेशा बंद रखे जायं, केवल दिल्ली दरवाजा खुला रहे और आने-जाने-वालों की सख्ती से जांच हो।

किसी ने सुझाव दिया कि सुल्तान से मदद मांगनी चाहिए। जवाव मिला, "बेकार है। सुल्तान इस समय अपनी परिस्थिति के कारण अकबर के विरुद्ध खड़ा नहीं हो सकता।"

जूनागढ़ के राय और आबू-नरेश के पास दूत भेजकर खबर करने तथा पारस्परिक एकता को दृढ़ करने की बात जरूर तय पायी।

× × ×

अकबर के नाम से सरफुद्दीन ने जो खरीता भेजा था, उसकी खबर सारे गांव में फैल गई और तरह-तरह की अफवाहें उड़ने लगीं। अफवाहों ने आतंक फैलाने का काम किया।

हाटकनाथ के मंदिर के सामने उत्सव के अवसर पर जो दुकानदार आये थे उन्होंने चटपट अपनी दुकानें समेट लीं और अपने-अपने गांवों की ओर चल दिये। सामान्यतया हर वर्ष उत्सव के बाद भी दुकानें चार-आठ दिन तक लगी रहतीं और बिक्री हुआ करती थी। कहां तो घाटों, तंबुओं, धर्मशालाओं आदि में तिल रखने की जगह भी नहीं रहती थी और कहां ये सारे स्थान देखते-देखते खाली हो गए! घोड़ों पर, बैल-गाड़ियों में और सिरों पर अपना सामान रखे तमाम यात्री परकोटे में से निकलकर चारों ओर चल दिये।

अभी तक यह किसी की समझ में नहीं आ रहा था कि ताना-रिरी के गान की ख्याति दिल्ली तक कैसे पहुंच गई। [illegible] यह था कि

हरिद्वार, ऋषिकेश, काशी आदि उत्तर के तीर्थों से कोई-न-कोई यात्री गुजरात तीर्थ स्थानों में आते रहते थे। उस समय वे हाटकेश के दर्शनार्थ भी आ जाया करते थे। श्रावण मास में ऐसे यात्रियों का आवागमन अधिक रहता था। इस वार सावन में जब ताना-रिरी ने मेघ मल्हार के स्वर वाले पवित्र जल से हाटकेश का अभिषेक किया तो उत्तरापथ के दो-एक साधुओं का मंदिर में ही मुकाम था। यह अलौकिक वार्ता उनके मुंह से कानों-कान फैलती हुई दिल्लीपति तक पहुंच गई हो तो आश्चर्य नहीं।

× × ×

खरीता पढ़ने के बाद से बंसीकाका की चिंता बहुत बढ़ गई थी। ताना-रिरी के स्वर्गिक गायन का एकमात्र गवाह साधुवेशधारी तानसेन था। लेकिन उसने जाते समय वचन दिया था कि इस बात को गुप्त रखेगा, कहीं चर्चा नहीं करेगा। कहीं तानसेन ने विश्वासघात तो नहीं किया ? नहीं, तानसेन ऐसा कभी नहीं करेगा। तब बादशाह के कानों तक यह बात पहुंची कैसे ? और अब वर्तमान परिस्थिति में तो वे घर में भी इस बात की चर्चा करना निरापद नहीं समझते थे।

× × ×

मंडलेश्वर की हवेली का वातावरण एकदम वदल गया। शरद् पूनों के चंद्रमा को जिस प्रकार काले बादल ढंक लेते हैं, वही हालत हवेली की हुई। ग्रहण लगने पर सूर्य-चंद्र तो कुछ ही घंटों में मुक्त हो जाते हैं, किंतु हवेली को लगा ग्रहण छूटता दिखाई नहीं दे रहा था। अंतिम परिणाम किसी से छिपा नहीं था। विनाश अपने भयंकर जबड़े फैलाये सामने आ खड़ा हुआ था।

यों सभी दैनंदिन व्यापार चालू थे, किंतु यंत्रवत। हर व्यक्ति चिंतातुर था। भोजन अवश्य बनता और परोसा भी जाता था, किंतु ग्रास किसी के गले के नीचे नहीं उतरता था।

ताना-रिरी घर में इस प्रकार रहतीं, मानों बिना देह की छाया।

खरीतेवाली बात कान में पड़ने के बाद से दोनों के प्राण जैसे निकल गए थे। दोनों एक-दूसरे की ओर टुकर-टुकर देखा करतीं और बिना मुंह खोले निःशब्द वार्तालाप किया करतीं।

एक दिन दोपहर में एकांत पाकर रिरी ने धीमे स्वर में ताना से कहा, "बेन, कहीं उन्होंने तो विश्वासघात नहीं किया ? इसके सिवा..."

ताना ने फौरन बात काट दी, "छिः रिरी, बिल्कुल नहीं। मुझे पूरा विश्वास है कि वे ऐसा कभी नहीं कर सकते।"

आगे बातचीत बंद हो गई। पर मन को चैन कहां ? घूम-फिर कर उसी गाले को पीसने लग जाता—तो यह सब कैसे हुआ? दुर्दम्य सत्तालोलुप बादशाह तक यह बात किसने पहुंचाई—क्यों और कैसे ? उसी रात स्वर्गिक संगीत ने मरणासन्न गांव को जीवन-दान दिया। और आज वही वरदान हमारे जीवन के लिए खतरा बन गया है। हाटकेश, रणछोड़राय यह तुमने क्या किया ? मेरे किस अपराध की सजा दे रहे हो ? नगर की प्राण-रक्षा के लिए मुझे माध्यम बनाया और अब बदले में मेरे प्राणों की बलि मांग रहे हो ? क्या यही तुम्हारी इच्छा है ? यदि है तो फिर यही मेरे जीवन की सार्थकता है। मुझसे अपना काम करवाकर थोड़ा पुण्य तो तुमने मेरे साथ जोड़ दिया है।"

अपने दालान के झूले पर बैठे-बैठे उनके मन में हजारों विचार आ रहे थे। काफी रात बीत चुकी थी। फिर भी लोकेश सोने के लिए नहीं आया था। पिछले दो दिनों से हवेली की कचहरी में रात-दिन बैठकें होती रहने के कारण उसे रात देर तक अवकाश नहीं मिल पाता था। जूनागढ़ और आबू आदि राज्यों को सहायता के लिए गुप्त पत्र लिखने और विश्वस्त दूतों द्वारा उन्हें भेजने की व्यवस्था करने में उसका सारा समय निकल जाता था।

आज सवेरे घर के विश्वस्त नौकर महादेव के साथ घोड़े पर सवार लोकेश को पूर्व दिशा की ओर कहीं जाते हुए उसने देखा था। शाम को लौटा और जल्दी-जल्दी ब्यालू कर तुरंत कचहरी चला गया। जाते समय

दरवाजे की ओट से ताना ने पति की ओर देखा था। उसका चेहरा कितना निस्तेज और परिश्रम और चिंता के कारण एकदम काला पड़ गया था। बार-बार यह बात उसके मन को व्यग्र कर देती कि पति की इस दुर्दशा का कारण मैं ही हूं। तानसेन के आने की चर्चा उसने पति से नहीं की थी। इस समय मन में जोरों से यह बात उठी कि उनके आते ही सब-कुछ उन्हें बता दे। जो विपत्ति आन पड़ी है, उसके कारण का खुलासा कर दे। पर क्या इस विपत्ति का मूल कारण वही है ? नहीं, कदापि नहीं। मेरा मन गवाही नहीं देता। वे कभी ऐसा नहीं कर सकते। फिर एक निरपराध के सिर सारा दोष क्यों मढ़ा जाय ? लेकिन आखिर दिल्ली तक बात पहुंची कैसे ? कुछ समझ नहीं आता···।

विचारों का दुष्चक्र फिर चलने लगा। लोकेश अभी तक नहीं आया था। वह झूले पर ही लेट गई और उसे नींद आ गई।

आधी रात के करीब लोकेश अंदर आया। उसका चेहरा उतरा हुआ, किंतु दृढ़ था। अंदर आकर वह झूले के पास रुक गया। गहरी नींद सोई हुई अपनी पत्नी को देखता रहा। दो ही दिन में इस बेचारी की हालत क्या से क्या हो गई। संगमरमर की प्राणहीन पुतली की तरह लगने लगी है। अपने सतीत्व की रक्षा के लिए नारी को कितने संकटों का सामना करना पड़ता है ! नारीत्व ही उसका प्राण है और उसकी खातिर दुर्दशा होते देर नहीं लगती।

सूने, साफ आसमान से सहसा बिजली गिरने जैसी यह घटना थी। जिसके बारे में कभी सोचा भी नहीं था, वह मुसीबत सहसा गले आ पड़ी। सभी जानते थे कि मामला नाजुक और संकट भयानक है। मुका-बले की तैयारियां भी शुरू कर दी थीं। लेकिन दिल्ली के बादशाह से मुकाबले का मतलब था चींटी और हाथी की लड़ाई। खैर, कोई बात नहीं, मौका आने पर चींटी भी हाथी के कान में घुसकर उसकी हालत खराब कर देती है। जब प्राणों पर आ बनती है तो गरीब गाय भी सींगों से शेर की अंतड़ियां निकाल देती है।

नीलकंठराय ने सहायता के लिए स्वदेशाभिमानी राजाओं को पत्र भेजे थे। उनकी मनोभिलाषा यही थी कि इस अवसर पर सब एक हो जायं। एकता की शक्ति से न केवल प्रस्तुत संकट को टाला जा सकता था, बल्कि गुजरात की धरती से यवन शासकों को भी हटाया जा सकता था। नीलकंठराय पत्र लिखकर ही चुप नहीं बैठ गए थे। नगर में अस्सी प्रतिशत नागर ब्राह्मणों की बस्ती थी। वीरता में ये ब्राह्मण राजपूतों से किसी तरह कम नहीं थे। स्वयं आगे आकर किसी से झगड़ा नहीं करते थे, लेकिन अगर किसी ने हाथ उठाया तो उसका हाथ तोड़ देने की शक्ति उनकी कलाइयों में थी। इसलिए नीलकंठराय ने उस रात प्रमुख नगरवासियों की बैठक आयोजित की थी। उसमें मुकाबले के लिए सेना खड़ी करने की बात तय हुई थी। हिसाब लगाकर देखा गया था कि हर घर से एक या दो योद्धा निकल आयेंगे और इस तरह हजारेक की फौज आसानी से तैयार हो जायगी। इस सेना को संगठित करने की जिम्मेदारी लोकेश और महेश ने ली थी। पूरी योजना बनाकर और कुछ निश्चिंत होकर ही लोकेश अपने भवन में आया था।

नींद में सोई ताना की ओर देखता हुआ वह कुछ देर योंही ठिठका खड़ा रहा। मन की गहन चिंता और भय की काली छाया उसके मुरझाये हुए चेहरे पर स्पष्ट दिखाई दे रही थी। आंखें सूजी हुई थीं, पर सतीत्त्व का तेज बंद पोपटों में से भी फूटा पड़ रहा था।

उसकी ओर देखते हुए लोकेश ने मन-ही-मन प्रतिज्ञा की, "देवि, जबतक हमारे शरीर में प्राण रहेंगे, मजाल नहीं कि कोई भी पराया आदमी तुम्हारे पांव के नखों को भी देख सके।"

इस खयाल से कि कहीं ताना की नींद उचट न जाय वह धीरे-से पीछे की ओर जाकर चुपचाप पलंग पर लेट गया। लेटते ही उसे नींद आ गई।

आधी रात बीत चुकी थी। खटके की आवाज सुनकर ताना की नींद खुल गई। दालान में दीया जल रहा था, किंतु तेल कम हो जाने से

उसका प्रकाश धीमा पड़ गया था। वह झटके के साथ उठ बैठी और चारों ओर देखने लगी। पीछे पलंग पर लोकेश गहरी नींद में सो रहा था। उसने कपड़े तक नहीं बदले थे और न कुछ ओढ़ा ही था। फिर उसकी निगाहें दाहिनी ओर की खिड़की की तरफ उठीं और वह फुर्ती से खड़ी हो गई।

सामने खिड़की में काला नकाब चढ़ाये, हाथ में तलवार लिये एक लंब-तड़ंग भयावना आदमी खड़ा था। क्षण-भर के लिए ताना का रक्त जम गया, लेकिन दूसरे ही क्षण वह सतर्क हो गई। उसने लपककर कोने रखी हुई बरछी उठा ली और दो कदम आगे बढ़कर गरजी, "खबरदार, जो एक भी पांव आगे बढ़ाया। तेरी घिनौनी छाया मेरे ऊपर पड़ने के पूर्व ही यह बरछी मेरी छाती के पार निकल जायगी। मुझे उठा ले जाने के लिए आया तो है, पर..."

उसकी तेज-तीखी आवाज से लोकेश जग गया। सबसे पहले महिषासुर-मर्दिनी की तरह बरछी हाथ में थामे ताना उसे दिखाई दी, फिर उसने नकाबवाले को देखा। दीवार से लटकी हुई तलवार खींचकर वह पैंतरे से खड़ा हो गया।

इतने में नकाबवाले ने मुंह से नकाब हटाते हुए कहा, "बेन, सुनो..."

"कौन ? चंदर ?"

"हां, बेन मैं चदर हूं, चंदर लुटेरा !"

तलवार की मूंठ पर पकड़ मजबूत करते हुए लोकेश ने पूछा, "इस समय, इतनी रात गए तू यहां क्या करने आया है !"

हाथ की तलवार एक ओर रख, चंदर ने कहा, "दिन के समय हवेली के सदर फाटक से अंदर आता तो मंडलेश्वर वहीं मेरी गर्दन उड़ा देते। मैं नहीं, मेरा बाप बीरमगाम के राय की शरण गया है। पर मैंने तो बचपन में बंसीकाका का नमक खाया है।"

"कहना क्या चाहते हो ?"

"अकबर का एक सरदार इस ओर आया है। पाटण के रास्ते डेरा डाले पड़ा है। उसके यहां कंचन की खूब घुसपैठ है।"

लोकेश ने कहा, "समझ गया। उस सरदार को बड़नगर के विरुद्ध उसी ने भड़काया है।"

"मेरी इन दोनों बहनों की इज्जत पर हाथ डालने के लिए कंचन ने ही उसे उकसाया है। यवन सरदार की वासना को उसी दुष्ट ने भड़काया है। उस रात यवन सरदार ही अपने दोस्त के साथ छद्मवेश में यहां आया था। यह सारा षड़यंत्र कंचन का ही था। उनके लिए औरतों के कपड़े भी उसने अपने घर से लाकर दिये थे।"

ताना को आठ महीने पहले की भजन के समयवाली घटना याद आ गई। अपने गान-कौशल और सुरीली आवाज को लेकर रसीला की ईर्ष्या, मंडलेश्वर की बहू न बन पाने के कारण रसीला की बदले की कट्टर भावना, आदि सभी उसे याद हो आया। उस दिन उससे जो कहा-सुनी हो गई थी, वह भी याद आई। तो रसीला ने आज इस तरह बदला लिया है! मारे गुस्से के ताना की देह भभक उठी।

उधर चंदर कहे जा रहा था, "यह यवन सरदार सरफुद्दीन अकबर का रिश्तेदार है। तानाबेन और रिरीबेन को उड़ाकर दिल्ली ले जाने का उसका इरादा है। नगर पर हमला भी होगा। कंचन उसकी मदद करेगा। उसने कंचन को दिल्लीपति की मनसबदारी और यहां के मंडलेश्वर का पद देने का लालच दिया है। आप सावधान रहें!"

इतना कहकर चंदर जिस रास्ते खिड़की तक आया था उसी रास्ते खिड़की से कूदकर निकल गया।

लोकेश की नींद उड़ गई। ताना क्रोध से सुलग रही थी। पुरुष में सत्ता का लोभ और स्त्री में ईर्ष्याजनित बदला लेने की भावना एकसाथ जाग उठे और दोनों जुड़ जायं तो सर्वनाश के सिवा और हो ही क्या सकता है! लोकेश को भी सर्वनाश अपने समस्त विकराल रूप में खड़ा दिखाई दे रहा था।

बीस

गुजरात की यात्रा से लौटने के बाद तानसेन के प्रशंसकों ने उनका सम्मान किया। रात को गाने की महफिलें हुईं और उस पर प्रशंसा का गुलाबजल छिड़का गया।

एक प्रशंसक बोला, "मियां तानसेन, आप यात्रा पर क्या गये, यहां की तमाम महफिलें ही सूनी हो गईं।"

दूसरे ने कहा, "भैया तानसेन, तुम्हारे बिना शाही संगीत दरबार ऐसा लगता था, जैसे बिना सूरज का आकाश।"

तीसरे ने समर्थन किया, "सच है, बिलकुल सच है! सूर्य एक होता है और तानसेन भी एक ही है।"

प्रशंसा सुनकर तानसेन सकुचा गया। बोला, "दोस्तो, जिसने कभी दिशाओं तक फैला विशाल सागर नहीं देखा, उसके लिए तो यमुना का यह पाट भी सागर ही है।"

तानसेन का यह आचरण उसके प्रशंसकों को नया लगा। आजतक प्रशंसा उसे प्रिय थी और सुनकर वह खुश होता था। प्रशंसा के फूल-गजरे हाथ में थामकर उनकी सुगंध लेने में उसे आनंद आता था, पर आज उसने उन गजरों को धीरे से एक ओर पटक दिया। इसी प्रकार विलास के सारे उपकरण भी उसने एक ओर रख दिये थे। जरीदार पोशाक छोड़कर एकदम सादे वेश पर आ गया था। दरबार में भी वह भजन के अलावा और कोई गीत नहीं गाता था। रोज नये भजन लिखता और उन्हीं को सुनाता। यह परिवर्तन देखकर सभी कहते, मियां तानसेन यात्रा से लौटकर साधु हो गए हैं। उसकी दिनचर्या में एक नई बात जुड़ गई—प्रातः यमुना-स्नान का नियम।

अमिरा की ठंड सुबह की कोमल धूप में थोड़ा गरमाने लगी थी।

नित्य की भांति तानसेन शरीर पर शाल लपेटे अपनी मौज में यमुना-किनारे जा रहा था। भक्त नरसी मेहता के एक भजन की पंक्ति वह गुनगुनाता जाता था। घाट की भीड़-भाड़ से अलग किसी एकांत-शांत स्थान में वह कुछ देर बैठना चाहता था। कभी आंखें बंदकर अपने कुल-देवता का अथवा वृंदावन के बांकेविहारीजी का ध्यान कर लेता और कभी नदी के गहन नील जल की ओर देखने लगता। भजन गुनगुनाते समय अनायास नये शब्द और नये भाव मन में आ जाते और नये भजन की रचना हो जाती।

वृंदावन के निधिवन में उस रात बिहारीजी के मंदिर में सुनाये गाने के पुरस्कार-स्वरूप एक कौड़ी पाकर उसका अहंकार कम होने लगा था। ताना-रिरी का स्वर्गिक संगीत सुना तो अहंकार बिलकुल नामशेष हो गया। उन दोनों बहनों के दिव्य संगीत और मध्य रात्रि में बरसी जल-धारा की याद आते ही वह रोमांचित हो जाता था। तब उसे अपने संगीत-सम्राट होने पर शर्म आने लगती थी।

"चाचा, ओ चाचा...तानसेन चाचा..." पीछे से कोई आवाज दे रहा था। सुनकर उसकी भक्ति-समाधि टूटी। पीछे मुड़कर देखा तो पुकारने-वाला करीब आ गया था।

तानसेन ने आश्चर्य से कहा, "कौन, सिराज ? अरे, तुम तो सर-फुद्दीन के साथ गुजरात गये थे न ?"

"जी हां ! अभी भी उनके साथ हूं। एक खास काम से यहां आना पड़ा।"

"अच्छा ! पाटणनगर कैसा है ? सुंदर ही होगा। सारा ही गुज-रात प्रदेश बहुत खूबसूरत है।"

"पाटण हम लोग अभी पहुंचे ही कहां ?"

"अच्छा ! मुकाम पर पहुंचकर काम शुरू करवाने से पहले ही तुम-को लौटना पड़ा। ऐसा कौन-सा काम निकल आया ?"

सिराज क्षण-भर चुप रहा। फिर साथ के नौकर से बोला, "हसन,

तू हकीम मियां से संदेशा कह देना। और देख, घर में कह देना कि मैं तानसेन चाचा के साथ जा रहा हूं।" और तानसेन के साथ चलते हुए उसने कहा, "चाचा, मेरे तो मुकद्दर में ही जाने क्या लिखा है! बचपन में तस्वीरें बनाने का शौक था, मगर अब्बाजान ने रंगपेटी छीनकर मुझे कुरान पढ़ने बिठा दिया। उनकी ख्वाहिश मुझे मौलवी बनाने की थी, मगर वह अपने बस की बात नहीं थी। तब मार-पीटकर हकीम बनाने के लिए हकीम साहब के सिपुर्द कर दिया गया। लेकिन नब्ज़ देखना-समझना अपने लिए मुमकिन न हुआ।"

तानसेन ने कहा, "आखिर इमारतों के नकशे बनाने का काम सीखा और उसमें महारत भी हासिल की।"

"मुमकिन है, इसी वजह से बादशाह सलामत ने सरदार सरफुद्दीन के साथ मुझे गुजरात भेजा था। मगर वह काम तो एक किनारे रह गया और मैं दूसरी मुसीबत में फंस गया।"

"कैसी मुसीबत?"

सिराज ने उधर देखकर कहा, "क्या आप घाट की ओर तशरीफ ले जा रहे हैं?"

"हां।"

"अब्बाजान ने बताया कि आप रोज जमुना-अशनान करते हैं।"

"हां भाई, बुढ़ापे में यमुना-स्नान और ईश्वर-भजन, यही तो दो काम करने के हैं।"

बातें करते हुए दोनों घाट पर पहुंचे। सिराज ने कहा, "वाह चाचा, बहुत बढ़िया जगह है।"

तानसेन के बैठने पर सिराज भी पास में बैठ गया और बोला, "चाचा, सरफुद्दीन ने एक नई आफत खड़ी कर ली है। वह गुजरात की दो महबूबाओं के इश्क़ में गिरफ्त हो गया है।"

तानसेन ने हंसकर कहा, "रंगीले स्वभाव के सरफुद्दीन के लिए यह कोई नई या अनहोनी बात नहीं, और गुजरात का नारी-सौंदर्य तो

वैसे भी प्रसिद्ध है।"

"मगर सरफू की ये महबूबा मामूली घराने की नहीं। एक मंडलेश्वर यानी जागीरदार के कुनवे की है।"

तानसेन चौंक पड़ा, "मंडलेश्वर? किस गांव के मंडलेश्वर?"

"गांव का नाम तो याद नहीं आ रहा। वहां बहुत-ही छोटी-छोटी जागीरें हैं और जागीरदारों को मंडलेश्वर कहते हैं। यह गांव पाटण के रास्ते पर है। एक मुकाम पर ऐसें ही किसी मंडलेश्वर के भाई से पहचान हो गई। उसका नाम कंचनलाल है। वह सरफुद्दीन को अपने गांव में भी ले गया और खूब खातिर की। वहां कंचनलाल ने उसे इन खातूनों की खूबसूरती और गान-विद्या के बारे में बताया। वह उन्हें उस गांव में भी ले गया। नाम तो याद नहीं रहा, मगर एक किले के मानिंद गांव है और वहां का मंडलेश्वर बहुत बहादुर है। वे दोनों खातूनें उसकी बहुएं हैं। उस गांव में शंकर महादेव का बड़ा जलसा था। उन खातूनों का गाना सुनने के लिए सरफुद्दीन और जलाल जनाने भेस में वहां गये थे।"

तानसेन को सारा मामला समझते देर न लगी। उसने उत्सुकता से पूछा, "फिर क्या हुआ?"

"जंग होते-होते बची। बमुश्किल रात के साये में दोनों किसी तरह निकल भागे। मगर सरफुद्दीन उन दोनों को लेकर पागल हो गया। किसी भी तरह उन्हें दिल्ली लाना चाहता है। बादशाह के नाम से उसने मंडलेश्वर को खत लिखकर दोनों को शाही दरबार में गाना सुनाने की दावत दी। कंचनलाल की और उस मंडलेश्वर की पुरानी दुश्मनी है। उसने सरफुद्दीन को और भी उकसाया। सरफुद्दीन ने कंचनलाल को उन लड़कियों के गांव की जागीर और दिल्ली की मनसबदारी देने का लालच दिया है। कंचनलाल पोशीदा तरीके से उसकी मदद कर रहा है। लड़कियों के ससुर ने दावतनामा ठुकरा दिया और कहा कि हमला हुआ तो मुकाबला करेंगे। वे तैयारियां कर रहे हैं। उनपर चढ़ाई

करने के लिए सरफुद्दीन ने बादशाह सलामत से इमदाद मांगी है। इसी खास मकसद के लिए मुझे हरकारा बनाकर भेजा गया है।

"कल यहां आते ही शहंशाह से मुलाकातकर मैंने सरफुद्दीन का खत शाही खिदमत में पेश किया। खत की इबारत सुनते हुए पहले जहां-पनाह के चेहरे पर गुस्सा मगर बाद में खुशी दौड़ गई। बोल उठे, "बेवकूफ बेटा!" बाद में मुझसे वहां के हालात के बारे में बारीकी से सवाल करते रहे और तब मुझे रुखसत किया। कोर्निस बजाकर मैं बाहर आ गया। अब तो वहां जरूर तलवारें बजेंगी। मेरा कोई काम नहीं रहा।"

बात खत्मकर वह उठ खड़ा हुआ, बोला, "चाचा, इजाजत दीजिए अब यहीं हूं, फिर हाजिर हूंगा।" और चला गया।

तानसेन देर तक उसी तरह बैठा रहा। उसने तत्काल निर्णय कर लिया था कि संकट में पड़ने के पूर्व ही वह जैसे भी होगा, ताना-रिरी की सहायता करेगा। कुछ देर बाद वह उठा और शाही महल की ओर चल दिया।

बादशाह अभी शयनगृह से बाहर नहीं आये थे। उसने सेवक से कहा, "मैं इंतजार करता हूं। बड़ा जरूरी काम है। जागते ही मेरा सलाम पहुंचा देना।"

प्रतीक्षा में चिंतातुर बैठा वह सोचता रहा। सिराज ने बताया कि खत सुनकर पहले जहांपनाह के चेहरे पर गुस्सा मगर बाद में खुशी दौड़ गई। इससे उसकी चिंता में और वृद्धि हुई। सरफुद्दीन ने जरूर अपने पत्र में, ताना-रिरी के अनुपम सौंदर्य तथा गान-कला का रस-भरा वर्णन किया होगा। जो विलासी और महत्त्वाकांक्षी शासक मेरे गाने की तारीफ सुनकर बांधवगढ़ के राजा से मुझे जबरदस्ती छीन सकता है, वह अगर रूप, सौंदर्य और संगीत की त्रिवेणी से मोहित और चंचल हो उठा हो तो कोई आश्चर्य नहीं! दिल्लीपति के चंगुल में से उन दोनों बहनों को छुड़ाना उसे मुश्किल लग रहा था।

बहुत देर बाद नौकर उसे बुलाने आया। भाग्य की कैसी विडंबना कि आठेक महीने पहले जिस शाही कक्ष में उसने अकबर के मुरझाये मन को प्रफुल्लित किया था, आज उसी कक्ष में स्वयं चिंता से धधकते हृदय को लिये वह प्रवेश कर रहा था ! उच्चासन पर बैठे अकबर ने पास में रखे हुए आसन की ओर इशारा करते हुए उससे कहा, "आइए मिया तानसेन, हमारी खुशकिस्मती है कि सुबह-सुबह आपके दीदार हुए—एक औलिया के दीदार।"

तानसेन प्रणाम करके बैठ गया। उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि अपनी बात कहां से और कैसे शुरू करे।

अकबर से उसकी यह हालत छिपी न रही। बोला, "मियाजी, आपकी तबीयत नासाज है क्या ?"

"जी जहांपनाह। तबीयत यकायक खराब हो गई। सीने में दर्द है और दिल में बेचैनी।"

उसके वेदनायुक्त चेहरे की ओर देखकर बादशाह ने कहा, "जल्दी हकीम को बुलाना चाहिए।"

अकबर सेवक को बुलाने के लिए ताली बजाने ही जा रहा था कि तानसेन ने उसे रोकते हुए कहा, "नहीं जहांपनाह, गुस्ताखी माफ हो, हकीम-वैद्य की दवा से यह दर्द आराम होने का नहीं। हुजूर ही मेरा दर्द दूर कर सकते हैं। आपका यह सेवक एक मुसीबत में फंस गया है।"

अकबर ने तानसेन का यह स्वरूप पहले कभी नहीं देखा था। उसकी वाणी की कातरता और स्वर का गीलापन बादशाह के मर्म को छू गए। अपने संगीत-सम्राट की विह्वलता से विचलित अकबर ने उसे आश्वस्त किया, "मिया तानसेन, हमारे संगीत-सम्राट तक आने की जुरंत कोई भी मुसीबत कैसे कर सकती है ! अकबर बादशाह के रहते आपका बाल भी बांका नहीं हो सकता। बताइए, क्या बात है ?"

एक क्षण चारों ओर दृष्टि डालकर तानसेन ने विनम्रतापूर्वक कहा, "जहांपनाह, आठ-नौ महीने हुए इसी जगह से सेवक ने आपकी छोटी-सी

खिदमत की थी, एक राग गाकर...”

“वाह, मिया तानसेन ! उस दिन तो आपने अपने बादशाह को नई जिंदगी ही बख्शी थी। दीपक-राग गाकर आपने मेरी जिंदगी का दीया रोशन कर दिया था। सुनिए, एक खुशखबर ! अब इस शाही महल में अनकरीब ही शाही खानदान का चिराग रोशन होनेवाला है। रात में ही यह खुशखबर हमें मिली है।”

सुनते ही तानसेन अपनी चिंता भूल गया। उमंगित होकर बोला, “अल्लाह की मेहरबानी। ईश्वर की असीम कृपा। हुजूर का सिंहासन आबाद रहे और मुगलिया वंश का चिराग सदा प्रकाशमान रहे।”

“बड़ी बेगम साहबा, अंबर की राजकन्या के महल से यह खुशखबर आयी है।”

“बहुत आनंद की बात है।”

अकबर प्रसन्नतापूर्वक हँसा और बोला, “मगर आपने अपनी मुसीबत की बात तो बतायी ही नहीं।”

“जहांपनाह, सेवक ने हुजूर से कुछ नहीं मांगा।”

लंबी सांस लेकर अकबर ने कहा, “यह हसरत हमारे दिल में ही रह गई कि आप कभी तो कुछ मांगते। अब तो साधु हो गए, लिहाज़ा मांगने का सवाल ही नहीं उठता।”

“आज मांगने ही आया हूं। उस दिन अर्ज़ किया था कि मौका आने पर मांगूंगा।”

“जरूर मांगिए। जो चाहे, मांग लीजिए। हम आपकी हर ख्वाहिश पूरी करेंगे।”

“जहांपनाह...”

“अकबर का कौल कभी खाली नहीं जाता।”

“मेरी बेटियां मुसीबत में हैं, उनकी रिहाई...”

“आपकी बेटियां ? और कौन है वह बदमाश ?” अकबर मारे गुस्से से अंगारा होगया।

"गुस्ताखी माफ हो, जहांपनाह ! सरफुद्दीन ने गुजरात में जाकर वड़नगर के मंडलेश्वर की दो वहुओं पर टेढ़ी नजर डाली है। वह उन्हें जवर्दस्ती अपने कब्जे में कर लेना चाहता है। ऐसे मामले अंत में सभी को नुकसान पहुंचाते और तवाही का कारण बनते हैं। जहांपनाह, मेरी इन दोनों वेटियों को वचाइए, अपने इस सेवक पर दया कीजिए।"

वादशाह ने आश्चर्य से कहा, "आपकी दो वेटियां गुजरात में हैं, यह हमें मालूम नहीं था।"

"हुजूर, वे मेरे गुरुभाई की पुत्रियां हैं।"

"गुरुभाई से मतलव ?"

"वृंदावन के स्वामी हरिदासजी मेरे गुरु हैं। शहंशाह ने उनको देखा है।"

"हां, हम भेस वदलकर आपके ही साथ उनका गाना सुनने के लिए गये थे।"

"हरिदासजी के एक परमभक्त शिष्य गुजरात के वड़नगर गांव में रहते हैं। उनकी दोनों पुत्रियां गुरुभाई के नाते मेरी भी बेटियां हुईं। वे वेटियाँ ही वहां के मंडलेश्वर की बहुएं हैं।"

अकवर स्तब्ध रह गया। उसकी गंभीरता और विचारमग्नता ने तानसेन को व्यग्र कर दिया। अनुनय भरे स्वर में वोला, "जहांपनाह ने उन्हें संकट से छुड़ाने का आश्वासन दिया है। पिता का दुःख हुजूर समझते ही हैं।"

अकबर हँसा। उसके चेहरे से गंभीरता गायब हो गई। उसने कहा, "वेशक, समझते हैं। नालायक सरफुद्दीन मंडलेश्वर से माफी मांगेगा और पाटण जाना रद्दकर फौरन यहां लौटेगा—यह शाही हुक्म कल ही रवाना हो जायगा।"

तानसेन इतना आनंदित हुआ कि औचित्य का खयाल ही भूल गया और वोला, "गुजारिश है कि शहंशाह का यह हुक्मनामा इसी वक्त सेवक को प्रदान किया जाय। एक-एक क्षण कीमती है।"

अकबर को हँसी आ गई, "ठीक है!" फिर ताली बजाई, "कौन है रे वहां ?"

थोड़ी ही देर में सीलबंद लिफाफा तानसेन के हाथ में आ गया। उसके साथ जानेवाले लोगों की व्यवस्था भी उसी समय कर दी गई।

अपनी मानस-पुत्रियों की आबरू बचाने का कवच हाथ में आते ही तानसेन उठा, अकबर को प्रणाम किया और भरे गले से बोला, "हुजूर का दिल हुजूर के इकबाल ही की तरह बुलंद है, बड़ा है...यह मेहरबानी..."

"नहीं—नहीं, तानसेन यह मेहरबानी नहीं। अकबरशाह का वायदा पूरा किया जा रहा है। मगर एक शर्त..."

"शर्त कैसी, जहांपनाह ?" तानसेन घबरा गया।

"अगले साल गुजरात पर चढ़ाई होगी। उस वक्त आप शाही सेना के साथ चलेंगे और अपनी उन बेटियों का गाना हमें सुनवायंगे।"

"जरूर, जहांपनाह, जरूर ! अपने दिल्लीपति पिता का यथोचित स्वागत मेरी बेटियां करेंगी।" बोलते-बोलते वह गद्‌गद् हो गया, उसकी आंखों में आंसू उमड़ आये।

"यह क्या, तानसेन ? आपकी आंखों में आंसू ? बात क्या है ?"

तानसेन ने आंखें पोंछीं, हँसते हुए उसने कहा, "हुजूर जल्दी ही इसका मतलब समझ जायंगे। बड़ी बेगमसाहब के मां बनते ही मतलब हुजूर पर रोशन हो जायगा।"

अकबर खिलखिला उठा, "ओह, समझा, समझ गया !"

कुछ ही देर बाद तानसेन चुने हुए लोगों के दल के साथ गुजरात की ओर चल दिया।

इक्कीस

"रायजी, विहारीलाल के घर पर ताला लगा है। पास-पड़ोस में पूछने पर पता चला कि वे अपने स्त्री-बच्चों को पहुंचाने के लिए दर्भावती गये हैं। पहुंचाकर तुरंत लौट आयंगे।"

विहारीलाल कंचन का ससुर था। अपनी वेटी वीरमगाम के शत्रु-राज्य में देकर भी वह वड़नगर के मंडलेश्वर के प्रति निष्ठावान था। पिछले दो दिनों तक जो गुप्त बैठकें हुईं, उनमें वह उपस्थित था। प्रतिरोध और सुरक्षा की योजनाएं वनाने में उसने अन्य प्रमुख नागरिकों का साथ दिया था। रात देर तक वह कचहरी में था। दर्भावती जाने का उसने किसी से उल्लेख नहीं किया। दो दिन पूर्व उसका वड़ा लड़का अपनी पत्नी को पीहर पहुंचाने पाटण गया था। आज किसी को कुछ वताये विना विहारीलाल भी सवेरे जल्दी एकाएक दर्भावती चला गया।

नीलकंठराय ने दिल्ली दरवाजे की ड्योढ़ी से जयमल्ल को बुलाकर पूछा, "क्यों रे जयमल्ल, सुवह विहारीलाल जव दर्भावती गये तो उनके साथ कितना सामान था?"

"जी रायजी, पूरा तीन गाड़ी सामान था। मैंने उनके लिए दरवाजा खोला तो पूछा भी था कि इतना सामान लेकर सवेरे-सवेरे कहां जा रहे हैं? वे बोले, घर के लोगों को दर्भावती पहुंचाकर बस यह लौटा। बाल-बच्चों की ओर से निश्चिंत हो जाना चाहता हूं, ताकि शत्रु से जमकर दो-दो हाथ किये जा सकें।"

लोकेश ने कहा, "बापूजी, मुझे विश्वास है कि विहारीलाल वापस नहीं आयेंगे। कंचन के इस षड्यंत्र का पता उन्हें चल गया है, इसीलिए पहले लड़के-बहू को भेज दिया और अब पत्नी को पहुंचाने के बहाने सब-कुछ समेटकर गांव से चले गये।"

वास्तव में हुआ भी यही। चार-पांच दिन बीत गए, किंतु बिहारी-लाल नहीं लौटे।

गांव में अफवाहों का बाजार गरम था। घुड़सदार बाहर जाते और पता लगाकर लौट आते। गुप्तचरों ने बताया कि सरफुद्दीन का मुकाम अभी उसी जगह पर है और वह मौका देखकर नागर में घुसने की तैयारी कर रहा है। किसान परकोटे के बाहर खेतों में काम पर जाते, पर उनके प्राण मुट्ठी में रहते। वे रोज नई-नई बातें लेकर लौटते। आज अमुक के खेत की साग-सब्जी उखाड़कर ले गए, कल फलां के खेत की हरी-भरी फसल काट ले गए, आदि-आदि। दोनों दलों में छोटी झड़पें भी हो जातीं और पारस्परिक धमकियां भी दी जातीं।

गोपीनाथ साहूकार का बेटा मुरलीधर पास के गांव में वसूली के लिए गया था। साथ में दो नौकर थे। आते समय रास्ते में यवन सैनिकों ने मुरलीधर को घेर लिया और पूछा, "तू कौन है?"

मुरली ने तलवार निकालकर ओंठ चबाते हुए कहा, "तेरा बाप! नागर ब्राह्मण की तलवार का पानी पिलाने के लिए स्वर्ग से आया हूं। सामने आ।"

गहरा घाव खाकर वह घोड़े से गिर पड़ा, पर गिरते-गिरते भी उस-ने दो यवनों को जमीन सुंघा दी। साथ के नौकरों ने भी मुकावला किया। यवन सैनिकों ने पैसा लूट लिया और उन नौकरों से पूछा, "तुम्हारी जात क्या है? क्या तुम भी नागर ब्राह्मण हो?"

दोनों घिघियाकर बोले, "नहीं, हम नागर नहीं हैं। मैं कुनबी पटेल हूं और यह बनिया है।"

सैनिकों ने अपने हथियार नीचे कर लिये और कहा, "तो तुम लौट जाओ। हमारे सरदार का हुक्म है कि जो नागर ब्राह्मण हो, उसी को चुनकर मारो। तुम अपने गांव में जाकर बता दो कि दिल्ली से बादशाह की बड़ी सेना आ रही है। चार दिन में यहां पहुंच जायगी। उसके आते ही हम गांव को लूटकर तबाह कर देंगे और उन दोनों छबीलियों को

उठाकर ले जायंगे।"

मुरली के मारे जाने, चुन-चुनकर नागर ब्राह्मणों को मौत के घाट उतारने और नाना-रिरी को पकड़ ले जाने के लिए बादशाही सेना के चार-पांच दिन में पहुंचने के समाचारों ने गांव में आतंक पैदा कर दिया। लोग घबराने लगे कि अब तो एक होकर मुकाबला करने से भी कुछ न होगा। नीलकंठराय ने लोगों को बहुत समझाने की कोशिश की कि शत्रु सिर्फ डर फैलाकर तुम्हारी हिम्मत तोड़ रहा है, लेकिन लोग आश्वस्त न हो सके। उनके मुंह पर लोगों ने जरूर कुछ न कहा, पर वे उस स्थिति में पहुंच चुके थे, जहां सचाई और-अफवाहों में अंतर कर पाना संभव नहीं रह जाता। सबके दिल में यह दहशत बैठ गई कि विशाल अकबरी सेना का मुकाबला चींटी की हाथी से टक्कर है। पहली ही चपेट में चींटी हाथी के पांव के नीचे आकर पिस जायगी। कई यह सोचने लगे कि इस समय यहां से निकलकर प्राण बचाने में ही कुशल है। पर वहां से भागना भी खतरे से खाली न था। बड़नगर के बाहर चारों के चारों रास्तों को यवन सैनिकों ने घेर रखा था।

नीलकंठराय ने सुरक्षा-प्रबंध और अनुशासन को और कड़ा कर दिया। लोकेश और महेश स्वयं नगर का चक्कर लगाते। सारी रात उनके घोड़ों की टापें गूंजती रहतीं।

सरफुद्दीन ने दो बार संदेश भेजे, नीलकंठराय ने दोनों बार ठुकरा दिया। उन्हें भी पता चल गया था कि कंचन सरफुद्दीन से जा मिला है और वे जानते थे कि उसकी नीचता अभी और रंग लायेगी।

एक दिन सवेरे-सवेरे शंकरप्रसाद अंदर आया। नीलकंठराय का हुक्म था कि कोई भी खास खबर हो तो उन्हें तुरंत सूचित किया जाय। शंकरप्रसाद ने आते ही कहा, "रायजी, शिवलाल और उसके दोनों बेटे पटेलों के वेश में स्त्री-बच्चों सहित गांव छोड़कर जाने का मनसूबा कर रहे हैं। उन्हीं की तरह वेश बदलकर और भी लोग भागना चाहते हैं।"

नीलकंठराय स्तब्ध हो उठे। उनका मन खिन्न हो गया। अपने

विश्वास-पात्र ही जब इस प्रकार विश्वासघात करने लगें तो किसपर भरोसा किया जाय ? धोखाधड़ी और कायरता को कैसे रोका जाय ? ज्यादा कठोरता भी उचित नहीं। जिनसे सहायता मांगी थी, उनमें से अभी तक किसी का आशाजनक उत्तर नहीं मिला था। अब तो जो करना होगा, स्वयं ही करना होगा। जैसी हाटकेश की इच्छा !

उन्होंने मन में निश्चय किया और लोकेश को दिल्ली-दरवाजे की ड्यौढ़ी पर बैठने का आदेश दिया।

थोड़ी देर में शिवलाल और उसके घरवाले किसानों के वेश में खेती के औजार हाथ में लिये वहां आये। उनके पीछे दो बैलगाड़ियां थीं जिनमें स्त्री, बच्चे और सामान था।

परकोटे के पास आते ही शिवलाल ने आवाज दी, "जयमल्लजी, जरा दरवाजा खोलो तो इन गाड़ियों को बाहर कर दिया जाय।"

जयमल्ल के आगे आने के पहले ही उसकी निगाह ड्यौढ़ी पर बैठे लोकेश पर पड़ी। उसे स्वप्न में भी कल्पना नहीं थी कि वह इस समय यहां होगा। घर से निकलने के पूर्व अपने एक रिश्तेदार को भेजकर उसने इस बात की जांच कर ली थी कि दिल्ली दरवाजे पर जयमल्ल को छोड़कर और कोई नहीं है। लोकेश को देखकर उसका चेहरा सफ़ेद पड़ गया। मिमियाते हुए किसी तरह बोला, "आ...प, आ....प लो-के-श-राय ?"

लोकेश ड्यौढ़ी की सीढ़ियां उतरकर नीचे आया। हँसकर कहने लगा, "काका, आपके जैसे पीढ़ियों से यहीं रहने वाले पुराने बाशिंदे जा रहे हैं, यह समाचार जब बापूजी को मिला तो उन्होंने मुझसे कहा, 'जाओ, उन्हें विदा कर आओ'।"

शिवलाल ठठाकर हँसा। अब उसके चेहरे पर ढिठाई के भाव थे। बोला, "औरत-बच्चों को सुरक्षित स्थान पर पहुंचाकर फौरन लौट आऊंगा। कल क्या गड़बड़ होगी, कौन कह सकता है ! दगाबाज कंचन अपनी ही जाति के खिलाफ खड़ा हो गया है।"

"बाहरी दगाबाजों को दंड दिया जा सकता है, पर घरवाले ही दगाबाजी करने लगें तो उनको क्या दंड दिया जाय, यह तो आप जैसे अनुभवी ही बता सकते हैं।"

व्यंग्य का निशाना किधर है, यह शिवलाल समझ गया। लेकिन कोई जवाब उसे सूझ न पड़ा।

लोकेश दो कदम आगे बढ़ आया। उसका चेहरा विकराल हो गया था। तीव्र स्वर में उसने कहा, "आप नहीं बता सकते, मैं ही बताता हूं। ऐसों की फौरन गर्दन उतार लेनी चाहिए।" कहते-कहते उसने म्यान से तलवार निकाल ली, पर दूसरे ही क्षण पुनः उसे म्यान में डाल लिया और धिक्कारते हुए बोला, "शिवकाका, अपनी जाति के खिलाफ खड़े होने की अपेक्षा अपनी जाति छिपाना तो और भी बड़ा अपराध और नीचता है। ऐसे कायरों और विश्वासघातियों को धिक्कार है! चले जाओ शिवलाल, तुम्हारे जैसे पुरुषार्थहीन, नपुंसक, कायर इस गांव में रहें, उससे तो अच्छा है कि यहां से वे निकल जायं। मगर ये चूड़ियां भी लेते जाओ, दोनों कलाइयों में पहन लेना। जयमल्ल...."

"जी, रायजी!"

"दरवाजा खोल दो, इनको जाने दो।" इतना कहकर लोकेश अपने घोड़े को एड़ मारता हवेली की ओर चला गया।

ड्योढ़ी पर घटित इस घटना की खबर सारे गांव में फैल गई, लेकिन इससे पलायन करने वालों को जरा भी शर्म न आई। जिनका आत्म-सम्मान मर गया था, जो हतवीर्य हो गए थे, वे रात के अंधकार में लुकते-छिपते इधर-उधर के रास्तों से गांव के बाहर खिसकते ही रहे।

शत्रु ने जब सुना कि नगर के लोग प्राण-भय से भाग रहे हैं तो उसकी खुशी का ठिकाना न रहा।

नीलकंठराय ने परिस्थिति की गंभीरता को तो समझा, परंतु भागनेवालों को रोकने की कोई कोशिश नहीं की। उलटे डोंडी पिटवा-दी कि जिनको गांव छोड़कर जाना हो वे बेशक खुशी से चले जायं।

जिनको मातृभूमि का नमक अदा करना हो वे कल उसकी रक्षा के लिए तैयार रहें।

× × ×

सूर्य पश्चिम की ओर जा रहा था। इतने में दिल्ली-दरवाजे के निकट वाला टोहिया दौड़ता हुआ हवेली में आया और खबर की, "रायजी, घुड़सवारों की एक टुकड़ी इस ओर आती दिखाई दे रही है। सरफुद्दीन के ही लोग मालूम पड़ते हैं।"

रणसिंघे बज उठे। गांव के सैनिक सज्जित होकर बाहर निकले। स्त्रियां और बच्चे घरों के अंदर दुबक गये। दरवाजे बंद हो गये। सभी पुरुष हाथों में लाठी या तलवार, जो भी शस्त्र मिला, लेकर निकल पड़े। लोकेश और महेश सबके आगे थे। वे दिल्ली दरवाजे पर पहुंचे।

सचमुच सरफुद्दीन अपनी टुकड़ी के साथ आ रहा था।

सरफुद्दीन कोट तक आ पहुंचा। सफेद घोड़ों पर दो रौबीले सवार देखकर वह पहचान गया कि ये ही लोकेश-महेश होने चाहिए। उसने पूछा, "क्या आप ही इस गांव के मंडलेश्वर के बेटे हैं?"

"हमें यह स्वीकार करने में कोई आपत्ति नहीं है।"

"मैं दिल्ली के शहंशाहे आज़म बादशाह अकबर का सरदार सरफुद्दीन हूं।"

"आपके यहां आने का मतलब?"

"मतलब आप जानते ही हैं। बादशाह सलामत का पैगाम न मानकर आपने शाही रुतबे की तौहीन की है।"

"अपमानजनक किसी भी मांग का सम्मान नहीं किया जाता।"

"लाहौल, शाही पैगाम की शान में ये अल्फाज़!" सरफुद्दीन का स्वर तीखा हो गया। लेकिन दूसरे ही क्षण वह हंस दिया और बोला, "लोकेशराय, आपको मालूम होना चाहिए कि हमारे बादशाह सलामत कलाओं और कलावंतों के कद्रदान हैं।"

"होंगे।" लोकेश ने उपेक्षा से कहा, "मगर आपके बादशाह वास्तव

में कलाओं के मर्मज्ञ और कलाकारों के भक्त हैं तो हम उन्हें अवश्य गाना सुनवायंगे।"

सुनकर सरफुद्दीन की आंखें चमक उठीं, सीना तन गया। यही समझा कि सेना देखकर लोकेश डर गया, ब्राह्मण की हेकड़ी ढीली पड़ गई।

लोकेश के शब्द सुनकर महेश भी चौंका। उसके साथ के दूसरे लोगों को भी लोकेश की बात विचित्र लगी। महेश ने भाई से धीरे से कहा भी, "दादा, यह तुम क्या कह रहे हो!"

लोकेश मुस्करा दिया। संकेत से भाई को धैर्य रखने के लिए कहा।

सरफुद्दीन ने खुश होकर कहा, "वाह खूब, बहुत खूब! हमें पता नहीं था कि हमारा ऐसा इस्तकबाल होगा।"

लोकेश ने जवाब दिया, "आपका सही स्वागत होना अभी बाकी है। हम आपके बादशाह को संगीत जरूर सुनवायंगे। वे यहां आयें, बाहरी भवन में बैठकर हमारी महिलाओं का संगीत सुनें और तृप्त होकर लौटें। मगर गानेवालियों को देखने की इच्छा मन में न रखें, उनके पांव के नख तक की झलक वे न पा सकेंगे। हमारी यह शर्त संगीत के शौकीन अपने बादशाह से जाकर बता दीजिए। अब आप जा सकते हैं।"

सरफुद्दीन के चेहरे पर खून उतर आया। आंखों में गुस्सा दहक उठा। गुर्राकर बोला, "यह ढिढाई! यह घमंड!"

"यह न ढिठाई है, न घमंड। आपकी कपट-चाल का सीधा-सरल उत्तर है।"

"नहीं, सरासर तौहीन है।"

"आप जो भी समझें।"

"जानते हो, नतीजा क्या होगा?"

"खूब जानते हैं।" लोकेश ने अद्भुत शांति से कहा, और उसके बाद बोला, "लंपटों, विश्वासघातियों और नीच-स्वार्थियों का सिर काटना भी हम खूब जानते हैं।"

"ओफ ! इतनी अकड़ ! लोकेशराय मत भूलो कि मुकाबला किससे है !"

"वेदपाठी नागर ब्राह्मण की स्मृति बड़ी तेज होती है। भूलना उसका स्वभाव नहीं। दूसरों की धरती को हड़पने के लिए युद्ध करते फिरना हमारा व्यवसाय नहीं। परंतु आक्रांता के उठे हुए हाथ को मोड़ने और तोड़ने के लिए तलवार चलाना हमें आता है। नागर सबकुछ सह सकता है, परन्तु अपनी महिलाओं का अपमान वह कदापि नहीं सह सकता।"

"मतलब यह कि बादशाह का दावतनामा, शाही पैगाम..."

लोकेश समझ गया कि संयम काम न देगा। उत्तेजित होकर धिक्कार-भरे स्वर में बोला, "बहरे हो क्या ? एक बार बता चुके, फिर तीन बार कह रहे हैं ! कान खोलकर सुन लो और अपना रास्ता नापो, अकबर का निमंत्रण स्वीकार नहीं, स्वीकार नहीं, स्वीकार नहीं।"

"इतना मिजाज ! याद रखो भुनगे की तरह मसल दिये जाओगे। चुटकी बजाते तुम्हारा यह शहर जमींदोज कर दिया जायगा। एक भी आदमी जिंदा नहीं बचेगा।"

लोकेश ने गंभीर एवं दृढ़-स्वर में कहा, "ऐसी धमकियों से हम नहीं डरते। एक नगर धूल में मिल भी जाय तो उस सपाट मैदान पर पहले से ज्यादा सुंदर नगरी खड़ी की जा सकती है। राज्य चला जाय तो पुनः प्राप्त किया जा सकता है, परंतु नारी का खोया हुआ सम्मान किसी भी तरह लौटाया नहीं जा सकता।"

बात करते-करते उसने सरफुद्दीन की सेना पर दृष्टि डाली। उसमें कंचन के भी अनेक घुड़सवार उसे दिखाई दिये।

सरफुद्दीन ने पीछे घूमकर इशारा दिया। अल्ला-हो-अकबर का नारा बुलंद हुआ। इधर भी 'जय हाटकेश' के घोष से वातवरण गूंज उठा। दोनों ओर के सैनिक प्राणों का मोह छोड़ कर भिड़ गये। सपा-सप तलवारें चलने लगीं और लाठियां भी अपना कमाल दिखाने में पीछे

न रहीं ।

नगर के सभी रास्ते और गलियां सुनसान हो गये । स्त्री-वच्चे चुपचाप घरों में दुवके रहे । गृहिणियां चिताग्रस्त हो उठीं । असह्य हो जाने पर खिड़कियों पर अधमुंहे पल्लों की राह डरते-डरते झांक लेती थीं । बाहर विल्कुल सन्नाटा था । दूर कोलाहल की हल्की आवाज सुनाई दे जाती थी ।

मंडलेश्वर की हवेली में क्रियाशीलता का कोई चिह्न दृष्टिगोचर नहीं होता था । ताना और रिरी अंदर मायागौरी के पास बैठी अपने भविष्य के वारे में सोच रही थीं । इस विपत्ति से त्राण का कोई रास्ता उन्हें ढूंढे नहीं मिल रहा था ।

सर्दियों के छोटे दिन थे । सूर्य देखते-देखते पश्चिम में डूबने लगा । वीच-वीच में कोई चिल्लाकर कह जाता—"यवन पीछे हट रहे हैं ।" और फिर वैसी ही शांति हो जाती थीं ।

सूर्यास्त होते ही हवेली के वंद दरवाजे पर किसी ने जोर का धक्का दिया । पहरेदार ने खिड़की से देखा और सांकल खोली । नागरवाड़ी के शंकर और मणिलाल घबराये हुए अंदर घुसे । हांफते हुए उन्होंने कहा, "हमारा टिकना मुश्किल ही लगता है । यवन सैनिक गांव में घुसने लगे हैं । वे सीधे हवेली की ओर वढ़ रहे हैं । लोकेशराय ने कहा है कि ताना और रिरी को वंद पालकी में वेरी के जंगल में माताजी के मंदिर के तहखाने में पहुंचादो । एक क्षण की भी देर मत करो ।"

सन्नाटे में पड़ी हुई हवेली में हलचल मच गई । सोच-विचार का समय नहीं था । पालकी आई और कहार भी आये । ताना-रिरी ने मायागौरी के चरणों में प्रणाम किया । सास ने दोनों को छाती से लगा लिया । हर क्षण कीमती था और साथ ही खतरे से भरा हुआ भी ।

मायागौरी गंभीर स्वर में वोली, "हाटकेश तुम्हारी रक्षा करें !"

वे पालकी में जा बैठीं । दूर कोलाहल सुनाई दे रहा था । पालकी दिल्ली दरवाजे की विपरीत दिशा में दौड़ चली । शंकर और मणिलाल

साथ थे । शर्मिष्ठा का चक्कर लगाकर पालकी वेरी के जंगल में घुसी। रास्ता साफ दिखाई नहीं दे रहा था। चारों ओर घनी झाड़ियां थीं। शंकर मशाल साथ लेता आया था। उसने मशाल जलाई और उसके उजाले में पालकी आगे बढ़ने लगी।

अभी दस-बीस कदम ही चले होंगे कि झाड़ियों के बीच कहीं घोड़ों की टापों की आवाज सुनाई दीं और साथ ही धमकी-भरा स्वर, "ठहरो, कौन हो ?"

तेजी से दौड़ रहे कहारों के पांव तले जमीन खिसक गई। शंकर ने हाथ की मशाल ऊपर उठायी। ताना ने रिरी का हाथ पकड़ा और पालकी का परदा थोड़ा एक ओर हटा करके देखा—दो यवन घुड़सवार हाथों में नंगी तलवारें लिये झाड़ी मे से बाहर आ रहे थे। पास आकर वे गरजे, "पालकी नीचे रखो ! अंदर कौन है ?"

कहारों ने चुपचाप पालकी कंधे से उतार दी।

"कौन है पालकी में ?"

कहारों को तो जैसे काठ मार गया। "पा—ल पाल—की..." उनके मुंह से शब्द नहीं निकल रहे थे।

सैनिकों ने शंकर को धमकाया, "कौन है पालकी में ? और तुम कौन हो ?"

शकर हकलाता हुआ बोला, "मैं—मैं एक गरीब ब्राह्मण हूं। गांव की दो स्त्रियां माताजी के दर्शन करने जा रही हैं। हम गरीबों पर दया करो !"

"अच्छा !"

कहार पालकी उठाने के लिए झुके। ताना-रिरी ने छुटकारे की सांस ली। शंकर की प्रत्युत्पन्नमति की उन्होंने मन-ही-मन सराहना की।

कहार पालकी उठाने जा ही रहे थे कि यवन घुड़सवार फिर से दहाड़ा, "ठहरो! क्यों रे मशालची बामन। वता, तेरा नाम क्या है ?।'

"शंकर !"

वह यवन जोर से खिलखिलाकर हँसा और बोला, "शंकर ! भोला शंकर ! तू वाकई भोला है। क्यों रे, तेरे गांव की गरीब औरतें चांदी के डांडों और सोने के पांवोंवाली पालकियों में सवार मंदर में दरशन करने जाती हैं, क्यों ? फिर तो तेरे मंडलेश्वर के घर की औरतें हीरा-मोती जड़ी पालकियों में चलती होंगी। बोल बे भोला शंकर, जवाब दे।"

ताना सोच रही थी, ये चार कहार, शंकर और मणिलाल मिलकर छह आदमी हैं। कहारों के पास तेज धारिये हैं। शंकर और मणिलाल भी तलवार लिये हैं। फिर भी ये कायरों की तरह मिमियाते दीन मुद्रा में क्यों खड़े हैं ? इन दोनों यवनों को मार क्यों नहीं गिराते ? बेकार समय क्यों गँवा रहे हैं ?

वह चिढ़ गई। मन में आया कि अंदर से ही डांटकर आदेश दे। तभी उसकी नजर मशाल के उजाले में शंकर के चेहरे पर पड़ी। वह गिड़गिड़ा जरूर रहा था, किंतु उसके चेहरे पर भय का कोई चिह्न नहीं था। उसने यह भी देखा कि यवन सरदार आपस में कोई इशारा कर रहे हैं। मणिलाल एक ओर तटस्थ भाव से खड़ा था।

ताना का कलेजा दहल गया। समझ गई कि विश्वासघात किया गया। मन घृणा और क्रोध से भर गया कि कैसे लोग हैं, जो अपनी ही जाति की नारियों की मान-रक्षा करने के बदले षड्यंत्र करके उसे विदेशी विधर्मियों के हाथ बेचे दे रहे हैं।

यवन सवार अभी भी डांटकर शंकर से पूछ रहा था, "कौन है पालकी में, बोल !"

ताना ने समझ लिया कि यह सारा नाटक पहले से सोच-समझकर रचा गया है। क्रोध से भरी झटके के साथ पालकी का परदा उठाकर वह बाहर निकल आई और कठोर स्वर में बोली, "जिनको पकड़कर ले जाने के लिए तुम्हारे अकबर ने फौज भेजकर लड़ाई छेड़ी है, हम वही ताना-रिरी, मंडलेश्वर की बहुएं हैं।"

विजली की कड़क-जैसी उसकी आवाज सुनकर और उसके चंडी रूप को देखकर दोनों यवन सवार दो कदम पीछे हट गये और थर-थर कांपने लगे। मशाल के उजाले में उन्होंने दो विद्युल्लेखाओं को पालकी में से उतरते देखा और चौंधिया गये।

ताना ने पुन: विजली की तरह कड़ककर कहा, "खबरदार, कोई एक भी कदम न बढ़ावे।" फिर उसने कमर में से एक छोटी-सी वरछी खींची और उसे हवा में लहराते हुए वोली, "नागर-कन्याएं अपनी इज्जत की रक्षा करना अच्छी तरह जानती हैं।"

अंत में शंकर की ओर घूमकर उसने रोषपूर्वक कहा, "कापुरुषो! अपने को पुरुष कहते हो और नारियों के साथ विश्वासघात करते हो! शर्म नहीं आती! अपनी ही माता-वहनों की इज्जत पर डाका डालने के लिए निकले हो। नागर-कुल में तुम कलंक कहां से पैदा हो गये! तुम्हारी धमनियों में वीर नागरों का नहीं, स्यार-कुत्तों का रक्त वह रहा है। छाती की ढाल वनाकर तलवार चलाना छोड़ पगड़ी मुंह में दवा यवन के तलवे सहला रहे हो! अच्छा होता, जनमते ही मर जाते तो धरती को तुम्हारा वोझ न उठाना पड़ता, जन्म देनेवाली मां के नाम को कलंक न लगता...!"

उसकी एड़ी तक लंवे वाल खुल गए थे। माथे का पल्लू कंधे पर आ गया था। चेहरा क्रोध से सुर्ख हो रहा था। आंखों से आग की चिनगारियां निकलने लगी थीं। जिस हाथ में वरछी पकड़े हुए थी, उसकी मुट्ठी आकाश की ओर उठी हुई थी। उस रूप में वह साक्षात् चंडी लग रही थी। सभी लोग अवाक् उसकी ओर देख रहे थे, पर किसी की आंखें उस रूप पर ठहर न पाती थीं। यवनों के लिए तो नारी का यह प्रचंड उग्र रूप सर्वथा नया और अनपहचाना था। चारों कहार और दोनों नागर थर-थर कांप रहे थे। एक वार तो उसकी कड़ी फटकार ने उनके मुर्दा खून में भी उवाल ला दिया...!

पर तभी ताना ववंडर की तरह आगे वढ़ी और उसने शंकर के हाथ

से मशाल छीन ली। पहले उसने मशाल की लौ रिरी की रेशमी साड़ी से छुवाई, साड़ी ने आग पकड़ ली, फिर उसने अपनी रेशमी साड़ी में भी आग लगा ली और मशाल को एक ओर फेंक दिया। दोनों के रेशमी वस्त्र कपूर की तरह जल उठे।

उस अग्नि में वहां खड़े लोगों के सारे बुरे विचार, नीच वासनाएं जलकर खाक हो गईं। उनको बचाने के लिए कहार और शंकर दौड़ पड़े। उन्हें हाथों से बरजते हुए ताना ने गरजकर कहा, "खबरदार, कोई आगे न बढ़े! अपने गंदे, पाप-पंक से सने हुए हाथों से कोई हमारी देह को न छुए। अपनी जान बचाना हो तो इसी समय बड़नगर की सीमा छोड़कर चले जाओ! फिर यहां कभी पांव मत रखना! बड़नगर का पुण्य समाप्त हो गया। हाटकेश्वर की महिमा इस धरती से मिट गई। नागर ब्राह्मणों का तेज हमेशा के लिए लुप्त हो गया। सोने का बड़नगर धरती माता के पेट में समा गया। अब से बड़नगर में नागर ब्राह्मणों का रहना वर्ज्य है। जो रहेगा, उसका घरबार मिट जायगा, वह निर्वंश होगा और उसकी आत्मा को कभी चैन नहीं मिलेगा! ..."

जलती ज्वाला में से शाप की वाणी निकल रही थी।

यवन सवार आंखें फाड़े देख रहे थे। भयानक किंतु अलौकिक दृश्य था। ज्वाला-पुंज में से पुनः शब्द सुनाई दिये, "यवनो, तुम्हारा अकबर बादशाह भी इसी तरह धोखे से मारा जायगा और तुम खुद मनुष्य के रूप में प्रेत बने जियोगे! ..."

फिर दोनों बहनों ने एक-दूसरे को बांहों में भर लिया। दो अग्नि-पुंज एक हो गये। सहसा उनचास पवन छूटे। झाड़ियों ने आग पकड़ ली। पक्षी पंख फड़फड़ाते, करुण चीत्कार करते, एक पेड़ से दूसरे पेड़ की ओर उड़ने लगे। सारा वन-प्रांतर आग की लपटों से घिर गया।

थोड़ी देर बाद दोनों बहनों के जलते हुए शरीर नीचे गिर पड़े। प्राण लपटों की राह ऊर्ध्वगामी हुए, अधजले शरीर धरती की गोद में पड़े रह गए।

बाईस

तानसेन बड़नगर के सिवान में पहुंचा, तबतक रात करीब-करीब बीत चुकी थी, सिर्फ आगरा से निकलने के बाद रास्ते में उसने अपने आदमियों को उतना ही विश्राम करने दिया था, जितना नितांत आवश्यक था, वह भी इसलिए कि घोड़ों को आराम देना जरूरी था। रास्तेभर घोड़े इस तरह दौड़ते रहे, मानो हवा में उड़े जाते हों। उसके मन में एक ही बात समायी हुई थी कि जल्दी-से-जल्दी बड़नगर पहुंच जाय। सरफुद्दीन कुछ अनुचित कर बैठे, उसके पहले ही वह पहुंच जाना चाहता था। एक बार वहां पहुंच जाय, फिर तो सबकुछ ठीक हो जायगा।

रात का अंतिम पहर भी बीत चला था। सुबह का हलका प्रकाश चारों ओर भरने लगा था। थोड़ी देर में हाटकेश के मंदिर का स्वर्ण-कलश आकाश में धुंधला-सा दिखाई देने लगा। उसका मन थोड़ी उत्सुकता और कुछ चिंता से व्यग्र हो उठा। खयाल आया, सरफुद्दीन उतावला और बादशाह का प्रियपात्र है। शाही हुक्म का इंतजार किये बिना ही हमला कर सकता है। यह सही है कि उसके पास काफी सेना नहीं है, पर कंचन जो उससे मिल गया है। प्रकट शत्रु से विश्वासघाती मित्र और घर का भेद देनेवाले रिश्तेदार कहीं भयानक होते हैं।

बड़नगर पहुंचते ही सबसे पहले मंडलेश्वर की हवेली में उनसे जाकर मिलना होगा। सरफुद्दीन की मूर्खतापूर्ण कपट-चाल के बारे में उन्हें बता कर शांत करना और अंत में बादशाह के 'अभयदान' की बात बताकर आश्वस्त करना होगा।

मंडलेश्वर जरूर पूछेंगे कि तुम कौन हो? उन्होंने मुझे पहले कभी देखा नहीं है। पिछली बार मैं आया तो वे यात्रा पर गये हुए थे। यदि वहां होते तो भी आज पहचान न पाते। उस समय मैं यात्री के वेश में

गुप्त रूप से आया था और अंधेरे-अंधेरे ही लौट भी गया था। जिनका गाना सुनकर और नया जीवन पाकर यहां से गया था, उन्हीं को बचाने के लिए आज मुझे फिर यहां आना पड़ा है।

वह बड़नगर के फाटक के करीब पर पहुंच गया। सुबह की लाली फैल चुकी थी, लेकिन सूरज निकलने में अभी देर थी। अपने साथ के लोगों से उसने बाहर ही रुकने को कहा, क्योंकि इतने यवन घुड़सवारों के कारण गलतफहमी हो सकती थी, जो वह नहीं चाहता था।

घोड़े को परकोटे के बाहर छोड़कर वह अकेला दरवाजे की ओर बढ़ा। उसका खयाल था कि द्वार बंद मिलेगा, किंतु आश्चर्य, विशाल, मजबूत दरवाजा पूरी तरह खुला हुआ था। उसने अंदर प्रवेश किया। ड्योढ़ी पर कोई पहरेदार भी नहीं था। चारों ओर भयंकर निःस्तब्धता छाई हुई थी। उसके मन में खुटका-सा हुआ। उसने चारों ओर ध्यान से देखा। भयानक लड़ाई हो चुकने के स्पष्ट चिह्न साफ दिखाई दे रहे थे। वह आगे बढ़ा। रास्ते में अनेक लाशें पड़ी हुई थीं। रक्त-रंजित रुंड-मुंड और अवयव यहां-वहां छिटके हुए थे। जो हुआ, उसका यह प्रत्यक्ष प्रमाण था। कितने ही घर जल कर राख हो गए थे। जलती हुई लकड़ियों और मलबे के ढेर लगे थे। कुछ मजबूत मकान अभी भी जल रहे थे। जो घर साबुत बच गए थे उनमें से कइयों के दरवाजे अंदर से बद थे। कई मनुष्यहीन घर खुले पड़े थे। मवेशियों के अहाते भी जल रहे थे। कई अहातों के साथ मवेशी भी जल मरे थे। सुबह की लालिमा में वह रक्त-सना दृश्य इतना भयानक दिखाई दे रहा था कि तानसेन के कदम आगे न बढ़ सके। वह वहीं जड़वत खड़ा रह गया। उसकी चेतना शून्य हो गई। यह क्या हुआ? मेरे पहुंचने से पहले ही यह सब क्या हो गया? उसकी विचार-शक्ति ने जवाब दे दिया। उसे वहां अवसन्न खड़े न जाने कितना समय बीत गया।

"साधु महाराज! ओ साधु महाराज! अरे ओ यात्री भैया!"

तानसेन को पता चला कि कोई उसे जोर-जोर से हिलाकर पुकार

रहा है। उसने धीरे से आंखें खोलीं। देखा तो सामने एक अधेड़ उम्र का आदमी खड़ा था। आदमी क्या, स्मशान से उठकर आया हुआ प्रेत ही लग रहा था। निस्तेज आंखें, निष्प्राण चेहरा—जीवन का कोई चिह्न ही उसमें नहीं दिखाई देता था।

तानसेन चुपचाप उसकी ओर देखता रहा। उसे बार-बार यही खयाल आता रहा, मानों अपना प्रतिबिंब ही देख रहा हो। दोनों देर तक शून्य दृष्टि से एक-दूसरे की ओर देखते रहे। अंत में उस व्यक्ति ने पूछा, "क्यों महाराज, हाटकेश की यात्रा करने आये हो क्या ?"

"हां...हूं..."

"अब कैसी यात्रा और कहां के दर्शन ! बड़नगर का पुण्य सब चुक गया। हाटकेश के मंदिर में बची है केवल पत्थर की एक शिला। वहां के देवता तो स्वर्ग सिधार गये। अरे महाराज, यह क्या, तुम तो थर-थर कांप रहे हो ! तुम्हारे पांव डगमगा रहे हैं। बैठो, बैठो,नीचे बैठ जाओ।"

तानसेन सच ही कांप रहा था। उस व्यक्ति ने उसे सहारा देकर नीचे बिठा दिया।

"महाराज, इस नगर में अब कुछ भी नहीं बचा। जब पुण्य चुक जाता है तो सब-कुछ इसी प्रकार जल जाता है। सामने देख रहे हो न चिता की तरह जलती हुई इस आग को ? पुण्य समाप्त होने पर द्वारका की स्वर्णनगरी पानी में डूब गई थी। बड़नगर के पुण्य पूरे हुए और यह अग्नि में समा गया। अब न द्वारका लौटेगी और न बड़नगर ही !"

सबकुछ समझते-बूझते हुए भी तानसेन ने उससे पूछा, "पर यह हुआ कैसे ?"

"महाराज, रामायण कैसे हुई थी ? अयोध्यानगरी-जैसा हमारा यह बड़नगर समृद्ध, सुखी एवं संतुष्ट था। न किसी के झगड़े में पड़ता था और न किसी की राजनीति में। हमारे मंडलेश्वर नीलकंठराय साक्षात् शंकर के अवतार थे। खेती करना, व्यापार करना तथा बाकी समय हाटकेश की पूजा में लगाना, बस इतने ही काम थे उनके। हम पुण्यशाली थे, इसी-

लिए हाटकेश की भूमि में जन्म मिला। यहां के वंसीकाका रणछोड़राय के पुजारी, परमभक्त और महापुण्यवान हुए! उनके घर दो देवियों ने अवतार लिया। देवता मनुष्य के रूप में जन्म लेते हैं, तो भी उनका अलौकिक तेज और उनकी सुंदरता छिपती नहीं है। सामान्य जन तो उनकी ओर आंख उठाकर देख भी नहीं सकता। वंसीकाका के घर की दोनों लड़कियां ऐसी ही थीं। कहते हैं कि भगवान कृष्ण अपने अवतार की समाप्ति पर अपनी बांसुरी विष्णुलोक लेते गये थे। वही बांसुरी इन दोनों कन्याओं के कंठ में बैठकर परमवैष्णव भक्त वंसीकाका के घर लौट आई थी। किसी मनुष्य के कंठ से ऐसे स्वर नहीं निकलते थे, जैसे उनके कंठ से निकलते थे और उनकी सुंदरता का तो बखान ही क्या किया जाय। खुद मंडलेश्वर ने अपने राजकुमार वेटों के लिए उनको मांगा था।"

"आप क्या करते हैं ?"

तानसेन का प्रश्न या तो उसने सुना ही नहीं या सुनकर भी कोई ध्यान नहीं दिया। अपनी ही रौ में वोलता चला गया, "सप्तसुर उनके कंठ में ही नहीं, रोम-रोम में व्याप्त था। जव वे शर्मिष्ठा के जल में घड़े डुबोती थीं तो मेघ मल्हार के सातों स्वर निकलते थे। पिछली बार यहां भयंकर सूखा पड़ा था। हाहाकार मच गया था। हाटकेश कुपित हो गये। उनके सिर की गंगा गायव हो गई। मेघ मल्हार के स्वर-संयुक्त जलाभिषेक के विना नागर-कुलदेवता प्रसन्न होनेवाले नहीं थे। तब नरसी भगत का पुण्य काम में आया। उनके वंश की ताना-रिरी ने घड़े उठाये। शर्मिष्ठा के जल में डुवोये, मेघमल्हार के स्वर निकले, उस पावन जल से हाटकेश का सतत अभिषेक हुआ, वे प्रसन्न हुए और सूखी धरती पर अमृत वरसा।"

वह व्यक्ति थोड़ी देर के लिए रुका। तानसेन को क्या यह सब मालूम नहीं था ? उसने जो देखा और सुना, उसे यह व्यक्ति तो क्या, दुनिया का कोई भी आदमी नहीं जानता। आधी रात में ताना-रिरी के गाने के परिणामस्वरूप ही तो हाटकेश की सूखी जटा फिर से गीली हुई और शिव-

मस्तक की लुप्त गंगा पुनः प्रकट हुई थी। मेघ मल्हार को सुनकर वरुण देवता हजारों हजार घड़े लेकर दौड़ पड़ा था। उस दिव्य क्षण का एकाकी साक्षी तानसेन ही तो था। लेकिन वचन-बद्ध होने के कारण वह किसी को बता नहीं सकता।

तानसेन ने उस व्यक्ति से पूछा, "ताना-रिरी कहां हैं? उनका क्या हुआ?"

सुनकर वह आदमी झटके के साथ उठा, जैसे चाबुक लगा हो। बोला, "वहीं तो जा रहा था। हुं, उनका क्या हुआ? अवतार पूरा हुआ। देवताओं के अवतार पूरे होते ही हैं। उन्होंने अपनी लाज और मान-मर्यादा की रक्षा की। दिल्ली के राक्षस ने उनका हरण करने के लिए अपनी असुर-सेना भेजी थी। घर के भेदिये भाई-बंधु असुरों से जा मिले। वे उन्हें धोखा देकर जंगल में ले गये। उन्हें भगाने का वह षड्यंत्र था। देवियों ने चंडी रूप धारण किया। आततायियों को शाप देते हुए अपने आपको अग्नि के समर्पित कर दिया।

तानसेन के रोंगटे खड़े हो गए। उस व्यक्ति से बोला, "चलो भाई, तुम्हारे साथ मैं भी उन देवियों के अंतिम दर्शन कर लूं।"

तानसेन उसके साथ चलने लगा। अब काफी उजाला हो गया था। गांव में कोई दिखाई नहीं दिया। तानसेन को उसी आदमी से मालूम हुआ कि नागरों में तो एक भी आदमी जीवित नहीं बचा। मंडलेश्वर के घर के सभी पुरुष लड़ाई में मारे गये। दूसरे भी कई नागर मैदान में खेत रहे। शेष भाग गये। मंडलेश्वर की हवेली में केवल स्त्रियां ही बची थीं। जब सुना कि ताना-रिरी ने अपने आपको जलाकर भस्म कर लिया है तो हवेली की स्त्रियों ने भी जौहर कर लिया।

सरफुद्दीन और जलालुद्दीन नीलकंठराय और लोकेश के हाथों मारे गए। कंचन के लोगों ने गांव में आग लगा दी और भाग गये।"

"तुम कौन हो?"

"इस भूमि में जन्मा, यहीं पला और बड़ा हुआ, यहां का सुख भोग-

कर और समृद्धि को देखकर, अब इस विध्वंस नगरी की दुरवस्था को देखने के लिए बचा हुआ एक अभागा प्राणी। मेरा नाम रामनाथ नायक है। ताना-रिरी गाती थीं और मेरी पत्नी रूखी तबले पर संगत करती थी। तबला तो तबला, घड़े तक पर संगत करने और तालों के बोल निकालने में रूखी को कमाल हासिल था। इस कला में कोई भी उसकी बराबरी नहीं कर सकता था।

"क्या वह भी मर गई ?"

"हां, तबले पर संगत करने के लिए वह भी उनके साथ स्वर्ग चली गई। ताना-रिरी की आत्माहुति की खबर सुनते ही उसने शर्मिष्ठा में छलांग लगा दी।"

उसके चुप हो जाने पर थोड़ी देर बाद तानसेन ने पूछा, "मंडलेश्वर की हवेली में क्या कोई भी नहीं बचा ?"

"बड़नगर में तो कोई भी नहीं लेकिन, संतोष की बात है कि उनका वंश समाप्त नहीं हुआ। लड़ाई की गड़बड़ी में ताना के एकमेव पुत्र मृत्युंजय को आधीरात में नगर से चुपचाप सुरक्षित बाहर निकाल ले गये। उसे काशी में नीलकंठराय की वृद्धा माता के पास पहुंचाने की व्यवस्था की गई है। बूढ़ी दादी काशी-यात्रा पर गई तो वहीं रह गई।"

वे जब बेरी के जंगल में पहुंचे तो रात के आत्म-यज्ञ की बलिवेदी पर समर्पित दो मानवी समाधियों को भुवनभास्कर ने किरणांजलि अर्पित की और प्रातःकालीन किरण-जाल चारों ओर फैलता चला गया।

ताना-रिरी के अग्नि-स्नात निर्जीव शरीर वहीं पड़े थे। दोनों ने एक दूसरे के गले में हाथ डाल रखा था। अंतिम क्षणों में भी उन्होंने एक-दूसरे को धैर्य दिया था, एक-दूसरे का साथ नहीं छोड़ा।

तानसेन देर तक उन झुलसी हुई देहों के समीप खड़ा अपलक देखता रहा। उसकी आंखों से आँसू बहने लगे। अपने उन आंसुओं से वह दोनों बहनों की आत्मिक ज्वाला को शांत करने का प्रयत्न करता रहा। आठ-नौ महीने पहले उसकी आत्मिक ज्वाला को इन्हीं देव-कन्याओं ने अपने

स्वरों की अमृतधारा से शांत किया था।

वह उन अधजले शवों के पास घुटने टेककर बैठ गया। उसके आंसू लगातार बह रहे थे। हाहाकार करता मन पुकार-पुकार कर कह रहा था, "बेटियो, मुझे पहुंचने में देर हो गई, तुम पहले ही चल दीं। पुरुष की कुदृष्टि से अपने आपको बचाने के लिए नारी को जो करना पड़ता है, वही तुमने किया। नारी का सतीत्व नष्ट हो जाने पर तो मनुष्य-जाति का ही सर्वनाश हो जाता है। तानसेन की मानस-पुत्रियो, तानसेन तुम्हारी स्मृति को सदैव सुरक्षित रक्खेगा। उसके वंश का दीपक जबतक जलता रहेगा, तुम्हारी याद का चिराग भी रोशन रहगा। तानसेन के साथ ताना-रिरी का नाम भी संगीत की दुनिया में हमेशा-हमेशा लिया जाता रहेगा।"

□□□

'मंडल' का
उपन्यास-साहित्य

१. देवदासी : बा० भ० बोरकर
२. नवीन यात्रा : मनोज बसु
३. हृदयनाद : सुब्रह्मण्यम
४. प्रेम प्रपंच : तुर्गनेव
५. मास्टर महिम : मनोज बसु
६. ज्वालामुखी : अनंतगोपाल शेवड़े
७. विराट : स्टीफन ज्विग
८. प्रेम और प्रकाश : आन्द्रेजीद
९. प्रकाश की छाया में : नरेंद्रपाल सिंह
१०. मोगरा फूला : वि० स० खांडेकर
११. भाग्य की विडंबना : स्टीफन ज्विग
१२. जागे तभी सवेरा : जय भिक्खू
१३. पद्मिनी का शाप : लक्ष्मीनिवास बिरला
१४. प्रेम की देवी : लक्ष्मीनिवास बिरला
१५. नियति के पुतले : पिनिशेट्टि श्रीराममूर्ति
१६. टाम काका की कुटिया : हेरियट बीचर स्टो
१७ लहरों के बीच : सुनील गंगोपाध्याय
१८. मेघ मल्हार : सुमति क्षेत्रमाडे